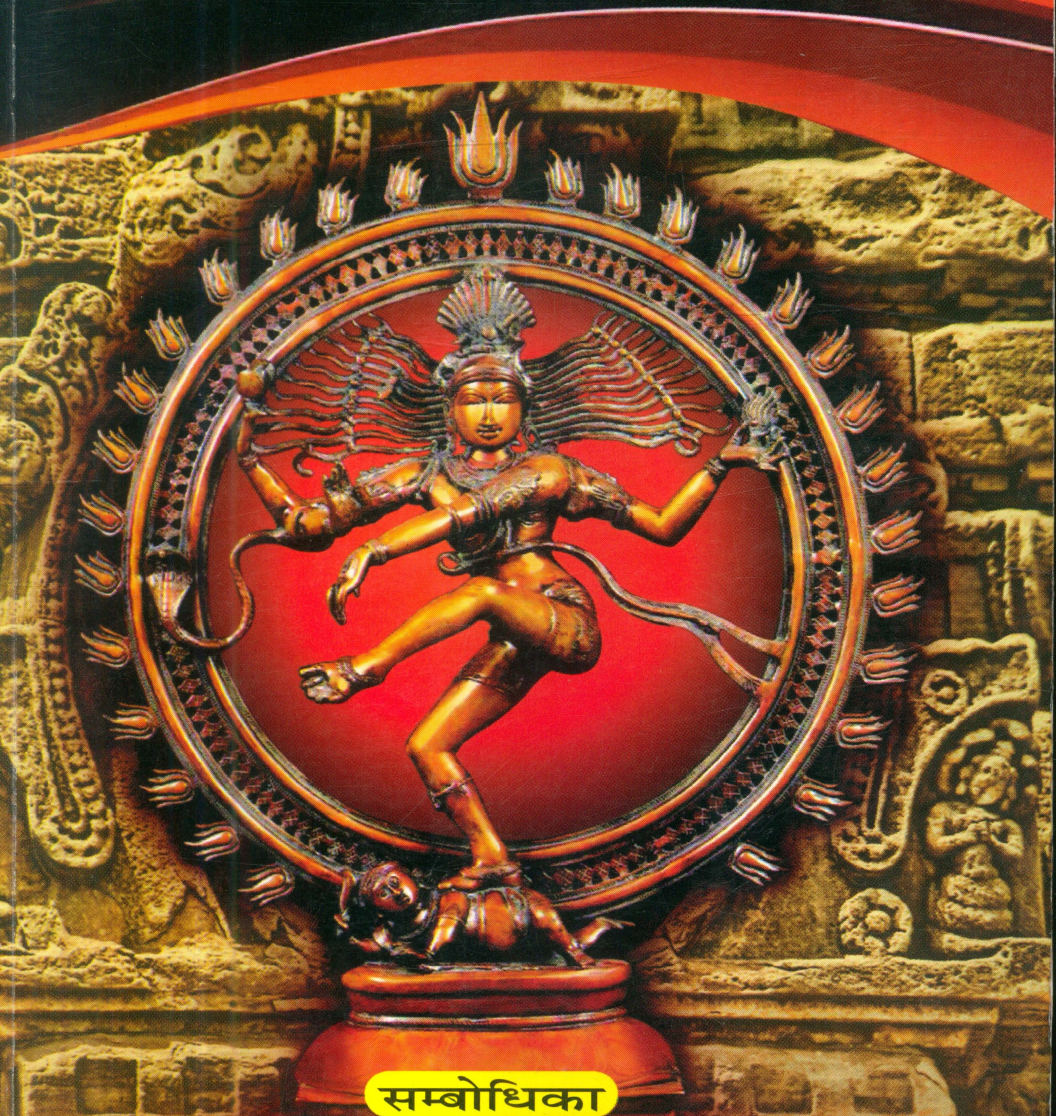
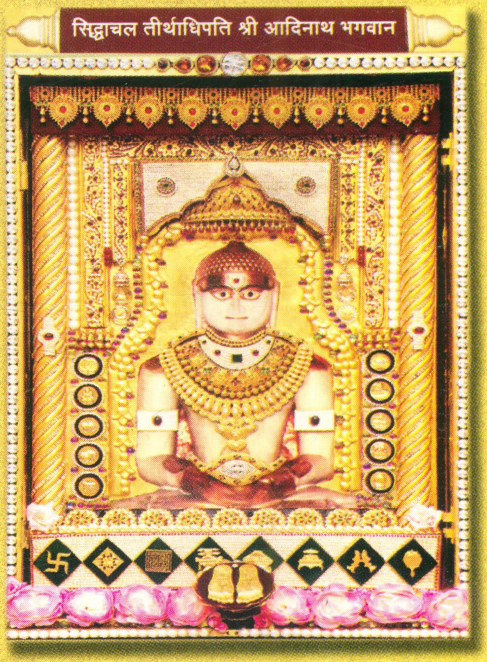
नाट्य मुद्राओं का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन



सम्बोधिका

पूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्रीजी म.सा.
परम विदुषी शशिप्रभा श्रीजी म.सा.





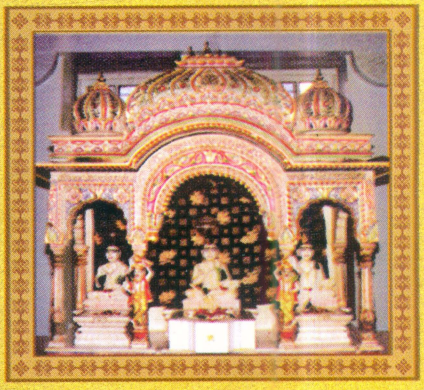
श्री जिनदत्तसूरि अजमेर दादाबाड़ी



श्री मणिधारी जिनचन्द्रसूरि दादाबाड़ी (दिल्ली)



श्री जिनकुशलसूरि मालपुरा दादाबाड़ी (जयपुर)



श्री जिनचन्द्रसूरि बिलाडा दादाबाड़ी (जोधपुर)

नाट्य मुद्राओं का एक मनोवैज्ञानिक अनुशीलन

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-16

2012-13

R.J. 241 / 2007

ACHARYA SRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR
SRIMAHAVIRJAIN ARADHANA KENDRA
Koba, Gandhinagar-382009
Phone : (079) 23276252, 23276204-0
णाणस्स सारमायारो

शोधार्थी
डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

निर्देशक
डॉ. सागरमल जैन

जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय
लाडनूं-341306 (राज.)

नाट्य मुद्राओं का एक मनोवैज्ञानिक अनुशीलन

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-16



स्वप्न शिल्पी

आगम मर्मज्ञा प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.

संयम श्रेष्ठा पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

मूर्त्त शिल्पी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

(विधि प्रभा)

शोध शिल्पी

डॉ. सागरमल जैन

नाट्य मुद्राओं का एक मनोवैज्ञानिक अनुशीलन

कृपा दीप : पूज्य आचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागर सूरीश्वरजी म.सा.
मंगल दीप : पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.
आनन्द दीप : आगमज्योति प्रवर्तिनी महोदया पूज्या सज्जन श्रीजी म.सा.
प्रेरणा दीप : पूज्य गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.
वात्सल्य दीप : गुर्वाज्ञा निमग्ना पूज्य प्रियदर्शना श्रीजी म.सा.
स्नेह दीप : पूज्य दिव्यदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य तत्वदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य सम्यक्दर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य शुभदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य मुदितप्रज्ञाश्रीजी म.सा., पूज्य शीलगुणाश्रीजी म.सा., सुयोग्या कनकप्रभाजी, सुयोग्या श्रुतदर्शनाजी सुयोग्या संयमप्रज्ञाजी आदि भगिनी मण्डल

शोधकर्त्री : साध्वी सौम्यगुणाश्री (विधिप्रभा)
ज्ञान वृष्टि : डॉ. सागरमल जैन
प्रकाशक :
- प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड, शाजापुर-465001
  email : sagarmal.jain@gmail.com
- सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
  बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड, पालीताणा-364270

प्रथम संस्करण : सन् 2014
प्रतियाँ : 1000
सहयोग राशि : ₹ 100.00
(पुनः प्रकाशनार्थ)
कम्पोज : विमल चन्द्र मिश्र, वाराणसी
कॅवर सेटिंग : शम्भू भट्टाचार्य, कोलकाता
मुद्रक : Antartica Press, Kolkata
ISBN : 978-81-910801-6-2 (XVI)

© All rights reserved by Sajjan Mani Granthmala.

प्राप्ति स्थान

1. श्री सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड,
पो. पालीताणा-364270 (सौराष्ट्र)
फोन : 02848-253701

2. श्री कान्तिलालजी मुकीम
श्री जिनरंगसूरि पौशाल, आड़ी बांस
तल्ला गली, 31/A, पो. कोलकाता-7
मो. 98300-14736

3. श्री भाईसा साहित्य प्रकाशन
M.V. Building, Ist Floor
Hanuman Road, PO : VAPI
Dist. : Valsad-396191 (Gujrat)
मो. 98255-09596

4. पार्श्वनाथ विद्यापीठ
I.T.I. रोड, करौंदी वाराणसी-5 (यू.पी.)
मो. 09450546617

5. डॉ. सागरमलजी जैन
प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड
पो. शाजापुर-465001 (म.प्र.)
मो. 94248-76545
फोन : 07364-222218

6. श्री आदिनाथ जैन श्वेताम्बर
तीर्थ, कैवल्यधाम
पो. कुम्हारी-490042
जिला– दुर्ग (छ.ग.)
मो. 98271-44296
फोन : 07821-247225

7. श्री धर्मनाथ जैन मन्दिर
84, अमन कोविल स्ट्रीट
कोण्डी थोप, पो. चेन्नई-79 (T.N.)
फोन : 25207936,
044-25207875

8. श्री जिनकुशलसूरि जैन दादावाडी,
महावीर नगर, केम्प रोड
पो. मालेगाँव
जिला- नासिक (महा.)
मो. 9422270223

9. श्री सुनीलजी बोथरा
टूल्स एण्ड हार्डवेयर,
संजय गांधी चौक, स्टेशन रोड
पो. रायपुर (छ.ग.)
फोन : 94252-06183

10. श्री पदमचन्दजी चौधरी
शिवजीराम भवन, M.S.B. का रास्ता,
जौहरी बाजार
पो. जयपुर-302003
मो. 9414075821, 9887390000

11. श्री विजयराजजी डोसी
जिनकुशल सूरि दादाबाड़ी
89/90 गोविंदप्पा रोड
बसवनगुडी, पो. बैंगलोर (कर्ना.)
मो. 093437-31869

संपर्क सूत्र

श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत
9331032777
श्री रिखबचन्दजी झाड़चूर
9820022641
श्री नवीनजी झाड़चूर
9323105863
श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख
8719950000
श्री जिनेन्द्र बैद
9835564040
श्री पन्नाचन्दजी दूगड़
9831105908

लोकार्पण

जो परम पुरुषार्थी, स्वाध्याय व्यसनी एवं
कर्मठता के प्रतिरूप हैं।
जो जीवन संग्राम के वीर योद्धा और
कर्मयोग के प्रतीक पुरुष हैं।
जो ज्ञान पिपासुओं के लिए सद्ज्ञान प्रपा और
आगम वाणी के प्रमाण स्वरूप हैं।
ऐसे
ज्ञान दिवाकर, श्रुत रत्नाकर,
इस शोधकृति के शिल्पकार
बीसवीं सदी के प्रज्ञा पुरुष
डॉ. सागरमल जैन के
कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व को
सादर समर्पित...

सज्जन हृदयगत

No Time Busy Life की आधुनिक संस्कृति में
हर कोई चाहता है...
शारीरिक स्वस्थता पर भोजन में नहीं पौष्टिकता
मुखमंडल की सुंदरता पर विचारों में नहीं दिव्यता
वैचारिक स्थिरता पर जीवन में नहीं व्यवस्था
आज चारों तरफ फैल रहा है...
कदम-कदम पर यांत्रिक एवं वैचारिक प्रदूषण
शक्ति प्रदर्शन के लिए हो रहा है परमाणु परीक्षण
प्रगति के नाम पर हो रहा है अपनों से ही Competition
चाहे घर हो या Office
ठेला हो या उड़न खटोला
पाठशाला हो या पाकशाला
व्यापार हो या व्यवहार
हर क्षेत्र में अपेक्षित है साहस और सफलता
शारीरिक निरोगता, मानसिक स्वस्थता, वैचारिक शांतता
आत्मिक स्थिरता, पारिवारिक सकता, सामाजिक शालीनता
वाणी में मृदुता, भावों में निर्मलता, जीवन में धैर्यता
जिसका सरलतम उपाय बताया है
सभी धार्मिक ग्रन्थों ने
वैज्ञानिक अनुसंधानों ने
Fitness संस्थानों ने
उसे आपके समक्ष रखने का
एक हार्दिक प्रयास....

हार्दिक अनुमोदन



तपश्रेष्ठा, संघ रत्ना, बंग देश उद्धारिका

परम पूज्या सज्जनमणि श्री शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

की पावन प्रेरणा से

श्री बसवनगुड़ी संघ, बैंगलोर

के

ज्ञान खाते से प्रकाशित

सम्पादकीय

मुद्रा विज्ञान पंच महाभूतों पर आश्रित सबसे प्राचीन एवं त्रिकाल प्रासंगिक महाविज्ञान है। भारतीय ऋषि-महर्षियों की वैज्ञानिकता एवं विलक्षणता का ज्वलंत प्रमाण है। ध्यान, आसन, प्राणायाम आदि प्राकृतिक योग साधनाएँ सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति की ही देन है। मुद्रा भी इन्हीं योग साधनाओं का एक प्रकार है।

मुद्रा अर्थात Actin या अंग संचालन की एक विशेष क्रिया जिसके द्वारा हांव-भाव प्रदर्शित किए जाते हैं। जब से इस सृष्टि में जीव हैं तभी से मुद्रा विज्ञान का भी अस्तित्व है। वाणी से पहले भाव अभिव्यक्ति का साधन मुद्रा ही बनती है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि उसके अन्त:करण में जैसे भाव होते हैं वैसी ही अभिव्यक्ति उसके मन, वचन, काया से होने लगती है। उदा. जब हमें किसी पर स्नेह आ रहा हो तो सहजतया मस्तक पर हाथ चला जाता है। क्रोध आ रहा हो तो आँखे लाल हो जाती है एवं शरीर तन जाता है। अभिमान का भाव आने पर कन्धे तन जाते हैं। पूर्व काल में चित्र एवं सांकेतिक भाषा का प्रयोग एक प्रकार से मुद्रा योग का ही रूप था। उबासी आने पर चुटकी बजाने के पीछे मुद्रा प्रयोग का एक बहुत बड़ा रहस्य छुपा हुआ था। जब भी उबासी आदि लेते हुए जबड़ा फँस जाए तो अंगूठे और मध्यमा अंगुली द्वारा मुख के आगे चुटकी बजाने से जबड़ा शीघ्र ही ठीक हो जाता है।

मुद्रा मानव के शरीर रूपी यन्त्र की नियन्त्रक तालिकाएँ (Switch) हैं। इन तालिकाओं के द्वारा मनुष्य के शरीर में महत्त्वपूर्ण तात्विक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यत्मिक एवं शारीरिक परिवर्तन बिना किसी सहायता के सरलता से लाए जा सकते हैं। मुद्रा प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि किसी भी वर्ग, आयु, लिंग के लोगों द्वारा सहजता पूर्वक सीखी जा सकती है। इसके लिए किसी विशिष्ट सामग्री, सुविधा या वातावरण की आवश्यकता नहीं, व्यक्ति जब चाहे इनका तत्काल प्रयोग कर सकता है। आज रोगों

की बढ़ती संख्या तथा Doctor एवं दवाइयों का खर्च आम आदमी के लिए बहुत बड़ी समस्या है। इन परिस्थितियों में मुद्रा प्रयोग एक ब्रह्मास्त्र है।

मुद्रा निर्माण में मुख्य सहयोगी अंग है हाथ। प्रकृति ने जल, अग्नि, वायु आदि पाँचों तत्त्वों को हमारे हाथ में समाहित किया है। मुद्रा प्रयोग के द्वारा इन तत्त्वों का संतुलन किया जाता है।

आध्यात्मिक जगत के उत्थान में भी मुद्रा प्रयोग एक सम्यक मार्ग है। आन्तरिक भावजगत एवं चक्र जागरण में मुद्रा प्रयोग संजीवनी औषधि के रूप में कार्य करता है।

दैविक साधना अथवा देवताओं को आमंत्रित करते हुए उन्हें प्रसन्न करने आदि में भी मुद्रा प्रयोग प्राचीनकाल से देखा जाता है। प्राय: जितने भी धर्म सम्प्रदाय हैं उनमें कुछ मुद्राओं का प्रयोग उनके उत्पत्ति काल से ही प्रचलित है। प्रार्थना आदि के लिए सभी के द्वारा कुछ विशिष्ट मुद्राएँ धारण की जाती है। इस्लाम धर्म में नमाज अदा करते हुए ईसाई लोगों के द्वारा प्रार्थना करते हुए कुछ विशिष्ट मुद्राएँ प्रयोग में ली जाती है। वैदिक परम्परा में देवोपासना से सम्बन्धित एवं बौद्ध परम्परा में भगवान बुद्ध से सम्बन्धित मुद्राएँ विश्व प्रसिद्ध है।

यदि जन साहित्य का अवलोकन करें तो आगम साहित्य में कहीं-कहीं पर कुछ विशिष्ट मुद्राओं का आलेख प्राप्त होता है जैसे प्रतिक्रमण सम्बन्धी मुद्राओं का उल्लेख आवश्यक सूत्र में तो गोदुहासन, खड्गासन आदि का वर्णन भगवान महावीर की साधना कर आचारांग सूत्र में प्राप्त होता है। मध्यकालीन साहित्य की अपेक्षा विविध प्रतिष्ठाकल्प, विधिमार्गप्रपा, आचारदिनकर आदि ग्रन्थ इस विषय में द्रष्टव्य हैं।

साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने विविध-विधानों में मुद्राओं के महत्व को देखते हुए आद्योपरान्त उपलब्ध मुद्राओं का सचित्र वर्णन करते हुए उनके लाभ आदि की प्रामाणिक चर्चा की है। जैन मुद्राओं के साथ नाट्य, बौद्ध, हिन्दू, यौगिक एवं आधुनिक चिकित्सा सम्बन्धी मुद्राओं का वर्णन करके इस कृति को विश्व उपयोगी बनाया है। मुद्राओं का सचित्र वर्णन उसकी प्रयोग विधि को और सहज एवं सरल बनाएगा। सहस्राधिक मुद्राओं का विशद एवं

प्रामाणिक यह संकलन विश्व वंदनीय है। प्रथम बार इतनी मुद्राओं को एक साथ प्रस्तुत किया जा रहा हैं।

साध्वी के इस विश्वस्तरीय योगदान के लिए सदियों तक उन्हें याद किया जाएगा। यह कार्य जिन धर्म को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाएगा। मैं सौम्यगुणाश्रीजी के इस कार्य की अंतरमन से सराहना करता हूँ। वे इसी निष्ठा एवं लगन के साथ श्रुत उपासना में संलग्न रहें एवं जिनशासन के श्रुत भण्डार का वर्धन करें यही हार्दिक अभ्यर्थना है।

डॉ. सागरमल जैन

प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर

आशीर्वचन

भारतीय वांगमय ऋषि-महर्षियों द्वारा रचित लक्षाधिक ग्रन्थों से शोभायमान है। प्रत्येक ग्रन्थ अपने आप में अनेक नवीन विषय एवं नव्य उन्मेष लिए हुए हैं। हर ग्रन्थ अनेकशः प्राकृतिक, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक रहस्यों से परिपूर्ण है। इन शास्त्रीय विषयों में एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है विधि-विधान। हमारे आचार-पक्ष को सुदृढ़ बनाने एवं उसे एक सम्यक दिशा देने का कार्य विधि-विधान ही करते हैं। विधि-विधान सांसारिक क्रिया-अनुष्ठानों को सम्पन्न करने का मार्ग दिग्दर्शित करते हैं।

जैन धर्म यद्यपि निवृत्तिमार्गी है जबकि विधि-विधान या क्रिया-अनुष्ठान प्रवृत्ति के सूचक हैं परंतु यथार्थतः जैन धर्म में विधि-विधानों का गुंफन निवृत्ति मार्ग पर अग्रसर होने के लिए ही हुआ है। आगम युग से ही इस विषयक चर्चा अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होती है। जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा वर्तमान विधि-विधानों का पृष्ठाधार है। साध्वी सौम्यगुणाजी ने इस ग्रंथ के अनेक रहस्यों को उद्घाटित किया है।

साध्वी सौम्याजी जैन संघ का जाज्वल्यमान सितारा है। उनकी ज्ञान आभा से मात्र जिनशासन ही नहीं अपितु समस्त आर्य परम्पराएँ शोभित हो रही हैं। सम्पूर्ण विश्व उनके द्वारा प्रकट किए गए ज्ञान दीप से प्रकाशित हो रहा है। इन्हें देखकर प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की सहज स्मृति आ जाती है। सौम्याजी उन्हीं के नक्शे कदम पर चलकर अनेक नए आयाम श्रुत संवर्धन हेतु प्रस्तुत कर रही है।

साध्वीजी ने विधि-विधानों पर बहुपक्षीय शोध करके उसके विविध आयामों को प्रस्तुत किया है। इस शोध कार्य को 23 पुस्तकों के रूप में प्रस्तुत कर उन्होंने जैन विधि-विधानों के समग्र पक्षों को जन सामान्य के लिए सहज ज्ञातव्य बनाया है।

जिज्ञासु वर्ग इसके माध्यम से मन में उद्वेलित विविध शंकाओं का समाधान कर पाएगा।

साध्वीजी इसी प्रकार श्रुत रत्नाकर के अमूल्य मौतियों की खोज कर ज्ञान राशि को समृद्ध करती रहे एवं अपने ज्ञानालोक से सकल संघ को रोशन करें यही शुभाशंसा...

आचार्य कैलास सागर सूरि
नाकोडा तीर्थ

विदुषी साध्वी श्री सौम्यगुणाश्रीजी ने विधि विधान सम्बन्धी विषयों पर शोध-प्रबन्ध लिख कर डी.लिट् उपाधि प्राप्त करके एक कीर्तिमान स्थापित किया है।

सौम्याजी ने पूर्व में विधिमार्गप्रपा का हिन्दी अनुवाद करके एक गुरुत्तर कार्य संपादित किया था। उस क्षेत्र में हुए अपने विशिष्ट अनुभवों को आगे बढ़ाते हुए उसी विषय को अपने शोध कार्य हेतु स्वीकृत किया तथा दत्त-चित्त से पुरुषार्थ कर विधि-विषयक गहनता से परिपूर्ण ग्रन्थराज का जो आलेखन किया है, वह प्रशंसनीय है।

हर गच्छ की अपनी एक अनूठी विधि-प्रक्रिया है, जो मूलतः आगम, टीका और क्रमशः परम्परा से संचालित होती है। खरतरगच्छ के अपने विशिष्ट विधि विधान हैं... मर्यादाएँ हैं... क्रियाएँ हैं...। हर काल में जैनाचार्यों ने साध्वाचार की शुद्धता को अक्षुण्ण बनाये रखने का भगीरथ प्रयास किया है। विधिमार्गप्रपा, आचार दिनकर, समाचारी शतक, प्रश्नोत्तर चत्वारिंशत शतक, साधु विधि प्रकाश, जिनवल्लभसूरि समाचारी, जिनपतिसूरि समाचारी, षडावश्यक बालावबोध आदि अनेक ग्रन्थ उनके पुरुषार्थ को प्रकट कर रहे हैं।

साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने विधि विधान संबंधी बृहद् इतिहास की दिव्य झांकी के दर्शन कराते हुए गृहस्थ-श्रावक के सौलह संस्कार, व्रतग्रहण विधि, दीक्षा विधि, मुनि की दिनचर्या, आहार संहिता, योगोद्वहन विधि, पदारोहण विधि, आगम अध्ययन विधि, तप साधना विधि, प्रायश्चित्त विधि, पूजा विधि, प्रतिक्रमण विधि, प्रतिष्ठा विधि, मुद्रायोग आदि विभिन्न विषयों पर अपना चिंतन-विश्लेषण प्रस्तुत कर इन सभी विधि विधानों की मौलिकता और सार्थकता को

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उजागर करने का अनूठा प्रयास किया है।

विशेष रूप से मुद्रायोग की चिकित्सा के क्षेत्र में जैन, बौद्ध और हिन्दु परम्पराओं का विश्लेषण करके मुद्राओं की विशिष्टता को उजागर किया है।

निश्चित ही इनका यह अनूठा पुरुषार्थ अभिनंदनीय है। मैं कामना करता हूँ कि संशोधन-विश्लेषण के क्षेत्र में वे खूब आगे बढ़ें और अपने गच्छ एवं गुरु के नाम को रोशन करते हुए ऊँचाईयों के नये सोपानों का आरोहण करें।

उपाध्याय श्री मणिप्रभसागर

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि विदुषी साध्वी डॉ. सौम्यगुणा श्रीजी ने डॉ. श्री सागरमलजी जैन के निर्देशन में 'जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' इस विषय पर 23 खण्डों में बृहदस्तरीय शोध कार्य (डी.लिट्) किया है। इस शोध प्रबन्ध में परंपरागत आचार आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक परिचय देने का सुंदर प्रयास किया गया है।

जैन परम्परा में क्रिया-विधि आदि धार्मिक अनुष्ठान कर्म क्षय के हेतु से मोक्ष को लक्ष्य में रखकर किए जाते हैं।

साध्वीश्री ने योग मुद्राओं का मानसिक, शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से क्या लाभ होता है? इसका उल्लेख भी बहुत अच्छी तरह से किया है।

साध्वी सौम्यगुणाजी ने निःसंदेह चिंतन की गहराई में जाकर इस शोध प्रबन्ध की रचना की है, जो अभिनंदन के योग्य है।

मुझे आशा है कि विद्वद गण इस शोध प्रबन्ध का सुंदर लाभ उठायेंगे।

मेरी साध्वीजी के प्रति शुभकामना है कि श्रुत साधना में और अभिवृद्धि प्राप्त करें।

आचार्य पद्मसागर सूरि

विनयाद्यनेक गुणगण गरीमायमाना विदुषी साध्वी श्री शशिप्रभा श्रीजी एवं सौम्यगुणा श्रीजी आदि सपरिवार सादर अनुवन्दना सुखशाता के साथ।

आप शाता में होंगी। आपकी संयम यात्रा के साथ ज्ञान यात्रा अविरत चल रही होगी।

आप जैन विधि विधानों के विषय में शोध प्रबंध लिख रहे हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई।

ज्ञान का मार्ग अनंत है। इसमें ज्ञानियों के तात्पर्यार्थि के साथ प्रामाणिकता पूर्ण व्यवहार होना आवश्यक रहेगा।

आप इस कार्य में सुंदर कार्य करके ज्ञानोपासना द्वारा स्वश्रेय प्राप्त करें ऐसी शासन देव से प्रार्थना है।

आचार्य राजशेखर सूरि
भद्रावती तीर्थ

महत्तरा श्रमणीवर्या श्री शशिप्रभाश्री जी
योग अनुवंदना!

आपके द्वारा प्रेषित पत्र प्राप्त हुआ। इसी के साथ 'शोध प्रबन्ध सार' को देखकर ज्ञात हुआ कि आपकी शिष्या साध्वी सौम्यगुणा श्री द्वारा किया गया बृहदस्तरीय शोध कार्य जैन समाज एवं श्रमण-श्रमणी वर्ग हेतु उपयोगी जानकारी का कारण बनेगा।

आपका प्रयास सराहनीय है।

श्रुत भक्ति एवं ज्ञानाराधना स्वपर के आत्म कल्याण का कारण बने यही शुभाशीर्वाद।

आचार्य रत्नाकरसूरि

जो कर रहे स्व-पर उपकार
अन्तर्हृदय से उनको अमृत उद्गार

मानव जीवन का प्रासाद विविधता की बहुविध पृष्ठ भूमियों पर आधृत है। यह न तो सरल सीधा राजमार्ग (Straight like highway)

है न पर्वत का सीधा चढ़ाव (ascent) न घाटी का उतार (descent) है अपितु यह सागर की लहर (sea-wave) के समान गतिशील और उतार-चढ़ाव से युक्त है। उसके जीवन की गति सदैव एक जैसी नहीं रहती। कभी चढ़ाव (Ups) आते हैं तो कभी उतार (Downs) और कभी कोई अवरोध (Speed Breaker) आ जाता है तो कभी कोई (trun) भी आ जाता है। कुछ अवरोध और मोड़ तो इतने खतरनाक (sharp) और प्रबल होते हैं कि मानव की गति-प्रगति और सन्मति लड़खड़ा जाती है, रुक जाती है इन बदलती हुई परिस्थितियों के साथ अनुकूल समायोजन स्थापित करने के लिए जैन दर्शन के आप्त मनीषियों ने प्रमुखतः दो प्रकार के विधि-विधानों का उल्लेख किया है– 1. बाह्य विधि-विधान 2. आन्तरिक विधि-विधान।

बाह्य विधि-विधान के मुख्यतः चार भेद हैं– 1. जातीय विधि-विधान 2. सामाजिक विधि-विधान 3. वैधानिक विधि-विधान 4. धार्मिक विधि-विधान।

1. जातीय विधि-विधान– जाति की समुत्कर्षता के लिए अपनी-अपनी जाति में एक मुखिया या प्रमुख होता है जिसके आदेश को स्वीकार करना प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य है। मुखिया नैतिक जीवन के विकास हेतु उचित-अनुचित विधि-विधान निर्धारित करता है। उन विधि-विधानों का पालन करना ही नैतिक चेतना का मानदण्ड माना जाता है।

2. सामाजिक विधि-विधान– नैतिक जीवन को जीवंत बनाए रखने के लिए समाज अनेकानेक आचार-संहिता का निर्धारण करता है। समाज द्वारा निर्धारित कर्त्तव्यों की आचार-संहिता को ज्यों का त्यों चुपचाप स्वीकार कर लेना ही नैतिक प्रतिमान है। समाज में पीढ़ियों से चले आने वाले सज्जन पुरुषों का अच्छा आचरण या व्यवहार समाज का विधि-विधान कहलाता है। जो इन विधि-विधानों का आचरण करता है, वह पुरुष सत्पुरुष बनने की पात्रता का विकास करता है।

3. वैधानिक विधि-विधान– अनैतिकता-अनाचार जैसी हीन प्रवृत्तियों से मुक्त करवाने हेतु राज सत्ता के द्वारा अनेकविध विधि-विधान बनाए

जाते हैं। इन विधि-विधानों के अन्तर्गत 'यह करना उचित है' अथवा 'यह करना चाहिए' आदि तथ्यों का निरूपण रहता है। राज सत्ता द्वारा आदेशित विधि-विधान का पालन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। इन नियमों का पालन करने से चेतना अशुभ प्रवृत्तियों से अलग रहती है।

4. **धार्मिक विधि-विधान**– इसमें आप्त पुरुषों के आदेश-निर्देश, विधि-निषेध, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य निर्धारित रहते हैं। जैन दर्शन में "आणाए धम्मो" कहकर इसे स्पष्ट किया गया है। जैनागमों में साधक के लिए जो विधि-विधान या आचार निश्चित किए गये हैं, यदि उनका पालन नहीं किया जाता है तो आप्त के अनुसार यह कर्म अनैतिकता की कोटि में आता है। धार्मिक विधि-विधान जो अर्हत् आदेशानुसार है उसका धर्माचरण करता हुआ वीर साधक अकुतोभय हो जाता है अर्थात वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न हो, वैसा व्यवहार नहीं करता। यही सद्व्यवहार धर्म है तथा यही हमारे कर्मों के नैतिक मूल्यांकन की कसौटी है। तीर्थंकरोपदिष्ट विधि-निषेध मूलक विधानों को नैतिकता एवं अनैतिकता का मानदण्ड माना गया है।

लौकिक एषणाओं से विमुक्त, अरहन्त प्रवाह में विलीन, अप्रमत्त स्वाध्याय रसिका साध्वी रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन वाङ्मय की अनमोल कृति खरतरगच्छाचार्य श्री जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित **विधिमार्गप्रपा** में गुम्फित जाज्वल्यमान विषयों पर अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन को मुख्यतः चार भाग (23 खण्डों में) वर्गीकृत करने का अतुलनीय कार्य किया है। शोध ग्रन्थ के अनुशीलन से यह स्पष्टतः हो जाता है कि साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने चेतना के ऊर्ध्वीकरण हेतु प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में जिन आज्ञा का निरूपण किसी परम्परा के दायरे से नहीं प्रज्ञा की कसौटी पर कस कर किया है। प्रस्तुत कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि हर पंक्ति प्रज्ञा के आलोक से जगमगा रही है। बुद्धिवाद के इस युग में विधि-विधान को एक नव्य-भव्य स्वरूप प्रदान करने का सुन्दर, समीचीन, समुचित प्रयास किया गया है। आत्म

पिपासुओं के लिए एवं अनुसन्धित्सुओं के लिए यह श्रुत निधि आत्म सम्मानार्जन, भाव परिष्कार और आन्तरिक औज्ज्वल्य की निष्पत्ति में सहायक सिद्ध होगी।

अल्प समयावधि में साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने जिस प्रमाणिकता एवं दार्शनिकता से जिन वचनों की परम्परा के आग्रह से रिक्त तथा साम्प्रदायिक मान्यताओं के दुराग्रह से मुक्त रखकर सर्वग्राही श्रुत का निष्पादन जैन वाङ्मय के क्षितिज पर नव्य नक्षत्र के रूप में किया है। आप श्रुत साभिरुचि में निरन्तर प्रवहमान बनकर अपने निर्णय, विशुद्ध विचार एवं निर्मल प्रज्ञा के द्वारा सदैव सरल, सरस और सुगम अभिनव ज्ञान रश्मियों को प्रकाशित करती रहें। यही अन्तःकरण आशीर्वाद सह अनेकशः अनुमोदना... अभिनंदन।

जिनमहोदय सागर सूरि चरणरज
मुनि पीयूष सागर

जैन विधि की अनमोल निधि

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि साध्वी डॉ. सौम्यगुणा श्रीजी म.सा. द्वारा "जैन-विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन" इस विषय पर सुविस्तृत शोध प्रबन्ध सम्पादित किया गया है। वस्तुतः किसी भी कार्य या व्यवस्था के सफल निष्पादन में विधि (Procedure) का अप्रतिम महत्त्व है। प्राचीन कालीन संस्कृतियाँ चाहे वह वैदिक हो या श्रमण, इससे अछूती नहीं रही। श्रमण संस्कृति में अग्रगण्य है– जैन संस्कृति। इसमें विहित विविध विधि-विधान वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक जीवन के विकास में अपनी महती भूमिका अदा करते हैं। इसी तथ्य को प्रतिपादित करता है प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध।

इस शोध प्रबन्ध की प्रकाशन वेला में हम साध्वीश्री के कठिन प्रयत्न की आत्मिक अनुमोदना करते हैं। निःसंदेह, जैन विधि की इस अनमोल निधि से श्रावक-श्राविका, श्रमण-श्रमणी, विद्वान-विचारक सभी लाभान्वित होंगे। यह विश्वास करते हैं कि वर्तमान युवा पीढ़ी के लिए

भी यह कृति अति प्रासंगिक होगी, क्योंकि इसके माध्यम से उन्हें आचार-पद्धति यानि विधि-विधानों का वैज्ञानिक पक्ष भी ज्ञात होगा और वह अधिक आचार निष्ठ बन सकेगी।

साध्वीश्री इसी प्रकार जिनशासन की सेवा में समर्पित रहकर स्व-पर विकास में उपयोगी बनें, यही मंगलकामना।

मुनि महेन्द्रसागर
1.2.13 भद्रावती

विदुषी आर्या रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन विधि विधानों पर विविध पक्षीय बृहद शोध कार्य संपन्न किया है। चार भागों में विभाजित एवं 23 खण्डों में वर्गीकृत यह विशाल कार्य निःसंदेह अनुमोदनीय, प्रशंसनीय एवं अभिनंदनीय है।

शासन देव से प्रार्थना है कि उनकी बौद्धिक क्षमता में दिन दूगुनी रात चौगुनी वृद्धि हो। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ज्ञान गुण की वृद्धि के साथ आत्म ज्ञान प्राप्ति में सहायक बनें।

यह शोध ग्रन्थ ज्ञान पिपासुओं की पिपासा को शान्त करे, यही मनोहर अभिलाषा।

महत्तरा मनोहर श्री चरणरज
प्रवर्त्तिनी कीर्तिप्रभा श्रीजी

दूध को दही में परिवर्तित
करना सरल है। जामन डालिए
और दही तैयार हो जाता है।
किन्तु, दही से मक्खन निकालना
कठिन है। इसके लिए दही को
मथना पड़ता है। तब कहीं
जाकर मक्खन प्राप्त होता है।
इसी प्रकार अध्ययन एक
अपेक्षा से सरल है, किन्तु

तुलनात्मक अध्ययन कठिन है।
इसके लिए कई शास्त्रों को
मथना पड़ता है।
साध्वी सौम्यगुणा श्री ने जैन
विधि-विधानों पर रचित साहित्य
का मंथन करके एक सुंदर चिंतन
प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया है
वह अत्यंत अनुमोदनीय एवं
प्रशंसनीय है।
शुभकामना व्यक्त
करती हूँ कि यह
शास्त्रमंथन अनेक साधकों
के कर्मबंधन तोड़ने में
सहायक बने।

साध्वी संवेगनिधि

सुश्रावक श्री कान्तिलालजी मुकीम द्वारा शोध प्रबंध सार संप्राप्त हुआ। विदुषी साध्वी श्री सौम्यगुणाजी के शोधसार ग्रन्थ को देखकर ही कल्पना होने लगी कि शोध ग्रन्थ कितना विराट्काय होगा। वर्षों के अथक परिश्रम एवं सतत रुचि पूर्वक किए गए कार्य का यह सुफल है।

वैदुष्य सह विशालता इस शोध ग्रन्थ की विशेषता है।

हमारी हार्दिक शुभकामना है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका बहुमुखी विकास हो! जिनशासन के गगन में उनकी प्रतिभा, पवित्रता एवं पुण्य का दिव्यनाद हो। किं बहुना!

साध्वी मणिप्रभा श्री
भद्रावती तीर्थ

मंगल नाद

मुद्रा नाम सुनते ही हमारे सामने प्रतिष्ठा आदि में अथवा साधना आदि में प्रयुक्त कुछ मुद्राएँ उभरने लगती है, परन्तु यह शब्द मात्र वहाँ तक सीमित नहीं है। हमारी दैनिक क्रियाओं में भी मुद्रा का प्रमुख स्थान है क्योंकि जन-जीवन की प्रत्येक अभिव्यक्ति मुद्रा के माध्यम से होती है। यदि विधि-विधान के सन्दर्भ में मुद्रा प्रयोग पर विचार करें तो अब तक प्रचलित मुद्राओं के विषय में ही जानकारी एवं पुस्तकें आदि संप्राप्त है।

साध्वी सौम्यगुणाजी ने मुद्रा विषयक कार्य अत्यन्त बृहद् स्तर पर कई नूतन रहस्यों की उद्घाटित करते हुए किया है। इन्होंने जैन परम्परा से सम्बन्धित लगभग 200 मुद्राएँ, 400 बौद्ध मुद्राएँ, हिन्दू और नाट्य परम्परा से सम्बन्धित करीब 400 ऐसे लगभग हजार मुद्राओं पर ऐतिहासिक कार्य किया है। जो विश्व स्तर पर अपना प्रथम स्थान रखता है। यह कार्य समस्त धर्मावलम्बियों के लिए उपयोगी भी बनेगा, क्योंकि इसे साम्प्रदायिक सीमाओं से परे किया गया है। यद्यपि बौद्ध एवं वैदिक परम्परा में इस विषय पर कार्य हुआ है किन्तु वह स्वरूप एवं विवरण तक ही सीमित है, उनकी उपादेयता एवं उपयोगिता आदि के सम्बन्ध में यह प्रथम कार्य है। इसी के साथ साध्वीजी ने सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक, मनोवैज्ञानिक आदि के परिप्रेक्ष्य में भी इस विषय पर गहन अध्ययन किया है।

इन मुद्राओं में से भी अभ्यास साध्य, अनभ्यास साध्य मुद्राओं का वर्णन भिन्न-भिन्न साहित्य में प्राप्त मुद्राओं के आधार पर किया गया है। इसकी वर्तमान उपयोगिता दर्शाने हेतु साध्वीजी ने एक्युप्रेशर, चक्र जागरण, तत्त्व संतुलन एवं विभिन्न रोगों पर इनका प्रभाव आदि को परिप्रेक्ष्यों में भी यह कार्य किया है। मुद्राओं का ज्ञान सुगमता से किया जा सके एतदर्थ प्रत्येक मुद्रा का रेखाचित्र दीर्घ परिश्रम एवं अत्यन्त सजगता पूर्वक बनाया गया है।

इस दुरुह कार्य को साध्वीजी ने जिस निष्ठा एवं उदार हृदयता के साथ सम्पन्न किया है। इसके लिए वे सदैव अनुशंसनीय एवं अनुमोदनीय हैं। इनकी बौद्धिक क्षमता का ही परिणाम है कि दो वर्ष जितने लम्बे कार्य को इन्होंने एक वर्ष के भीतर पूर्ण किया है। यद्यपि कई बार हम लोगों ने समय की अल्पता, करते हुए यह कार्य की विराटता एवं दुरुहता को देख जैन परम्परा तक सीमित करने का सुझाव भी दिया परंतु यदि सामग्री एवं जानकारी होते हुए कार्य को आधा अधूरा छोड़ना यह अन्वेषक का लक्षण नहीं है। इसलिए अत्यल्प समय में कठोर श्रम के साथ इस कार्य को सात खण्डों में सम्पन्न किया है। आज मैं सौम्याजी के इस कार्य से स्वयं को ही नहीं अपितु संपूर्ण जैन समाज को गौरवान्वित अनुभव कर रही हूँ।

मैं अन्तर्मन से सौम्याजी की एकाग्रता, कार्य मग्नता, आज्ञाकारिता एवं अप्रमत्तता के लिए इन्हें साधुवाद एवं भविष्य के लिए शुभाशीष प्रदान करती हूँ।

आर्य्या शशिप्रभा श्री

दीक्षा गुरु प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा. एक परिचय

रजताभ रजकणों से रंजित राजस्थान असंख्य कीर्ति गाथाओं का वह रश्मि पुंज है जिसने अपनी आभा के द्वारा संपूर्ण धरा को देदीप्यमान किया है। इतिहास के पन्नों में जिसकी पावन पाण्डुलिपियाँ अंकित है ऐसे रंगीले राजस्थान का विश्रुत नगर है जयपुर। इस जौहरियों की नगरी ने अनेक दिव्य रत्न इस वसुधा को अर्पित किए। उन्हीं में से कोहिनूर बनकर जैन संघ की आभा को दीप्त करने वाला नाम है– पूज्या प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.।

आपश्री इस कलियुग में सतयुग का बोध कराने वाली सहज साधिका थी। चतुर्थ आरे का दिव्य अवतार थी। जयपुर की पुण्य धरा से आपका विशेष सम्बन्ध रहा है। आपके जीवन की अधिकांश महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जैसे– जन्म, विवाह, दीक्षा, देह विलय आदि इसी वसुधा की साक्षी में घटित हुए।

आपका जीवन प्राकृतिक संयोगों का अनुपम उदाहरण था। जैन परम्परा के तेरापंथी आम्नाय में आपका जन्म, स्थानकवासी परम्परा में विवाह एवं मन्दिरमार्गी खरतर परम्परा में प्रव्रज्या सम्पन्न हुई। आपके जीवन का यही त्रिवेणी संगम रत्नत्रय की साधना के रूप में जीवन्त हुआ।

आपका जन्म वैशाखी बुद्ध पूर्णिमा के पर्व दिवस के दिन हुआ। आप उन्हीं के समान तत्त्ववेत्ता, अध्यात्म योगी, प्रज्ञाशील साधक थी। सज्जनता, मधुरता, सरलता, सहजता, संवेदनशीलता, परदु:खकातरता आदि गुण तो आप में जन्मत: परिलक्षित होते थे। इसी कारण आपका नाम सज्जन रखा गया और यही नाम दीक्षा के बाद भी प्रवर्त्तित रहा।

संयम ग्रहण हेतु दीर्घ संघर्ष करने के बावजूद भी आपने विनय, मृदुता, साहस एवं मनोबल डिगने नहीं दिया। अन्तत: 35 वर्ष की आयु में पूज्या प्रवर्त्तिनी ज्ञान श्रीजी म.सा. के चरणों में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीवान परिवार के राजशाही ठाठ में रहने के बाद भी संयमी जीवन का हर छोटा-बड़ा कार्य आप अत्यंत सहजता पूर्वक करती थी। छोटे-बड़े सभी की

सेवा हेतु सदैव तत्पर रहती थी। आपका जीवन सद्गुणों से युक्त विद्वत्ता की दिव्य माला था। आप में विद्यमान गुण शास्त्र की निम्न पंक्तियों को चरितार्थ करते थे–

शीलं परहितासक्ति, रनुत्सेकः क्षमा धृतिः।
अलोभश्चेति विद्यायाः, परिपाकोज्ज्वलं फलः ।।

अर्थात शील, परोपकार, विनय, क्षमा, धैर्य, निर्लोभता आदि विद्या की पूर्णता के उज्ज्वल फल हैं।

अहिंसा, तप साधना, सत्यनिष्ठा, गम्भीरता, विनम्रता एवं विद्वानों के प्रति असीम श्रद्धा उनकी विद्वत्ता की परिधि में शामिल थे। वे केवल पुस्तकें पढ़कर नहीं अपितु उन्हें आचरण में उतार कर महान बनी थी। आपको शब्द और स्वर की साधना का गुण भी सहज उपलब्ध था।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात आप 20 वर्षों तक गुरु एवं गुरु भगिनियों की सेवा में जयपुर रही। तदनन्तर कल्याणक भूमियों की स्पर्शना हेतु पूर्वी एवं उत्तरी भारत की पदयात्रा की। आपश्री ने 65 वर्ष की आयु और उसमें भी ज्येष्ठ महीने की भयंकर गर्मी में सिद्धाचल तीर्थ की नव्वाणु यात्रा कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार आदि क्षेत्रों में धर्म की सरिता प्रवाहित करते हुए भी आप सदैव ज्ञानदान एवं ज्ञानपान में संलग्न रहती थी। इसी कारण लोक परिचय, लोकैषणा, लोकाशंसा आदि से अत्यंत दूर रही।

आपश्री प्रखर वक्ता, श्रेष्ठ साहित्य सर्जिका, तत्त्व चिंतिका, आशु कवयित्री एवं बहुभाषाविद थी। विद्वदवर्ग में आप सर्वोत्तम स्थान रखती थी। हिन्दी, गुजराती, मारवाड़ी, संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी आदि अनेक भाषाओं पर आपका सर्वाधिकार था। जैन दर्शन के प्रत्येक विषय का आपको मर्मस्पर्शी ज्ञान था। आप ज्योतिष, व्याकरण, अलंकार, साहित्य, इतिहास, शकुन शास्त्र, योग आदि विषयों की भी परम वेत्ता थी।

उपलब्ध सहस्र रचनाएँ तथा अनुवादित सम्पादित एवं लिखित साहित्य आपकी कवित्व शक्ति और विलक्षण प्रज्ञा को प्रकट करते हैं।

प्रभु दर्शन में तन्मयता, प्रतिपल आत्म रमणता, स्वाध्याय मग्नता, अध्यात्म लीनता, निस्पृहता, अप्रमत्तता, पूज्यों के प्रति लघुता एवं छोटों के

प्रति मृदुता आदि गुण आपश्री में बेजोड़ थे। हठवाद, आग्रह, तर्क-वितर्क, अहंकार, स्वार्थ भावना का आप में लवलेश भी नहीं था। सभी के प्रति समान स्नेह एवं मृदु व्यवहार, निरपेक्षता एवं अंतरंग विरक्तता के कारण आप सर्वजन प्रिय और आदरणीय थी।

आपकी गुण गरिमा से प्रभावित होकर गुरुजनों एवं विद्वानों द्वारा आपको आगम ज्योति, शास्त्र मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, अध्यात्म योगिनी आदि सार्थक पदों से अलंकृत किया गया। वहीं सकल श्री संघ द्वारा आपको साध्वी समुदाय में सर्वोच्च प्रवर्त्तिनी पद से भी विभूषित किया गया।

आपश्री के उदात्त व्यक्तित्व एवं कर्मशील कर्तृत्व से प्रभावित हजारों श्रद्धालुओं की आस्था को 'श्रमणी' अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में लोकार्पित किया गया। खरतरगच्छ परम्परा में अब तक आप ही एक मात्र ऐसी साध्वी हैं जिन पर अभिनन्दन ग्रन्थ लिखा गया है।

आप में समस्त गुण चरम सीमा पर परिलक्षित होते थे। कोई सद्गुण ऐसा नहीं था जिसके दर्शन आप में नहीं होते हो। जिसने आपको देखा वह आपका ही होकर रह गया।

आपके निरपेक्ष, निस्पृह एवं निरासक्त जीवन की पूर्णता जैन एवं जैनेतर दोनों परम्पराओं में मान्य, शाश्वत आराधना तिथि **'मौन एकादशी'** पर्व के दिन हुई। इस पावन तिथि के दिन आपने देह का त्याग कर सदा के लिए मौन धारण कर लिया। आपके इस समाधिमरण को श्रेष्ठ मरण के रूप में सिद्ध करते हुए उपाध्याय मणिप्रभ सागरजी म.सा. ने लिखा है–

महिमा तेरी क्या गाये हम, दिन कैसा स्वीकार किया।
मौन ग्यारस माला जपते, मौन सर्वथा धार लिया
गुरुवर्य्या तुम अमर रहोगी, साधक कभी न मरते हैं।।

आज परम पूज्या संघरत्ना शशिप्रभा श्रीजी म.सा. आपके मंडल का सम्यक संचालन कर रही हैं। यद्यपि आपका विचरण क्षेत्र अल्प रहा परंतु आज आपका नाम दिग्दिगन्त व्याप्त है। आपके नाम स्मरण मात्र से ही हर प्रकार की Tension एवं विपदाएँ दूर हो जाती है।

●

शिक्षा गुरु पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. एक परिचय

'धोरों की धरती' के नाम से विख्यात राजस्थान अगणित यशोगाथाओं का उद्‌भव स्थल है। इस बहुरत्ना वसुंधरा पर अनेकश: वीर योद्धाओं, परमात्म भक्तों एवं ऋषि-महर्षियों का जन्म हुआ है। इसी रंग-रंगीले राजस्थान की परम पुण्यवंती साधना भूमि है श्री फलौदी। नयन रम्य जिनालय, दादाबाड़ियों एवं स्वाध्याय गुंज से शोभायमान उपाश्रय इसकी ऐतिहासिक धर्म समृद्धि एवं शासन समर्पण के प्रबल प्रतीक हैं। इस मातृभूमि ने अपने उर्वरा से कई अमूल्य रत्न जिनशासन की सेवा में अर्पित किए हैं। चाहे फिर वह साधु-साध्वी के रूप में हो या श्रावक-श्राविका के रूप में। वि.सं. 2001 की भाद्रकृष्णा अमावस्या को धर्मनिष्ठ दानवीर ताराचंदजी एवं सरल स्वभावी बालादेवी गोलेछा के गृहांगण में एक बालिका की किलकारियां गूंज रही थी। अमावस्या के दिन उदित हुई यह किरण भविष्य में जिनशासन की अनुपम किरण बनकर चमकेगी यह कौन जानता था? कहते हैं सज्जनों के सम्पर्क में आने से दुर्जन भी सज्जन बन जाते हैं तब सम्यकदृष्टि जीव तो नि:सन्देह सज्जन का संग मिलने पर स्वयमेव ही महानता को प्राप्त कर लेते हैं।

किरण में तप त्याग और वैराग्य के भाव जन्मजात थे। इधर पारिवारिक संस्कारों ने उसे अधिक उफान दिया। पूर्वोपार्जित सत्संस्कारों का जागरण हुआ और वह भुआ महाराज उपयोग श्रीजी के पथ पर अग्रसर हुई। अपने बाल मन एवं कोमल तन को गुरु चरणों में समर्पित कर 14 वर्ष की अल्पायु में ही किरण एक तेजस्वी सूर्य रश्मि से शीतल शशि के रूप में प्रवर्त्तित हो गई। आचार्य श्री कवीन्द्र सागर सूरीश्वरजी म.सा. की निश्रा में मरूधर ज्योति मणिप्रभा श्रीजी एवं आपकी बड़ी दीक्षा एक साथ सम्पन्न हुई।

इसे पुण्य संयोग कहें या गुरु कृपा की फलश्रुति? आपने 32 वर्ष के गुरु सान्निध्य काल में मात्र एक चातुर्मास गुरुवर्य्याश्री से अलग किया और वह भी पूज्या प्रवर्त्तिनी विचक्षण श्रीजी म.सा. की आज्ञा से। 32 वर्ष की सान्निध्यता में आप कुल 32 महीने भी गुरु सेवा से वंचित नहीं रही। आपके जीवन की यह

विशेषता पूज्यवरों के प्रति सर्वात्मना समर्पण, अगाध सेवा भाव एवं गुरुकुल वास के महत्त्व को इंगित करती है।

आपश्री सरलता, सहजता, सहनशीलता, सहृदयता, विनम्रता, सहिष्णुता, दीर्घदर्शिता आदि अनेक दिव्य गुणों की पुंज हैं। संयम पालन के प्रति आपकी निष्ठा एवं मनोबल की दृढ़ता यह आपके जिन शासन समर्पण की सूचक है। आपका निश्छल, निष्कपट, निर्दम्भ व्यक्तित्व जनमानस में आपकी छवि को चिरस्थापित करता है। आपश्री का बाह्य आचार जितना अनुमोदनीय है, आंतरिक भावों की निर्मलता भी उतनी ही अनुशंसनीय है। आपकी इसी गुणवत्ता ने कई पथ भ्रष्टों को भी धर्माभिमुख किया है। आपका व्यवहार हर वर्ग के एवं हर उम्र के व्यक्तियों के साथ एक समान रहता है। इसी कारण आप आबाल वृद्ध सभी में समादृत हैं। हर कोई बिना किसी संकोच या हिचक के आपके समक्ष अपने मनोभाव अभिव्यक्त कर सकता है।

शास्त्रों में कहा गया है 'सन्त हृदय नवनीत समाना'– आपका हृदय दूसरों के लिए मक्खन के समान कोमल और सहिष्णु है। वहीं इसके विपरीत आप स्वयं के लिए वज्र से भी अधिक कठोर हैं। आपश्री अपने नियमों के प्रति अत्यन्त दृढ़ एवं अतुल मनोबली हैं। आज जीवन के लगभग सत्तर बसंत पार करने के बाद भी आप युवाओं के समान अप्रमत्त, स्फुर्तिमान एवं उत्साही रहती हैं। विहार में आपश्री की गति समस्त साध्वी मंडल से अधिक होती है।

आहार आदि शारीरिक आवश्यकताओं को आपने अल्पायु से ही सीमित एवं नियंत्रित कर रखा है। नित्य एकाशना, पुरिमड्ढ प्रत्याख्यान आदि के प्रति आप अत्यंत चुस्त हैं। जिस प्रकार सिंह अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने हेतु पूर्णतः सचेत एवं तत्पर रहता है वैसे ही आपश्री विषय-कषाय रूपी शत्रुओं का दमन करने में सतत जागरूक रहती हैं। विषय वर्धक अधिकांश विगय जैसे– मिठाई, कढ़ाई, दही आदि का आपके सर्वथा त्याग है।

आपश्री आगम, धर्म दर्शन, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि विविध विषयों की ज्ञाता एवं उनकी अधिकारिणी है। व्यावहारिक स्तर पर भी आपने एम.ए. के समकक्ष दर्शनाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की है। अध्ययन के संस्कार आपको गुरु परम्परा से वंशानुगत रूप में प्राप्त हुए हैं। आपकी निश्रागत गुरु भगिनियों एवं शिष्याओं के अध्ययन, संयम पालन तथा आत्मोकर्ष के प्रति

आप सदैव सचेष्ट रहती हैं। आपश्री एक सफल अनुशास्ता हैं यही वजह है कि आपकी देखरेख में सज्जन मण्डल की फुलवारी उन्नति एवं उत्कर्ष को प्राप्त कर रही हैं।

तप और जप आपके जीवन का अभिन्न अंग है। 'ॐ ह्रीं अर्हं' पद की रटना प्रतिपल आपके रोम-रोम में गुंजायमान रहती है। जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आप तदनुकूल मन:स्थिति बना लेती हैं। आप हमेशा कहती हैं कि

जो-जो देखा वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

आपकी परमात्म भक्ति एवं गुरुदेव के प्रति प्रवर्धमान श्रद्धा दर्शनीय है। आपका आगमानुरूप वर्तन आपको निसन्देह महान पुरुषों की कोटी में उपस्थित करता है। आपश्री एक जन प्रभावी वक्ता एवं सफल शासन सेविका हैं।

आपश्री की प्रेरणा से जिनशासन की शाश्वत परम्परा को अक्षुण्ण रखने में सहयोगी अनेकश: जिनमंदिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार हुआ है। श्रुत साहित्य के संवर्धन में आपश्री के साथ आपकी निश्रारत साध्वी मंडल का भी विशिष्ट योगदान रहा है। अब तक 25-30 पुस्तकों का लेखन-संपादन आपकी प्रेरणा से साध्वी मंडल द्वारा हो चुका है एवं अनेक विषयों पर कार्य अभी भी गतिमान है।

भारत के विविध क्षेत्रों का पद भ्रमण करते हुए आपने अनेक क्षेत्रों में धर्म एवं ज्ञान की ज्योति जागृत की है। राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, छ.ग., यू.पी., बिहार, बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, झारखंड, आन्ध्रप्रदेश आदि अनेक प्रान्तों की यात्रा कर आपने उन्हें अपनी पदरज से पवित्र किया है। इन क्षेत्रों में हुए आपके ऐतिहासिक चातुर्मासों की चिरस्मृति सभी के मानस पटल पर सदैव अंकित रहेगी। अन्त में यही कहूँगी-

चिन्तन में जिसके हो क्षमता, वाणी में सहज मधुरता हो।
आचरण में संयम झलके, वह श्रद्धास्पद बन जाता है।
जो अन्तर में ही रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।
जो भीतर में ही भ्रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।।

ऐसी विरल साधिका आर्यारत्न पूज्याश्री के चरण सरोजों में मेरा जीवन सदा भ्रमरवत् गुंजन करता रहे, यही अन्तरकामना।

साध्वी सौम्याजी की शोध यात्रा के यादगार पल

साध्वी प्रियदर्शनाश्री

आज सौम्यगुणाजी को सफलता के इस उत्तुंग शिखर पर देखकर ऐसा लग रहा है मानो चिर रात्रि के बाद अब यह मनभावन अरुणिम वेला उदित हुई हो। आज इस सफलता के पीछे रहा उनका अथक परिश्रम, अनेकश: बाधाएँ, विषय की दुरूहता एवं दीर्घ प्रयास के विषय में सोचकर ही मन अभिभूत हो जाता है। जिस प्रकार किसान बीज बोने से लेकर फल प्राप्ति तक अनेक प्रकार से स्वयं को तपाता एवं खपाता है और तब जाकर उसे फल की प्राप्ति होती है या फिर जब कोई माता नौ महीने तक गर्भ में बालक को धारण करती है तब उसे मातृत्व सुख की प्राप्ति होती है ठीक उसी प्रकार सौम्यगुणाजी ने भी इस कार्य की सिद्धि हेतु मात्र एक या दो वर्ष नहीं अपितु सत्रह वर्ष तक निरन्तर कठिन साधना की है। इसी साधना की आँच में तपकर आज 23 Volumes के बृहद् रूप में इनका स्वर्णिम कार्य जन ग्राह्य बन रहा है।

आज भी एक-एक घटना मेरे मानस पटल पर फिल्म के रूप में उभर रही है। ऐसा लगता है मानो अभी की ही बात हो, सौम्याजी को हमारे साथ रहते हुए 28 वर्ष होने जा रहे हैं और इन वर्षों में इन्हें एक सुन्दर सलोनी गुड़िया से एक विदुषी शासन प्रभाविका, गूढ़ान्वेषी साधिका बनते देखा है। एक पाँचवीं पढ़ी हुई लड़की आज D.LIt की पदवी से विभूषित होने वाली है। वह भी कोई सामान्य D.Lit. नहीं, 22-23 भागों में किया गया एक बृहद् कार्य और जिसका एक-एक भाग एक शोध प्रबन्ध (Thesis) के समान है। अब तक शायद ही किसी भी शोधार्थी ने डी.लिट् कार्य इतने अधिक Volumes में सम्पन्न किया होगा। लाडनूं विश्वविद्यालय की प्रथम डी.लिट्. शोधार्थी सौम्याजी के इस कार्य ने विश्वविद्यालय के ऐतिहासिक कार्यों में स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ते हुए श्रेष्ठतम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

सत्रह वर्ष पहले हम लोग पूज्या गुरुवर्य्याश्री के साथ पूर्वी क्षेत्र की स्पर्शना कर रहे थे। बनारस में डॉ. सागरमलजी द्वारा आगम ग्रन्थों के गूढ़ रहस्यों को जानने का यह एक स्वर्णिम अवसर था अतः सन् 1995 में गुर्वाज्ञा से मैं, सौम्याजी एवं नूतन दीक्षित साध्वीजी ने भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी की ओर अपने कदम बढ़ाए। शिखरजी आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए हम लोग धर्म नगरी काशी पहुँचे।

वाराणसी स्थित पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वहाँ के मन्दिरों एवं पंडितों के मंत्रनाद से दूर नीरव वातावरण में अद्भुत शांति का अनुभव करवा रहा था। अध्ययन हेतु मनोज्ञ एवं अनुकूल स्थान था। संयोगवश मरूधर ज्योति पूज्या मणिप्रभा श्रीजी म.सा. की निश्रावर्ती, मेरी बचपन की सखी पूज्या विद्युतप्रभा श्रीजी आदि भी अध्ययनार्थ वहाँ पधारी थी।

डॉ. सागरमलजी से विचार विमर्श करने के पश्चात आचार्य जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा पर शोध करने का निर्णय लिया गया। सन् 1973 में पूज्य गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. बंगाल की भूमि पर पधारी थी। स्वाध्याय रसिक आगमज्ञ श्री अगरचन्दजी नाहटा, श्री भँवलालजी नाहटा से पूज्याश्री की पारस्परिक स्वाध्याय चर्चा चलती रहती थी। एकदा पूज्याश्री ने कहा कि मेरी हार्दिक इच्छा है जिनप्रभसूरिकृत विधिमार्गप्रपा आदि ग्रन्थों का अनुवाद हो। पूज्याश्री योग-संयोग वश उसका अनुवाद नहीं कर पाई। विषय का चयन करते समय मुझे गुरुवर्य्या श्री की वही इच्छा याद आई या फिर यह कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सौम्याजी की योग्यता देखते हुए शायद पूज्याश्री ने ही मुझे इसकी अन्तस् प्रेरणा दी।

यद्यपि यह ग्रंथ विधि-विधान के क्षेत्र में बहु उपयोगी था परन्तु प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में आबद्ध होने के कारण उसका हिन्दी अनुवाद करना आवश्यक हो गया। सौम्याजी के शोध की कठिन परीक्षाएँ यहीं से प्रारम्भ हो गई। उन्होंने सर्वप्रथम प्राकृत व्याकरण का ज्ञान किया। तत्पश्चात दिन-रात एक कर पाँच महीनों में ही इस कठिन ग्रंथ का अनुवाद अपनी क्षमता अनुसार कर डाला। लेकिन यहीं पर समस्याएँ समाप्त नहीं हुई। सौम्यगुणाजी जो कि राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से दर्शनाचार्य (एम.ए.) थीं, बनारस में पी-एच.डी. हेतु आवेदन नहीं कर सकती थी। जिस लक्ष्य को लेकर आए थे वह कार्य पूर्ण नहीं

होने से मन थोड़ा विचलित हुआ परन्तु विश्वविद्यालय के नियमों के कारण हम कुछ भी करने में असमर्थ थे अतः पूज्य गुरुवर्य्याश्री के चरणों में पहुँचने हेतु पुनः कलकत्ता की ओर प्रयाण किया। हमारा वह चातुर्मास संघ आग्रह के कारण पुनः कलकत्ता नगरी में हुआ। वहाँ से चातुर्मास पूर्णकर धर्मानुरागी जनों को शीघ्र आने का आश्वासन देते हुए पूज्याश्री के साथ जयपुर की ओर विहार किया। जयपुर में आगम ज्योति, पूज्या गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की समाधि स्थली मोहनबाड़ी में मूर्ति प्रतिष्ठा का आयोजन था अतः उग्र विहार कर हम लोग जयपुर पहुँचें। बहुत ही सुन्दर और भव्य रूप में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। जयपुर संघ के अति आग्रह से पूज्याश्री एवं सौम्यगुणाजी का चातुर्मास जयपुर ही हुआ। जयपुर का स्वाध्यायी श्रावक वर्ग सौम्याजी से काफी प्रभावित था। यद्यपि बनारस में पी-एच.डी. नहीं हो पाई थी किन्तु सौम्याजी का अध्ययन आंशिक रूप में चालू था। उसी बीच डॉ. सागरमलजी के निर्देशानुसार जयपुर संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रो. डॉ. शीतलप्रसाद जैन के मार्गदर्शन में धर्मानुरागी श्री नवरतनमलजी श्रीमाल के डेढ़ वर्ष के अथक प्रयास से उनका रजिस्ट्रेशन हुआ। सामाजिक जिम्मेदारियों को संभालते हुए उन्होंने अपने कार्य को गति दी।

पी-एच.डी. का कार्य प्रारम्भ तो कर लिया परन्तु साधु जीवन की मर्यादा, विषय की दुरूहता एवं शोध आदि के विषय में अनुभवहीनता से कई बाधाएँ उत्पन्न होती रही। निर्देशक महोदय दिगम्बर परम्परा के होने से श्वेताम्बर विधि-विधानों के विषय में उनसे भी विशेष सहयोग मिलना मुश्किल था अतः सौम्याजी को जो करना था अपने बलबूते पर ही करना था। यह सौम्याजी ही थी जिन्होंने इतनी बाधाओं और रूकावटों को पार कर इस शोध कार्य को अंजाम दिया।

जयपुर के पश्चात कुशल गुरुदेव की प्रत्यक्ष स्थली मालपुरा में चातुर्मास हुआ। वहाँ पर लाइब्रेरी आदि की असुविधाओं के बीच भी उन्होंने अपने कार्य को पूर्ण करने का प्रयास किया। तदनन्तर जयपुर में एक महीना रहकर महोपाध्याय विनयसागरजी से इसका करेक्शन करवाया तथा कुछ सामग्री संशोधन हेतु डॉ. सागरमलजी को भेजी। यहाँ तक तो उनकी कार्य गति अच्छी रही किन्तु इसके बाद लम्बे विहार होने से उनका कार्य प्रायः अवरूद्ध हो गया। फिर अगला चातुर्मास पालीताणा हुआ। वहाँ पर आने वाले यात्रीगणों की भीड़

और तप साधना-आराधना में अध्ययन नहींवत ही हो पाया। पुन: साधु जीवन के नियमानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर कदम बढ़ाए। रायपुर (छ.ग.) जाने हेतु लम्बे विहारों के चलते वे अपने कार्य को किंचित भी संपादित नहीं कर पा रही थी। रायपुर पहुँचते-पहुँचते Registration की अवधि अन्तिम चरण तक पहुँच चुकी थी अत: चातुर्मास के पश्चात मुदितप्रज्ञा श्रीजी और इन्हें रायपुर छोड़कर शेष लोगों ने अन्य आसपास के क्षेत्रों की स्पर्शना की। रायपुर निवासी सुनीलजी बोथरा के सहयोग से दो-तीन मास में पूरे काम को शोध प्रबन्ध का रूप देकर उसे सन् 2001 में राजस्थान विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया। येन केन प्रकारेण इस शोध कार्य को इन्होंने स्वयं की हिम्मत से पूर्ण कर ही दिया।

तदनन्तर 2002 का बैंगलोर चातुर्मास सम्पन्न कर मालेगाँव पहुँचे। वहाँ पर संघ के प्रयासों से चातुर्मास के अन्तिम दिन उनका शोध वायवा संपन्न हुआ और उन्हें कुछ ही समय में पी-एच.डी. की पदवी विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई। सन् 1995 बनारस में प्रारम्भ हुआ कार्य सन् 2003 मालेगाँव में पूर्ण हुआ। इस कालावधि के दौरान समस्त संघों को उनकी पी-एच.डी. के विषय में ज्ञात हो चुका था और विषय भी रुचिकर था अत: उसे प्रकाशित करने हेतु विविध संघों से आग्रह होने लगा। इसी आग्रह ने उनके शोध को एक नया मोड़ दिया। सौम्याजी कहती 'मेरे पास बताने को बहुत कुछ है, परन्तु वह प्रकाशन योग्य नहीं है' और सही मायने में शोध प्रबन्ध सामान्य जनता के लिए उतना सुगम नहीं होता अत: गुरुवर्य्या श्री के पालीताना चातुर्मास के दौरान विधिमार्गप्रपा के अर्थ का संशोधन एवं अवान्तर विधियों पर ठोस कार्य करने हेतु वे अहमदाबाद पहुँची। इसी दौरान पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. ने भी इस कार्य का पूर्ण सर्वेक्षण कर उसमें अपेक्षित सुधार करवाए। तदनन्तर L.D. Institute के प्रोफेसर जितेन्द्र भाई, फिर कोबा लाइब्रेरी से मनोज भाई सभी के सहयोग से विधिमार्गप्रपा के अर्थ में रही त्रुटियों को सुधारते हुए उसे नवीन रूप दिया।

इसी अध्ययन काल के दौरान जब वे कोबा में विधि ग्रन्थों का आलोडन कर रही थी तब डॉ. सागरमलजी का बायपास सर्जरी हेतु वहाँ पदार्पण हुआ। सौम्याजी को वहाँ अध्ययनरत देखकर बोले– "आप तो हमारी विद्यार्थी हो, यहाँ क्या कर रही हो? शाजापुर पधारिए मैं यथासंभव हर सहयोग देने का प्रयास करूँगा।" यद्यपि विधि विधान डॉ. सागरमलजी का विषय नहीं था परन्तु

उनकी ज्ञान प्रौढ़ता एवं अनुभव शीलता सौम्याजी को सही दिशा देने हेतु पर्याप्त थी। वहाँ से विधिमार्गप्रपा का नवीनीकरण कर वे गुरुवर्य्याश्री के साथ मुम्बई चातुर्मासार्थ गईं। महावीर स्वामी देरासर पायधुनी से विधिप्रपा का प्रकाशन बहुत ही सुन्दर रूप में हुआ।

किसी भी कार्य में बार-बार बाधाएँ आए तो उत्साह एवं प्रवाह स्वत: मन्द हो जाता है, परन्तु सौम्याजी का उत्साह विपरीत परिस्थितियों में भी वृद्धिंगत रहा। मुम्बई का चातुर्मास पूर्णकर वे शाजापुर गईं। वहाँ जाकर डॉ. साहब ने डी.लिट करने का सुझाव दिया और लाडनूं विश्वविद्यालय के अन्तर्गत उन्हीं के निर्देशन में रजिस्ट्रेशन भी हो गया। यह लाडनूं विश्व भारती का प्रथम डी.लिट. रजिस्ट्रेशन था। सौम्याजी से सब कुछ ज्ञात होने के बाद मैंने उनसे कहा– प्रत्येक विधि पर अलग-अलग कार्य हो तो अच्छा है और उन्होंने वैसा ही किया। परन्तु जब कार्य प्रारम्भ किया था तब वह इतना विराट रूप ले लेगा यह अनुमान भी नहीं था। शाजापुर में रहते हुए इन्होंने छ:सात विधियों पर अपना कार्य पूर्ण किया। फिर गुर्वाज्ञा से कार्य को बीच में छोड़ पुन: गुरुवर्य्या श्री के पास पहुँची। जयपुर एवं टाटा चातुर्मास के सम्पूर्ण सामाजिक दायित्वों को संभालते हुए पूज्याश्री के साथ रही।

शोध कार्य पूर्ण रूप से रूका हुआ था। डॉ.साहब ने सचेत किया कि समयावधि पूर्णता की ओर है अत: कार्य शीघ्र पूर्ण करें तो अच्छा रहेगा वरना रजिस्ट्रेशन रद्द भी हो सकता है। अब एक बार फिर से उन्हें अध्ययन कार्य को गति देनी थी। उन्होंने लघु भगिनी मण्डल के साथ लाइब्रेरी युक्त शान्त-नीरव स्थान हेतु वाराणसी की ओर प्रस्थान किया। इस बार लक्ष्य था कि कार्य को किसी भी प्रकार से पूर्ण करना है। उनकी योग्यता देखते हुए श्री संघ एवं गुरुवर्य्या श्री उन्हें अब समाज के कार्यों से जोड़े रखना चाहते थे परंतु कठोर परिश्रम युक्त उनके विशाल शोध कार्य को भी सम्पन्न करवाना आवश्यक था। बनारस पहुँचकर इन्होंने मुद्रा विधि को छोटा कार्य जानकर उसे पहले करने के विचार से उससे ही कार्य को प्रारम्भ किया। देखते ही देखते उस कार्य ने भी एक विराट रूप ले लिया। उनका यह मुद्रा कार्य विश्वस्तरीय कार्य था जिसमें उन्होंने जैन, हिन्दू, बौद्ध, योग एवं नाट्य परम्परा की सहस्राधिक हस्त मुद्राओं पर विशेष शोध किया। यद्यपि उन्होंने दिन-रात परिश्रम कर इस कार्य को 6-7

महीने में एक बार पूर्ण कर लिया, किन्तु उसके विभिन्न कार्य तो अन्त तक चलते रहे। तत्पश्चात उन्होंने अन्य कुछ विषयों पर और भी कार्य किया। उनकी कार्यनिष्ठा देख वहाँ के लोग हतप्रभ रह जाते थे। संघ-समाज के बीच स्वयं बड़े होने के कारण नहीं चाहते हुए भी सामाजिक दायित्व निभाने ही पड़ते थे।

सिर्फ बनारस में ही नहीं रायपुर के बाद जब भी वे अध्ययन हेतु कहीं गई तो उन्हें ही बड़े होकर जाना पड़ा। सभी गुरु बहिनों का विचरण शासन कार्यों हेतु भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में होने से इस समस्या का सामना भी उन्हें करना ही था। साधु जीवन में बड़े होकर रहना अर्थात संघ-समाज-समुदाय की समस्त गतिविधियों पर ध्यान रखना, जो कि अध्ययन करने वालों के लिए संभव नहीं होता परंतु साधु जीवन यानी विपरीत परिस्थितियों का स्वीकार और जो इन्हें पार कर आगे बढ़ जाता है वह जीवन जीने की कला का मास्टर बन जाता है। इस शोधकार्य ने सौम्याजी को विधि-विधान के साथ जीवन के क्षेत्र में भी मात्र मास्टर नहीं अपितु विशेषज्ञ बना दिया।

पूज्य बड़े म.सा. बंगाल के क्षेत्र में विचरण कर रहे थे। कोलकाता वालों की हार्दिक इच्छा सौम्याजी को बुलाने की थी। वैसे जौहरी संघ के पदाधिकारी श्री प्रेमचन्दजी मोघा एवं मंत्री मणिलालजी दुसाज शाजापुर से ही उनके चातुर्मास हेतु आग्रह कर रहे थे। अत: न चाहते हुए भी कार्य को अर्ध विराम दे उन्हें कलकत्ता आना पड़ा। शाजापुर एवं बनारस प्रवास के दौरान किए गए शोध कार्य का कम्पोज करवाना बाकी था और एक-दो विषयों पर शोध भी। परंतु "जिसकी खाओ बाजरी उसकी बजाओ हाजरी" अत: एक और अवरोध शोध कार्य में आ चुका था। गुरुवर्य्या श्री ने सोचा था कि चातुर्मास के प्रारम्भिक दो महीने के पश्चात इन्हें प्रवचन आदि दायित्वों से निवृत्त कर देंगे परंतु समाज में रहकर यह सब संभव नहीं होता।

चातुर्मास के बाद गुरुवर्य्या श्री तो शेष क्षेत्रों की स्पर्शना हेतु निकल पड़ी किन्तु उन्हें शेष कार्य को पूर्णकर अन्तिम स्वरूप देने हेतु कोलकाता ही रखा। कोलकाता जैसी महानगरी एवं चिर-परिचित समुदाय के बीच तीव्र गति से अध्ययन असंभव था अत: उन्होंने मौन धारण कर लिया और सप्ताह में मात्र एक घंटा लोगों से धर्म चर्चा हेतु खुला रखा। फिर भी सामाजिक दायित्वों से पूर्ण मुक्ति संभव नहीं थी। इसी बीच कोलकाता संघ के आग्रह से एवं अध्ययन

हेतु अन्य सुविधाओं को देखते हुए पूज्याश्री ने इनका चातुर्मास कलकत्ता घोषित कर दिया। पूज्याश्री से अलग हुए सौम्याजी को करीब सात महीने हो चुके थे। चातुर्मास सम्मुख था और वे अपनी जिम्मेदारी पर प्रथम बार स्वतंत्र चातुर्मास करने वाली थी।

जेठ महीने की भीषण गर्मी में उन्होंने गुरुवर्य्याश्री के दर्शनार्थ जाने का मानस बनाया और ऊपर से मानसून सिना ताने खड़ा था। अध्ययन कार्य पूर्ण करने हेतु समयावधि की तलवार तो उनके ऊपर लटक ही रही थी। इन परिस्थितियों में उन्होंने 35-40 कि.मी. प्रतिदिन की रफ्तार से दुर्गापुर की तरफ कदम बढ़ाए। कलकत्ता से दुर्गापुर और फिर पुनः कोलकाता की यात्रा में लगभग एक महीना पढ़ाई नहींवत हुई। यद्यपि गुरुवर्य्याश्री के साथ चातुर्मासिक कार्यक्रमों की जिम्मेदारियाँ इन्हीं की होती है फिर भी अध्ययन आदि के कारण इनकी मानसिकता चातुर्मास संभालने की नहीं थी और किसी दृष्टि से उचित भी था। क्योंकि सबसे बड़े होने के कारण प्रत्येक कार्यभार का वहन इन्हीं को करना था अतः दो माह तक अध्ययन की गति पर पुनः ब्रेक लग गया। पूज्या श्री हमेशा फरमाती है कि–

जो जो देखा वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

सौम्याजी ने भी गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर संघ-समाज को समय ही नहीं अपितु भौतिकता में भटकते हुए मानव को धर्म की सही दिशा भी दिखाई। वर्तमान परिस्थितियों पर उनकी आम चर्चा से लोगों में धर्म को देखने का एक नया नजरिया विकसित हुआ। गुरुवर्य्याश्री एवं हम सभी को आन्तरिक आनंद की अनुभूति हो रही थी किन्तु सौम्याजी को वापस दुगुनी गति से अध्ययन में जुड़ना था। इधर कोलकाता संघ ने पूर्ण प्रयास किए फिर भी हिन्दी भाषा का कोई अच्छा कम्पोजर न मिलने से कम्पोजिंग कार्य बनारस में करवाया गया। दूरस्थ रहकर यह सब कार्य करवाना उनके लिए एक विषम समस्या थी। परंतु अब शायद वे इन सबके लिए सध गई थी, क्योंकि उनका यह कार्य ऐसी ही अनेक बाधाओं का सामना कर चुका था।

उधर सैंथिया चातुर्मास में पूज्याश्री का स्वास्थ्य अचानक दो-तीन बार बिगड़ गया। अतः वर्षावास पूर्णकर पूज्य गुरूवर्य्या श्री पुनः कोलकाता की ओर

पधारी। सौम्याजी प्रसन्न थी क्योंकि गुरूवर्य्या श्री स्वयं उनके पास पधार रही थी। गुरुजनों की निश्रा प्राप्त करना हर विनीत शिष्य का मनेच्छित होता है। पूज्या श्री के आगमन से वे सामाजिक दायित्वों से मुक्त हो गई थी। अध्ययन के अन्तिम पड़ाव में गुरूवर्य्या श्री का साथ उनके लिए सुवर्ण संयोग था क्योंकि प्राय: शोध कार्य के दौरान पूज्याश्री उनसे दूर रही थी।

शोध समय पूर्णाहुति पर था। परंतु इस बृहद कार्य को इतनी विषमताओं के भंवर में फँसकर पूर्णता तक पहुँचाना एक कठिन कार्य था। कार्य अपनी गति से चल रहा था और समय अपनी धुरी पर। सबमिशन डेट आने वाली थी किन्तु कम्पोजिंग एवं प्रूफ रीडिंग आदि का काफी कार्य शेष था।

पूज्याश्री के प्रति अनन्य समर्पित श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा को जब इस स्थिति के बारे में ज्ञात हुआ तो उन्होंने युनिवर्सिटी द्वारा समयावधि बढ़ाने हेतु अर्जी पत्र देने का सुझाव दिया। उनके हार्दिक प्रयासों से 6 महीने का एक्सटेंशन प्राप्त हुआ। इधर पूज्या श्री तो शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा सम्पन्न कर अन्य क्षेत्रों की ओर बढ़ने की इच्छुक थी। परंतु भविष्य के गर्भ में क्या छुपा है यह कोई नहीं जानता। कुछ विशिष्ट कारणों के चलते कोलकाता भवानीपुर स्थित शंखेश्वर मन्दिर की प्रतिष्ठा चातुर्मास के बाद होना निश्चित हुआ। अत: अब आठ-दस महीने तक बंगाल विचरण निश्चित था। सौम्याजी को अप्रतिम संयोग मिला था कार्य पूर्णता के लिए।

शासन देव उनकी कठिन से कठिन परीक्षा ले रहा था। शायद विषमताओं की अग्नि में तपकर वे सौम्याजी को खरा सोना बना रहे थे। कार्य अपनी पूर्णता की ओर पहुँचता इसी से पूर्व उनके द्वारा लिखित 23 खण्डों में से एक खण्ड की मूल कॉपी गुम हो गई। पुन: एक खण्ड का लेखन और समयावधि की अल्पता ने समस्याओं का चक्रव्यूह सा बना दिया। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। जिनपूजा क्रिया विधानों का एक मुख्य अंग है अत: उसे गौण करना या छोड़ देना भी संभव नहीं था। चांस लेते हुए एक बार पुन: Extension हेतु निवेदन पत्र भेजा गया। मुनि जीवन की कठिनता एवं शोध कार्य की विशालता के मद्देनजर एक बार पुन: चार महीने की अवधि युनिवर्सिटी के द्वारा प्राप्त हुई।

शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा निमित्त सम्पूर्ण साध्वी मंडल का चातुर्मास बकुल बगान स्थित लीलीजी मणिलालजी सुखानी के नूतन बंगले में होना निश्चित हुआ।

पूज्याश्री ने खडगपुर, टाटानगर आदि क्षेत्रों की ओर विहार किया। पाँच-छह साध्वीजी अध्ययन हेतु पौशाल में ही रूके थे। श्री जिनरंगसूरि पौशाल कोलकाता बड़ा बाजार में स्थित है। साधु-साध्वियों के लिए यह अत्यंत शाताकारी स्थान है। सौम्याजी को बनारस से कोलकाता लाने एवं अध्ययन पूर्ण करवाने में पौशाल के ट्रस्टियों की विशेष भूमिका रही है। सौम्याजी ने अपना अधिकांश अध्ययन काल वहाँ व्यतीत किया।

ट्रस्टीगण श्री कान्तिलालजी, कमलचंदजी, विमलचंदजी, मणिलालजी आदि ने भी हर प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की। संघ-समाज के सामान्य दायित्वों से बचाए रखा। इसी अध्ययन काल में बीकानेर हाल कोलकाता निवासी श्री खेमचंदजी बांठिया ने आत्मीयता पूर्वक सेवाएँ प्रदान कर इन लोगों को निश्चिन्त रखा। इसी तरह अनन्य सेवाभावी श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत (लालाबाबू) जो सौम्याजी को बहनवत मानते हैं उन्होंने एक भाई के समान उनकी हर आवश्यकता का ध्यान रखा। कलकत्ता संघ सौम्याजी के लिए परिवारवत ही हो गया था। सम्पूर्ण संघ की एक ही भावना थी कि उनका अध्ययन कोलकाता में ही पूर्ण हो।

पूज्याश्री टाटानगर से कोलकाता की ओर पधार रही थी। सुयोग्या साध्वी सम्यग्दर्शनाजी उग्र विहार कर गुरुवर्य्याश्री के पास पहुँची थी। सौम्याजी निश्चिंत थी कि इस बार चातुर्मासिक दायित्व सुयोग्या सम्यग दर्शनाजी महाराज संभालेंगे। वे अपना अध्ययन उचित समयावधि में पूर्ण कर लेंगे। परंतु परिस्थिति विशेष से सम्यगजी महाराज का चातुर्मास खडगपुर ही हो गया।

सौम्याजी की शोधयात्रा में संघर्षों की समाप्ति ही नहीं हो रही थी। पुस्तक लेखन, चातुर्मासिक जिम्मेदारियाँ और प्रतिष्ठा की तैयारियाँ कोई समाधान दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा था। अध्ययन की महत्ता को समझते हुए पूज्याश्री एवं अमिताजी सुखानी ने उन्हें चातुर्मासिक दायित्वों से निवृत्त रहने का अनुनय किया किन्तु गुरु की शासन सेवा में सहयोगी बनने के लिए इन्होंने दो महीने गुरुवर्य्या श्री के साथ चातुर्मासिक दायित्वों का निर्वाह किया। फिर वह अपने अध्ययन में जुट गई।

कई बार मन में प्रश्न उठता कि हमारी प्यारी सौम्या इतना साहस कहाँ से लाती है। किसी कवि की पंक्तियाँ याद आ रही है–

सूरज से कह दो बेशक वह, अपने घर आराम करें ।
चाँद सितारे जी भर सोएं, नहीं किसी का काम करें ।
अगर अमावस से लड़ने की जिद कोई कर लेता है ।
तो सौम्य गुणा सा जुगनु सारा, अंधकार हर लेता है ।।

जिन पूजा एक विस्तृत विषय है। इसका पुनर्लेखन तो नियत अवधि में हो गया परंतु कम्पोजिंग आदि नहीं होने से शोध प्रबंध के तीसरे एवं चौथे भाग को तैयार करने के लिए समय की आवश्यकता थी। अब तीसरी बार लाडनूं विश्वविद्यालय से Extension मिलना असंभव प्रतीत हो रहा था।

श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा समस्त परिस्थितियों से अवगत थे। उन्होंने पूज्य गुरूवर्य्या श्री से निवेदन किया कि सौम्याजी को पूर्णत: निवृत्ति देकर कार्य शीघ्रातिशीघ्र करवाया जाए। विश्वविद्यालय के तत्सम्बन्धी नियमों के बारे में पता करके डेढ़ महीने की अन्तिम एवं विशिष्ट मौहलत दिलवाई। अब देरी होने का मतलब था Rejection of Work by University अत: त्वरा गति से कार्य चला।

सौम्याजी पर गुरुजनों की कृपा अनवरत रही है। पूज्य गुरूवर्य्या सज्जन श्रीजी म.सा. के प्रति वह विशेष श्रद्धा प्रणत हैं। अपने हर शुभ कर्म का निमित्त एवं उपादान उन्हें ही मानती हैं। इसे साक्षात गुरु कृपा की अनुश्रुति ही कहना होगा कि उनके समस्त कार्य स्वत: ग्यारस के दिन सम्पन्न होते गए। सौम्याजी की आन्तरिक इच्छा थी कि पूज्याश्री को समर्पित उनकी कृति पूज्याश्री की पुण्यतिथि के दिन विश्वविद्यालय में Submit की जाए और निमित्त भी ऐसे ही बने कि Extension लेते-लेते संयोगवशात पुन: वही तिथि और महीना आ गया।

23 दिसम्बर 2012 मौन ग्यारस के दिन लाडनूं विश्वविद्यालय में 4 भागों में वर्गीकृत 23 खण्डीय Thesis जमा की गई। इतने विराट शोध कार्य को देखकर सभी हतप्रभ थे। 5556 पृष्ठों में गुम्फित यह शोध कार्य यदि शोध नियम के अनुसार तैयार किया होता तो 11000 पृष्ठों से अधिक हो जाते। यह सब गुरूवर्य्या श्री की ही असीम कृपा थी।

पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. की हार्दिक इच्छा थी कि सौम्याजी के इस ज्ञानयज्ञ का सम्मान किया जाए जिससे जिन शासन की प्रभावना हो और जैन संघ गौरवान्वित बने।

भवानीपुर–शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा का पावन सुयोग था। श्रुतज्ञान के बहुमान रूप 23 ग्रन्थों का भी जुलूस निकाला गया। सम्पूर्ण कोलकाता संघ द्वारा उनकी वधामणी की गई। यह एक अनुमोदनीय एवं अविस्मरणीय प्रसंग था।

बस मन में एक ही कसक रह गई कि मैं इस पूर्णाहुति का हिस्सा नहीं बन पाई।

आज सौम्याजी की दीर्घ शोध यात्रा को पूर्णता के शिखर पर देखकर नि:सन्देह कहा जा सकता है कि पूज्या प्रवर्त्तिनी म.सा. जहाँ भी आत्म साधना में लीन है वहाँ से उनकी अनवरत कृपा दृष्टि बरस रही है। शोध कार्य पूर्ण होने के बाद भी सौम्याजी को विराम कहाँ था? उनके शोध विषय की त्रैकालिक प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए उन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। पुस्तक प्रकाशन सम्बन्धी सभी कार्य शेष थे तथा पुस्तकों का प्रकाशन कोलकाता से ही हो रहा था। अत: कलकत्ता संघ के प्रमुख श्री कान्तिलालजी मुकीम, विमलचंदजी महमवाल, श्राविका श्रेष्ठा प्रमिलाजी महमवाल, विजयेन्द्रजी संखलेचा आदि ने पूज्याश्री के सम्मुख सौम्याजी को रोकने का निवेदन किया। श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत, श्री मणिलालजी दूसाज आदि भी निवेदन कर चुके थे। यद्यपि अजीमगंज दादाबाड़ी प्रतिष्ठा के कारण रोकना असंभव था परंतु मुकिमजी के अत्याग्रह के कारण पूज्याश्री ने उन्हें कुछ समय के लिए वहाँ रहने की आज्ञा प्रदान की।

गुरूवर्य्या श्री के साथ विहार करते हुए सौम्यागुणाजी को तीन Stop जाने के बाद वापस आना पड़ा। दादाबाड़ी के समीपस्थ शीतलनाथ भवन में रहकर उन्होंने अपना कार्य पूर्ण किया। इस तरह इनकी सम्पूर्ण शोध यात्रा में कलकत्ता एक अविस्मरणीय स्थान बनकर रहा।

क्षणै: क्षणै: बढ़ रहे उनके कदम अब मंजिल पर पहुँच चुके हैं। आज जो सफलता की बहुमंजिला इमारत इस पुस्तक श्रृंखला के रूप में देख रहे हैं वह मजबूत नींव इन्होंने अपने उत्साह, मेहनत और लगन के आधार पर रखी है। सौम्यगुणाजी का यह विशद् कार्य युग-युगों तक एक कीर्तिस्तम्भ के रूप में

स्मरणीय रहेगा। श्रुत की अमूल्य निधि में विधि-विधान के रहस्यों को उजागर करते हुए उन्होंने जो कार्य किया है वह आने वाली भावी पीढ़ी के लिए आदर्श रूप रहेगा। लोक परिचय एवं लोकप्रसिद्धि से दूर रहने के कारण ही आज वे इस बृहद् कार्य को सम्पन्न कर पाई हैं। मैं परमात्मा से यही प्रार्थना करती हूँ कि वे सदा इसी तरह श्रुत संवर्धन के कल्याण पथ पर गतिशील रहे। अंतत: उनके अडिग मनोबल की अनुमोदना करते हुए यही कहूँगी–

प्रगति शिला पर चढ़ने वाले बहुत मिलेंगे,
कीर्तिमान करने वाला तो विरला होता है।
आंदोलन करने वाले तो बहुत मिलेंगे,
दिशा बदलने वाला कोई निराला होता है।
तारों की तरह टिम-टिमाने वाले अनेक होते हैं,
पर सूरज बन रोशन करने वाला कोई एक ही होता है।
समय गंवाने वालों से यह दुनिया भरी है,
पर इतिहास बनाने वाला कोई सौम्य सा ही होता है।
प्रशंसा पाने वाले जग में अनेक मिलेंगे,
प्रिय बने सभी का ऐसा कोई सज्जन ही होता है ।।

●

हार्दिक अनुशंसा

किसी कवि ने बहुत ही सुन्दर कहा है–

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सो घड़ा, ऋतु आवत फल होय।।

हर कार्य में सफलता समय आने पर ही प्राप्त होती है। एक किसान बीज बोकर साल भर तक मेहनत करता है तब जाकर उसे फसल प्राप्त होती है। चार साल तक College में मेहनत करने के बाद विद्यार्थी Doctor, Engineer या MBA होता है।

साध्वी सौम्यगुणाजी आज सफलता के जिस शिखर पर पहुँची है उसके पीछे उनकी वर्षों की मेहनत एवं धैर्य नींव रूप में रहे हुए हैं। लगभग 30 वर्ष पूर्व सौम्याजी का आगमन हमारे मण्डल में एक छोटी सी गुड़िया के रूप में हुआ था। व्यवहार में लघुता, विचारों में सरलता एवं बुद्धि की श्रेष्ठता उनके प्रत्येक कार्य में तभी से परिलक्षित होती थी। ग्यारह वर्ष की निशा जब पहली बार पूज्याश्री के पास वैराग्यवासित अवस्था में आई तब मात्र चार माह की अवधि में प्रतिक्रमण, प्रकरण, भाष्य,कर्मग्रन्थ, प्रात:कालीन पाठ आदि कंठस्थ कर लिए थे। उनकी तीव्र बुद्धि एवं स्मरण शक्ति की प्रखरता के कारण पूज्य छोटे म.सा. (पूज्य शशिप्रभा श्रीजी म.सा.) उन्हें अधिक से अधिक चीजें सिखाने की इच्छा रखते थे।

निशा का बाल मन जब अध्ययन से उक्ता जाता और बाल सुलभ चेष्टाओं के लिए मन उत्कंठित होने लगता, तो कई बार वह घंटों उपाश्रय की छत पर तो कभी सीढ़ियों में जाकर छुप जाती ताकि उसे अध्ययन न करना पड़े। परंतु यह उसकी बाल क्रीड़ाएँ थी। 15-20 गाथाएँ याद करना उसके लिए एक सहज बात थी। उनके अध्ययन की लगन एवं सीखने की कला आदि के अनुकरण की प्रेरणा आज भी छोटे म.सा. आने वाली नई मंडली को देते हैं। सूत्रागम अध्ययन, ज्ञानार्जन, लेखन, शोध आदि के कार्य में उन्होंने जो श्रृंखला प्रारम्भ की है आज सज्जनमंडल में उसमें कई कड़ियाँ जुड़ गई हैं परन्तु मुख्य कड़ी तो

मुख्य ही होती है। ये सभी के लिए प्रेरणा बन रही हैं किन्तु इनके भीतर जो प्रेरणा आई वह कहीं न कहीं पूज्य गुरुवर्य्या श्री की असीम कृपा है।

उच्च उड़ान नहीं भर सकते
तुच्छ बाहरी चमकीले पर
महत कर्म के लिए चाहिए
महत प्रेरणा बल भी भीतर

यह महत प्रेरणा गुरु कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। विनय, सरलता, शालीनता, ऋजुता आदि गुण गुरुकृपा की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

सौम्याजी का मन शुरू से सीधा एवं सरल रहा है। सांसारिक कपट-माया या व्यवहारिक औपचारिकता निभाना इनके स्वभाव में नहीं है। पूज्य प्रवर्तिनीजी म.सा. को कई बार ये सहज में कहती **'महाराज श्री!' मैं तो आपकी कोई सेवा नहीं करती, न ही मुझमें विनय है, फिर मेरा उद्धार कैसे होगा, मुझे गुरु कृपा कैसे प्राप्त होगी?' तब पूज्याश्री फरमाती– 'सौम्या! तेरे ऊपर तो मेरी अनायास कृपा है, तूं चिंता क्यों करती है? तूं तो महान साध्वी बनेगी।'** आज पूज्याश्री की ही अन्तस शक्ति एवं आशीर्वाद का प्रस्फोटन है कि लोकैषणा, लोक प्रशंसा एवं लोक प्रसिद्धि के मोह से दूर वे श्रुत सेवा में सर्वात्मना समर्पित हैं। जितनी समर्पित वे पूज्या श्री के प्रति थी उतनी ही विनम्र अन्य गुरुजनों के प्रति भी। गुरु भगिनी मंडल के कार्यों के लिए भी वे सदा तत्पर रहती हैं। चाहे बड़ों का कार्य हो, चाहे छोटों का उन्होंने कभी किसी को टालने की कोशिश नहीं की। चाहे प्रियदर्शना श्रीजी हो, चाहे दिव्यदर्शना श्रीजी, चाहे शुभदर्शनाश्रीजी हो, चाहे शीलगुणा जी आज तक सभी के साथ इन्होंने लघु बनकर ही व्यवहार किया है। कनकप्रभाजी, संयमप्रज्ञाजी आदि लघु भगिनी मंडल के साथ भी इनका व्यवहार सदैव सम्मान, माधुर्य एवं अपनेपन से युक्त रहा है। ये जिनके भी साथ चातुर्मास करने गई हैं उन्हें गुरुवत सम्मान दिया तथा उनकी विशिष्ट आन्तरिक मंगल कामनाओं को प्राप्त किया है। पूज्या विनीता श्रीजी म.सा., पूज्या मणिप्रभाश्रीजी म.सा., पूज्या हेमप्रभा श्रीजी म.सा., पूज्या सुलोचना श्रीजी म.सा., पूज्या विद्युतप्रभाश्रीजी म.सा. आदि की इन पर विशेष कृपा रही है। पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा., आचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी म.सा., आचार्य श्री कीर्तियशसूरिजी आदि ने इन्हें अपना

स्नेहाशीष एवं मार्गदर्शन दिया है। आचार्य श्री राजयशसूरिजी म.सा., पूज्य भ्राता श्री विमलसागरजी म.सा. एवं पूज्य वाचंयमा श्रीजी (बहन) म.सा. इनका Ph.D. एवं D.Litt. का विषय विधि-विधानों से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें 'विधिप्रभा' नाम से ही बुलाते हैं।

पूज्या शशिप्रभाजी म.सा. ने अध्ययन काल के अतिरिक्त इन्हें कभी भी अपने से अलग नहीं किया और आज भी हम सभी गुरु बहनों की अपेक्षा गुरु निश्रा प्राप्ति का लाभ इन्हें ही सर्वाधिक मिलता है। पूज्याश्री के चातुर्मास में अपने विविध प्रयासों के द्वारा चार चाँद लगाकर ये उन्हें और भी अधिक जानदार बना देती हैं।

तप-त्याग के क्षेत्र में तो बचपन से ही इनकी विशेष रुचि थी। नवपद की ओली का प्रारम्भ इन्होंने गृहस्थ अवस्था में ही कर दिया था। इनकी छोटी उम्र को देखकर छोटे म.सा. ने कहा– देखो! तुम्हें तपस्या के साथ उतनी ही पढ़ाई करनी होगी तब तो ओलीजी करना अन्यथा नहीं। ये बोली– मैं रोज पन्द्रह नहीं बीस गाथा करूंगी आप मुझे ओलीजी करने दीजिए और उस समय ओलीजी करके सम्पूर्ण प्रात:कालीन पाठ कंठाग्र किये। बीसस्थानक, वर्धमान, नवपद, मासक्षमण, श्रेणी तप, चत्तारि अट्ठ दस दोय, पैंतालीस आगम, ग्यारह गणधर, चौदह पूर्व, अट्ठाईस लब्धि, धर्मचक्र, पखवासा आदि कई छोटे-बड़े तप करते हुए इन्होंने अध्ययन एवं तपस्या दोनों में ही अपने आपको सदा अग्रसर रखा।

आज उनके वर्षों की मेहनत की फलश्रुति हुई है। जिस शोध कार्य के लिए वे गत 18 वर्षों से जुटी हुई थी उस संकल्पना को आज एक मूर्त्त स्वरूप प्राप्त हुआ है। अब तक सौम्याजी ने जिस धैर्य, लगन, एकाग्रता, श्रुत समर्पण एवं दृढ़निष्ठा के साथ कार्य किया है वे उनमें सदा वृद्धिंगत रहे। पूज्य गुरुवर्य्या श्री के नक्षे कदम पर आगे बढ़ते हुए वे उनके कार्यों को और नया आयाम दें तथा श्रुत के क्षेत्र में एक नया अवदान प्रस्तुत करें। इन्हीं शुभ भावों के साथ–

गुरु भगिनी मण्डल

प्राक्कथन

मुद्रा योग विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, अध्यात्म साधना का आवश्यक चरण है तथा शास्त्रीय विद्याओं में विशिष्टतम विद्या है। मानव मात्र के समग्र विकास के लिए मुद्रा योग अत्यन्त ही उपयोगी है। भारतीय ऋषि-महर्षियों ने मन, बुद्धि एवं शरीर को शान्त रखने के लिए विभिन्न मुद्राओं का प्रयोग किया था। इस विज्ञान के द्वारा हम आज भी आध्यात्मिक, शारीरिक एवं मानसिक शक्ति प्राप्त करके भव-भवान्तर को सफल बना सकते हैं।

मानव मात्र की अन्त: शक्तियाँ असीम हैं किन्तु वे हमारी असीमित कल्पना के विस्तृत क्षेत्र से भी परे हैं। भौतिक स्तर पर जीवन यात्रा का निर्वहन करने वाला व्यक्ति उन अन्त: शक्तियों को न पहचान सकता है और न ही उनका सार्थक उपयोग कर पाता है। वह सामान्यत: अज्ञानजनित बुद्धि एवं मोहादि के वशीभूत हुआ बाह्य उपलब्धियों को ही वास्तविक मानता है। मुद्रा एक ऐसी पद्धति है जिसके माध्यम से हम जड़-चेतन का भेद ज्ञान करते हुए यथार्थता के निकट पहुँच सकते हैं, पौद्गलिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का मूल्यांकन कर सकते हैं और अन्तरंग शक्तियों को जागृत करने हेतु प्रयत्नशील हो सकते हैं। प्रत्येक मानव का अन्तिम लक्ष्य यही होना चाहिए कि उसे अपनी निजी शक्तियों का बोध हो और अपने स्वरूप की पहचान हो। एक बार चेतना के उच्च स्तरों की झलक दिख जाये तो मायाजाल के सभी झूठे प्रपंच एवं समस्याएँ समाप्त हो सकती है।

इस उच्च भूमिका पर आरोहण करने के लिए चित्त का एकाग्र होना आवश्यक है। अधिकांश पद्धतियों में एकाग्रता के महत्त्व पर जोर दिया गया है। एकाग्रता द्वारा हम बहिरंग जीवन की ओर प्रवाहित होती हुई चेतना को अन्तरंग क्षेत्रों की ओर मोड़ सकते हैं। यदि प्रश्न उठता है कि एकाग्रता क्या है? साधारणत: एकाग्रता का मतलब है अपनी चेतन-धारा को सभी बाह्य विषयों एवं विचारों से हटाकर किसी विशेष विचार-बिन्दु पर केन्द्रित करना। यह कार्य सरल नहीं है। हमारी चेतना को विविधता प्रिय है। एक

से दूसरे और दूसरे से तीसरे विषय पर मंडराने की आदत बहुत पुरानी है इसे एक विषय पर केन्द्रित करना संकल्प साध्य है।

मुद्राएँ शरीर एवं चित्त स्थिरीकरण के लिए ब्रह्मास्त्र का कार्य करती हैं। जैसे ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कभी निष्फल नहीं जाता वैसे ही सुविधि युक्त किया गया मुद्राभ्यास स्थिरता गुण को विकसित करता है। घेरण्ड संहिता में सुस्पष्ट कहा गया है कि स्थिरता के लिए मुद्रायोग को साधना चाहिए।

स्थैर्य गुण बहिरंग व अन्तरंग समग्र पक्षों से अत्यन्त लाभदायी है। हम अनुभव करें तो नि:सन्देह महसूस हो सकेगा कि स्थिरता के पलों में व्यक्ति की चेतना अबाध रूप से प्रवाहित होने लगती है। इस अवस्था में अवचेतन मन में छिपे मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप चेतन मन के स्तर तक ऊपर उठ आते हैं तथा अनावृत्त होने लगते हैं।

सामान्य तौर पर मानसिक विक्षेपों के कारण हम अपनी आंतरिक शक्तियों से संबंध स्थापित नहीं कर पाते अथवा उन्हें अभिव्यक्त नहीं कर पाते। जबकि एकाग्रता के क्षणों में ही हम अपने व्यक्तित्व के आंतरिक पक्षों को समझना प्रारंभ करते हैं। इस प्रकार एकाग्र चित्त के परिणाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। मुद्रा विज्ञान से इन परिणामों को अवश्यंभावी प्राप्त किया जाता है।

मुद्राएँ शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन बनाए रखती है। हठयोग संबंधी मुद्राभ्यास में बन्ध का प्रयोग भी किया जाता है स्वभावत: मुद्रा और बन्ध हमारे शरीर के स्नायु जालकों तथा अन्त:स्रावी ग्रन्थियों को उत्तेजित करते हैं और शरीर की जैव-ऊर्जाओं को सक्रिय करते हैं। कभी-कभी मुद्राएँ आंतरिक, मानसिक या अतीन्द्रिय भावनाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के रूप में भी कार्य करती हैं। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है।

हमारे शरीर में अतीन्द्रिय शक्तियों से युक्त एक यौगिक पथ है जिसे मेरूदण्ड कहते हैं। इस मार्ग पर तथा इसके ऊपरी और निचले हिस्से में अनेक शक्तियाँ मौजूद हैं। साथ ही इस मार्गस्थित शक्तियों के इर्द-गिर्द विभिन्न स्नायु जाल बिछे हुए हैं। ये जाल मस्तिष्क केन्द्रों और अंत:स्रावी ग्रंथियों से सीधे जुड़े होते हैं। यौगिक मुद्राओं से स्नायु मंडल जागृत होकर शरीर में अनेक मनोवैज्ञानिक और जीव-रासायनिक परिवर्तन करते हैं। इन स्थितियों में अदृश्य शक्ति सम्पन्न षट्चक्रों का भेदन होता है और चेतन धारा ऊर्ध्वगामी बनती है।

मुद्रा तत्त्व परिवर्तन की अपूर्व क्रिया है। हमारा शरीर पंच तत्त्वों से निर्मित माना जाता है। इन तत्त्वों की विकृति के कारण ही प्रकृति में असंतुलन और शरीर में रोग पैदा होते हैं। हस्त मुद्राएँ पंच तत्त्वों को संतुलित करने का सशक्त माध्यम है क्योंकि शरीर की पाँचों अंगुलियाँ पंच तत्त्व की प्रतिनिधि है, जिन्हें इन अंगुलियों की मदद से घटा-बढ़ाकर संतुलित किया जा सकता है। शरीर विज्ञान के अनुसार अंगूठे के अग्रभाग को किसी भी अंगुली के अग्रभाग से जोड़ा जाए तो उससे सम्बन्धित तत्त्व स्थिर हो जाता है, जैसे अंगूठा अग्नि तत्त्व का स्थान है, तर्जनी वायु तत्त्व का, मध्यमा आकाश तत्त्व का, अनामिका पृथ्वी तत्त्व का और कनिष्ठिका जल तत्त्व का प्रतीक है। इस प्रकार अंगूठे के स्पर्श से संबंधित अंगुलियों के तत्त्व जो शरीर में व्याप्त हैं, प्रभावित होते हैं।

अंगूठे के अग्रभाग को किसी भी अंगुली के निचले हिस्से अर्थात् मूल पर्व पर लगाने से उस अंगुली से सम्बन्धित तत्त्व की शरीर में वृद्धि होती है। यदि अंगुली को मोड़कर अंगूठे की जड़ में अर्थात उसके आधार पर रखने से उस अंगुली से सम्बन्धित तत्त्व का शरीर में ह्रास होता है। इस प्रकार विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से पंच तत्त्वों को घटा-बढ़ाकर सन्तुलित किया जा सकता है। इससे शरीर को स्वास्थ्य-लाभ मिलता है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि अधिकांश मुद्राएँ हाथों से ही क्यों की जाती है? यदि गहराई से अवलोकन करें तो परिज्ञात होता है कि शरीर के सक्रिय अंगों में हाथ प्रमुख है। हथेली में एक विशेष प्रकार की प्राण ऊर्जा अथवा शक्ति का प्रवाह निरन्तर होता रहता है। इसी कारण शरीर के किसी भी भाग में दुःख, दर्द, पीड़ा होने पर सहज की हाथ वहाँ चला जाता हैं। अंगुलियों में अपेक्षाकृत संवेदनशीलता अधिक होती है इसी कारण अंगुलियों से ही नाड़ी को देखा जाता है। जिससे मस्तिष्क में नब्ज की कार्यविधि का संदेश शीघ्र पहुंच जाता है। रेकी चिकित्सा में हथेली का ही उपयोग होता है। रत्न चिकित्सा में विभिन्न प्रकार के नगीने अंगूठी के माध्यम से हाथ की अंगुलियों में ही पहने जाते हैं जिनकी तरंगों के प्रभाव से शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है।

एक्यूप्रेशर चिकित्सा में हथेली में सारे शरीर के संवदेन बिन्दु होते हैं। सुजोक बायल मेरेडियन के सिद्धान्तानुसार अंगुलियों से ही शरीर के

विभिन्न अंगों में प्राण ऊर्जा के प्रवाह को नियन्त्रित और संतुलित किया जा सकता है। हस्त रेखा विशेषज्ञ हथेली देखकर व्यक्ति के वर्तमान, भूत और भविष्य की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को बतला सकते हैं। कहने का आशय यही है कि हाथ, हथेली और अंगुलियों का मनुष्य की जीवन शैली से सीधा सम्बन्ध होता है। ये मुद्राएँ शरीरस्थ चेतना के शक्ति केन्द्रों में रिमोट कन्ट्रोल के समान कार्य करती हैं फलतः स्वास्थ्य रक्षा और रोग निवारण होता है।

मुद्रा यह किसी एक धर्म या सम्प्रदाय से अथवा हिन्दु या बौद्ध धर्म से ही सम्बन्धित नहीं है। ईसाई धर्म में भी हस्त मुद्राएँ देवता एवं संतों के अभिप्राय तथा अभिव्यक्ति के माध्यम रहे हैं। ईसा मसीह द्वारा ऊपर किए गए दाएँ हाथ की मध्यमा एवं तर्जनी ऊर्ध्व की ओर, अनामिका एवं कनिष्ठका हथेली में मुड़ी हुई तथा अंगूठा उन दोनों को आवेष्टित करते हुए ऐसी जो मुद्रा दर्शायी जाती है वह कृपा, क्षमा एवं देवी आशीष की सूचक है। इसी प्रकार मरियम की मूर्ति में जो मुद्रा दिखाई देती है वह मातृत्व एवं ममत्त्व भाव की सूचक है। यह भगवान के इच्छाओं के स्वीकार की भी द्योतक है।

हिन्दु और बौद्ध धर्म में प्रयुक्त कई मुद्राएँ विशिष्ट देवी-देवताओं आदि की सूचक है। मुख्यतया तांत्रिक मुद्राएँ विशेष प्रसंगों में पादरी तथा लामाओं द्वारा धारण की जाती है। इस प्रकार मुद्रा विज्ञान समस्त धर्मपरम्परा सम्मत है।

मुद्रा योग से संबन्धित यह शोध कार्य सात खण्डों में किया गया है।

प्रथम खण्ड में मुद्रा का स्वरूप विश्लेषण करते हुए तत्संबंधी कई मूल्यवान् तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें मुद्रा योग का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक पक्ष भी प्रस्तुत किया है जिससे शोधार्थी एवं आत्मार्थी आवश्यक जानकारी एक साथ प्राप्त कर सकते हैं। इस खण्ड का अध्ययन करने पर परवर्ती खण्डों की विषय वस्तु भी स्पष्ट हो जाती है इस प्रकार यह मुख्य आधारभूत होने से इस खण्ड को प्रथम क्रम पर रखा गया है।

तदनन्तर सर्व प्रकार की मुद्राओं का उद्भव नृत्य व नाट्य कला से माना जाता है। विश्व की भौगोलिक गतिविधियों के अनुसार आज से लगभग **बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास न्यून एक कोटाकोटि सागरोपम पूर्व** भगवान ऋषभदेव हुए, जिन्हें वैदिक परम्परा में भी युग के आदि कर्त्ता

माना गया है। जैन आगमकार कहते हैं कि उस समय मनुष्यों का जीवन निर्वाह कल्पवृक्ष से होता था। धीर-धीरे काल का सुप्रभाव निस्तेज होने लगा, उससे भोजन आदि की कई समस्याएं उपस्थित हुई। तब ऋषभदेव ने पिता प्रदत्त राज्य पद का संचालन करते हुए लोगों को भोजन पकाने, अन्न उत्पादन करने, वस्त्र बुनने आदि का ज्ञान दिया। वे पारिवारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन आमोद-प्रमोद तथा नीति नियम पूर्वक जी सकें, एतदर्थ पुरुषों को 72 एवं स्त्रियों को 64 प्रकार की विशिष्ट कलाएँ सिखाई। उनमें नृत्य-नाट्य और मुद्रा कला का भी प्रशिक्षण दिया। इससे सिद्ध होता है कि मुद्रा विज्ञान की परम्परा आदिकालीन एवं प्राचीनतम है। इसलिए नाट्य मुद्राओं को द्वितीय खण्ड में स्थान दिया गया है।

प्रश्न हो सकता है कि नाट्य मुद्राओं पर किया गया यह कार्य कितना उपयोगी एवं प्रासंगिक है? इस सम्बन्ध में इतना स्पष्ट है कि जीवन में स्वाभाविक मुद्रा का अद्भुत प्रभाव पड़ता है। 1. नृत्य में प्रायः सभी मुद्राएँ सहज होती है।

2. जो लोग नृत्य-नाट्यादि में रूचि रखते हैं वे इस कला के मर्म को समझ सकेंगे तथा उसकी उपयोगिता के बारे में अन्यों को ज्ञापित कर इस कला का गौरव बढ़ा सकते हैं।

3. जो नृत्यादि कला सीखने में उत्साही एवं उद्यमशील हैं वे मुद्राओं से होते फायदों के बारे में यदि जाने तो इस कला के प्रति सर्वात्मना समर्पित हो एक स्वस्थ जीवन की उपलब्धि करते हुए दर्शकों के चित्त को पूरी तरह आनन्दित कर सकते हैं। साथ ही दर्शकों का शरीर व मन प्रभावित होने से वे भी निरोग तथा चिन्तामुक्त जीवन से परिवार एवं समाज विकास में ठोस कार्य कर सकते हैं।

4. नृत्य कला में प्रयुक्त मुद्राओं से होने वाले सुप्रभावों की प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध हो तो इसके प्रति उपेक्षित जनता भी अनायास जुड़ सकती है और हाथ-पैरों के सहज संचालन से कई अनूठी उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकती हैं।

5. यदि नाट्याभिनय में दक्षता हासिल हो जाये तो प्रतिष्ठा-दीक्षादि महोत्सव, गुरू भगवन्तों के नगर प्रवेश, प्रभु भक्ति आदि प्रसंगों में उपस्थित जन समूह को भक्ति मग्न कर सकते हैं। साथ ही शुभ परिणामों की भावधारा

का वेग बढ़ जाने से पूर्वबद्ध अशुभ कर्मों को क्षीणकर परम पद को प्राप्त किया जा सकता है।

6. कुछ लोगों में नृत्य कला का अभाव होता है ऐसे व्यक्तियों को इसका मूल्य समझ में आ जाये तो वे भक्ति माहौल में स्वयं को एकाकार कर सकते हैं। उस समय हाथ आदि अंगों का स्वाभाविक संचालन होने से षट्चक्र आदि कई शक्ति केन्द्र प्रभावित होते हैं और उससे एक आरोग्य वर्धक जीवन प्राप्त होता है तथा अंतरंग की दूषित वृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं।

7. हमारे दैनिक जीवन व्यवहार में हर्ष-शोक, राग-द्वेष, आनन्द-विषाद आदि परिस्थितियों के आधार पर जो शारीरिक आकृतियाँ बनती है इन समस्त भावों को नाट्य में भी दर्शाया जाता है इस प्रकार नाट्य मुद्राएँ समस्त देहधारियों (मानवों) की जीवनचर्या का अभिन्न अंग है।

नाट्य मुद्राओं पर शोध करने का एक ध्येय यह भी है कि किसी संत पुरुष या अलौकिक पुरुष द्वारा सिखाया गया ज्ञान कभी निरर्थक नहीं हो सकता। इस प्रकार नाट्य मुद्राएँ अनेक दृष्टियों से मूल्यवान् हैं।

तदनन्तर जैन शास्त्रों में वर्णित मुद्राओं को महत्त्व देते हुए उन्हें तीसरे खण्ड में गुम्फित किया गया है। क्योंकि जैन धर्म अनादिनिधन होने के साथ-साथ इस मुद्रा विज्ञान के आरम्भ कर्ता एवं युग के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान है। इन्हें जैन धर्म के आद्य संस्थापक भी माना जाता है।

मुद्रा सम्बन्धी चौथे खण्ड में हिन्दू परम्परा की मुद्राओं का आधुनिक परिशीलन किया गया है। हिन्दू धर्म में प्रचलित कई मुद्राओं का प्रभाव जैन आचार्यों पर पड़ा तथा देवपूजन आदि से संबंधित कतिपय मुद्राएँ यथावत् स्वीकार भी कर ली गई ऐसा माना जाता है। वर्तमान में विवाह आदि कई संस्कार प्रायः हिन्दू पण्डितों के द्वारा ही करवाये जा रहे हैं इसलिए इसे चौथे क्रम पर रखा गया है। दूसरे, हिन्दू धर्म में सर्वाधिक क्रियाकाण्ड होता है और उनमें मुद्रा प्रयोग होता ही है।

मुद्रा सम्बन्धी पाँचवें खण्ड में बौद्ध परम्परावर्ती मुद्राओं को सम्बद्ध किया गया है। यद्यपि भगवान महावीर और भगवान बुद्ध समकालीन थे फिर भी हिन्दू धर्म जैनों के निकट माना जाता है। यही कारण है कि अनेक कर्मकाण्डों का प्रभाव जैन अनुयायियों पर पड़ा। आज भी जैन परम्परा के लोग हिन्दू मन्दिरों में बिना किसी भेद-भाव के चले जाते हैं जबकि बौद्ध

धर्म के प्रति ऐसा झुकाव नहीं देखा जाता।

हिन्दू धर्म भारत के प्राय: सभी प्रान्तों में फैला हुआ है जबकि बौद्ध धर्म श्रमण परम्परा का संवाहक होने पर भी कुछ प्रान्तों में ही सिमट गया है। इन्हीं पहलूओं को ध्यान में रखते हुए बौद्ध मुद्राओं को पांचवाँ स्थान दिया गया है।

प्रस्तुत शोध के छठवें खण्ड में यौगिक मुद्राओं एवं सातवें खण्ड में आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्रचलित मुद्राओं का विवेचन किया गया है। वर्तमान में बढ़ रही समस्याओं एवं अनावश्यक तनावों से छुटकारा पाने के लिए योगाभ्यास परमावश्यक है। इसलिए यौगिक एवं प्रचलित मुद्राओं को पृथक् स्थान देते हुए जन साधारण के लिए उपयोगी बनाया है। साथ ही ये मुद्राएँ किसी परम्परा विशेष से भी सम्बन्धित नहीं है।

इस तरह उपरोक्त सातों खण्ड में मुद्राओं का जो क्रम रखा गया है वह पाठकों के सुगम बोध के लिए है। इससे मुद्राओं की श्रेष्ठता या लघुता का निर्णय नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्वरूपत: प्रत्येक मुद्रा अपने आप में सर्वोत्तम है। किन्तु प्रयोक्ता के अनुसार जो जिसके लिए विशेष फायदा करती है वह श्रेष्ठ हो जाती है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यह शोध कार्य केवल विधि स्वरूप तक ही सीमित नहीं है इसमें प्रत्येक मुद्रा का शब्दार्थ, उद्देश्य, उनके सुप्रभाव, प्रतीकात्मक अर्थ, कौन सी मुद्रा किस प्रसंग में की जाये आदि महत्त्वपूर्ण तथ्यों को भी उजागर किया गया है जिससे यह शोध समग्र पाठकों के लिए हमेशा उपादेय सिद्ध हो सकेगा।

प्रसंगानुसार मुद्रा चित्रों के सम्बन्ध में यह कहना चाहूंगी कि यद्यपि चित्रों को बनाने में पूर्ण सावधानी रखी गयी है फिर भी उसमें गलतियाँ रहना संभव है। क्योंकि हाथ से मुद्रा बनाकर दिखाने एवं उसके चित्र को बनाने वाले की दृष्टि और समझ में अन्तर हो सकता है।

चित्र के माध्यम से प्रत्येक पहलु को स्पष्टत: दर्शाना संभव नहीं होता, क्योंकि परिभाषानुसार हाथ का झुकाव, मोड़ना आदि अभ्यास पूर्वक ही आ सकता है।

प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त मुद्राओं के वर्णन को समझने में और ग्रन्थ कर्त्ता के अभिप्राय में अन्तर होने से कोई मुद्रा गलत बन गई हो तो क्षमाप्रार्थी हूँ।

यहाँ निम्न बिन्दुओं पर भी ध्यान दें–

1. हमारे द्वारा दर्शाए गए मुद्रा चित्रों के अंतर्गत कुछ मुद्राओं में दायाँ हाथ दर्शक के देखने के हिसाब से माना गया है तथा कुछ मुद्राओं में दायाँ हाथ प्रयोक्ता के अनुसार दर्शाया गया है।
2. कुछ मुद्राएँ बाहर की तरफ दिखाने की है उनमें चित्रकार ने मुद्रा बनाते समय वह Pose अपने मुख की तरफ दिखा दिया है।
3. कुछ मुद्राओं में एक हाथ को पार्श्व में दिखाना है उस हाथ को स्पष्ट दर्शाने के लिए उसे पार्श्व में न दिखाकर थोड़ा सामने की तरफ दिखाया है।
4. कुछ मुद्राएँ स्वरूप के अनुसार दिखाई नहीं जा सकती है अत: उनकी यथावत् आकृति नहीं बन पाई हैं।
5. कुछ मुद्राएँ स्वरूप के अनुसार बनने के बावजूद भी चित्र में स्पष्टता नहीं उभर पाई हैं।
6. कुछ मुद्राओं के चित्र अत्यन्त कठिन होने से नहीं बन पाए हैं।

मुद्रा योग का द्वितीय खण्ड नाट्य मुद्राओं से सम्बन्धित है इसमें भरत के नाट्यशास्त्र आदि ग्रन्थों में उपलब्ध मुद्राओं का वैज्ञानिक अनुशीलन करते हुए उसे सात अध्यायों में गुम्फित किया है।

प्रथम अध्याय में मुद्रा के भिन्न-भिन्न प्रभावों का प्रतिपादन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में भरत के नाट्य शास्त्र में विवेचित मुद्राओं का निरूपण करता है।

तृतीय अध्याय में नाट्यशास्त्र से उत्तरवर्ती ग्रन्थों में उपलब्ध नाट्य मुद्राओं की सूची मात्र दी गई है, क्योंकि परवर्ती ग्रन्थकारों ने प्राय: भरत के नाट्य-शास्त्र का ही अनुसरण किया है।

चतुर्थ अध्याय अभिनयदर्पण में वर्णित विशिष्ट मुद्राओं से सन्दर्भित है।

पाँचवें अध्याय में भारतीय नाट्य कला में प्रचलित सामान्य मुद्राओं का विश्लेषण किया गया है।

छठवें अध्याय में शिल्पकला एवं मूर्तिकला में प्राप्त हस्त मुद्राओं को सचित्र बताया गया है।

सातवाँ अध्याय उपसंहार के रूप में गुम्फित है। जिसमें रोगोपचार उपयोगी नाट्य मुद्राओं का चार्ट दिया गया है।

●

वन्दना की झंकार

जैन विधि-विधानों से सम्बन्धित एक बृहद्स्तरीय अन्वेषण आज़ पूर्णाहुति की प्रतीक्षित अरूणिम वेला पर है। जिनका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष संबल इस विराट् विषय के प्रतिपादन में आधार स्तंभ बना उन सभी उपकारी जनों की अभिवन्दना-अनुमोदना करने के लिए मन तरंगित हो रहा है। यद्यपि उन्हें पूर्णत: अभिव्यक्ति देना असंभव है फिर भी सामर्थ्य जुटाती हुई करबद्ध होकर सर्वप्रथम, जिनके दिव्य ज्ञान के आलोक ने भव्य जीवों के हृदयान्धकार को दूर किया, जिनकी पैंतीस गुणयुक्त वाणी ने जीव जगत का उद्धार किया, जिनके रोम-रोम से निर्झरित करूणा भाव ने समस्त जीवराशि को अभयदान दिया तथा मोक्ष मार्ग पर आरोहण करने हेतु सम्यक चारित्र का महादान दिया, ऐसे भवो भव उपकारी सर्वज्ञ अरिहंत परमात्मा के चरण सरोजों में अनन्त-अनन्त वंदना करती हूँ।

जिनके स्मरण मात्र से दु:साध्य कार्य सरल हो जाता है ऐसे साधना सहायक, सिद्धि प्रदायक श्री सिद्धचक्र को आत्मस्थ वंदन।

चिन्तामणि रत्न की भाँति हर चिन्तित स्वप्न को साकार करने वाले, कामधेनु की भाँति हर अभिलाषा को पूर्ण करने वाले एवं जिनकी वरद छाँह में जिनशासन देदीप्यमान हो रहा है ऐसे क्रान्ति और शान्ति के प्रतीक चारों दादा गुरूदेव तथा सकल श्रुतधर आचार्यों के चरणारविन्द में भावभीनी वन्दना।

प्रबल पुण्य के स्वामी, सरलहृदयी, शासन उद्धारक, खरतरगच्छाचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागर सूरीश्वरजी म.सा. के पवित्र चरणों में श्रद्धा भरी वंदना। जिन्होंने सदा अपनी कृपावृष्टि एवं प्रेरणादृष्टि से इस शोध यात्रा को लक्ष्य तक पहुँचाने हेतु प्रोत्साहित किया।

जिनके प्रज्ञाशील व्यक्तित्व एवं सृजनशील कर्तृत्व ने जैन समाज में अभिनव चेतना का पल्लवन किया, जिनकी अन्तस् भावना ने मेरी अध्ययन रुचि को जीवन्त रखा ऐसे उपाध्याय भगवन्त पूज्य गुरुदेव श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. के चरण नलिनों में कोटिश: वन्दन।

मैं हृदयावनत हूँ प्रभुत्वशील एवं स्नेहिल व्यक्तित्व के धनी, गुण गरिमा से मंडित प.पू. आचार्य पद्मसागरसूरीश्वरजी म.सा. की, जिन्होंने कोबा लाइब्रेरी के माध्यम से दुष्प्राप्य ग्रन्थों को उपलब्ध करवाया तथा सहृदयता एवं उदारता के साथ मेरी शंकाओं का समाधान कर प्रगति पाथेय प्रदान किया। उन्हीं के निश्रावर्ती मनोज्ञ स्वभावी, गणिवर्य्य श्री प्रशांतसागरजी म.सा. की भी मैं ऋणी हूँ जिन्होंने निस्वार्थ भाव से सदा सहयोग करते हुए मुझे उत्साहित रखा।

मैं कृतज्ञ हूँ सरस्वती साधना पथ प्रदीप, प.पू. ज्येष्ठ भ्राता श्री विमलसागरजी म.सा. के प्रति, जिन्होंने इस शोध कार्य की मूल्यवत्ता का आकलन करते हुए मेरी अंतश्चेतना को जागृत रखा।

मैं सदैव उपकृत रहूंगी प्रवचन प्रभावक, शास्त्र वेत्ता, सन्मार्ग प्रणेता प.पू. आचार्य श्री कीर्तियश सूरीश्वरजी म.सा एवं आगम मर्मज्ञ, संयमोत्कर्षी प.पू. रत्नयश विजयजी म.सा के प्रति, जिन्होंने नवीन ग्रन्थों की जानकारी देने के साथ-साथ शोध कार्य का प्रणयन करते हुए इसे विबुध जन ग्राह्य बनाकर पूर्णता प्रदान की।

मैं आस्था प्रणत हूँ जगवल्लभ प.पू. आचार्य श्री राजयश सूरीश्वरजी म.सा एवं वात्सल्य मूर्ति प.पू. बहन महाराज वाचंयमा श्रीजी म.सा के प्रति, जिन्होंने समय-समय पर अपने अनुभव ज्ञान द्वारा मेरी दुविधाओं का निवारण कर इस कार्य को भव्यता प्रदान की।

मैं नतमस्तक हूँ समन्वय साधक, भक्त सम्मोहक, साहित्य उद्धारक, अचल गच्छाधिपति प.पू. आचार्य श्री गुणरत्नसागर सूरीश्वरजी म.सा. के चरणों में, जिन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से मेरी जिज्ञासाओं का समाधान करके मेरे कार्य को आगे बढ़ाया।

मैं आस्था प्रणत हूँ लाडनूं विश्व भारती के प्रेरणा पुरुष, अनेक ग्रन्थों के सृजनहार, कुशल अनुशास्ता, साहित्य मनीषी आचार्य श्री तुलसी एवं आचार्य श्री महाप्रज्ञजी के चरणों में, जिनके सृजनात्मक कार्यों ने इस साफल्य में आधार भूमि प्रदान की।

इसी श्रृंखला में श्रद्धानत हूँ त्रिस्तुतिक गच्छाधिपति, पुण्यपुंज प.पू. आचार्य श्री जयन्तसेन सूरीश्वरजी म.सा. के प्रति, जिन्होंने हर संभव स्व सामाचारी विषयक तथ्यों से अवगत करवाते हुए इस शोध को सुलभ बनाया।

मैं श्रद्धावनत हूँ विश्व प्रसिद्ध, प्रवचन प्रभावक, क्रान्तिकारी सन्त प्रवर श्री तरुणसागरजी म.सा के प्रति, जिन्होंने यथोचित सुझाव देकर रहस्य अन्वेषण में सहायता प्रदान की।

मैं आभारी हूँ मृदुल स्वभावी प.पू. पीयूषसागरजी म.सा. एवं गूढ़ स्वाध्यायी प. पू. सम्यक्रत्नसागरजी म.सा. की जिन्होंने सदैव मेरा उत्साह वर्धन किया।

उपकार स्मरण की इस कड़ी में अन्तर्हृदय से उपकृत हूँ महत्तरा पद विभूषिता पू. विनीता श्रीजी म.सा., प्रवर्त्तिनी प्रवरा पू. चन्द्रप्रभा श्रीजी म.सा., सरलमना पू. चन्द्रकला श्रीजी म.सा., मरूधर ज्योति पू. मणिप्रभा श्रीजी म.सा., स्नेह गंगोत्री पू. हेमप्रभा श्रीजी म.सा. एवं अन्य सभी समादृत साध्वी मंडल के प्रति, जिनके अन्तर मन की मंगल कामनाओं ने मेरे मार्ग को निष्कंटक बनाया तथा आत्मीयता प्रदान कर सम्यक् ज्ञान के अर्जन को प्रवर्द्धमान रखा।

जिनकी मृदुता, दृढ़ता, गंभीरता, क्रियानिष्ठता एवं अनुभव प्रौढ़ता ने सुज्ञजनों को सन्मार्ग प्रदान किया, जिनका निश्छल व्यवहार **'जहा अंतो तहा बहिं'** का जीवन्त उदाहरण था, जो पंचम आरे में चौथे आरे की साक्षात प्रतिमूर्ति थी, ऐसी श्रद्धालोक की देवता, वात्सल्य वारिधि, प्रवर्त्तिनी महोदया, गुरूवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा के पावन पद्मों में सर्वात्मना वंदन करती हूँ।

मैं उऋण भावों से कृतज्ञ हूँ जप एवं ध्यान की निर्मल ज्योति से प्रकाशमान तथा चारित्र एवं तप की साधना से दीप्तिमान सज्जनमणि प.पू. गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा के प्रति, जिन्होंने मुझ जैसे अनघड़ पत्थर को साकार रूप प्रदान किया।

मैं अन्तर्हृदय से आभारी हूँ मेरे शोध कार्य की प्रारंभकर्त्ता, अनन्य गुरू समर्पिता, ज्येष्ठ गुरू भगिनी पू. प्रियदर्शना श्रीजी म.सा. तथा सेवाभावी पू. दिव्य दर्शना श्रीजी म.सा., स्वनिमग्ना पू. तत्त्वदर्शना श्रीजी म.सा., दृढ़ मनोबली पू. सम्यग्दर्शना श्रीजी म.सा., स्मित वदना पू. शुभदर्शना श्रीजी म.सा., मितभाषी पू. मुदितप्रज्ञा श्रीजी म.सा., समन्वय स्वभावी पू. शीलगुणाजी मृदु भाषिणी साध्वी कनकप्रभाजी, कोमल हृदयी श्रुतदर्शनाजी, प्रसन्न स्वभावी साध्वी संयमप्रज्ञाजी आदि समस्त गुरु भगिनि मण्डल की, जिन्होंने सामाजिक दायित्त्वों से निवृत्त रखते हुए सद्भावों की सुगन्ध से मेरे मन को तरोर्ताजा रखा।

मेरी शोध यात्रा को पूर्णता के शिखर पर पहुँचाने में अनन्य सहयोगिनी, सहज स्वभावी **स्थितप्रज्ञा जी** एवं विनम्रशीला **संवेगप्रज्ञा जी** तथा इसी के साथ अल्प भाषिणी **सुश्री मोनिका बैराठी** एवं शान्त स्वभावी **सुश्री सीमा छाजेड़** को साधुवाद देती हुई उनके उज्ज्वल भविष्य की तहेदिल से कामना करती हूँ।

मैं अन्तस्थ भावों से उपकृत हूँ श्रुत समाज के गौरव पुरुष, ज्ञान पिपासुओं के लिए सद्ज्ञान प्रपा के समान, आदरणीय डॉ. सागरमलजी के प्रति, जिनका सफल निर्देशन इस शोध कार्य का मूलाधार है।

इस बृहद् शोध के कार्य काल में हर तरह की सेवाओं के लिए तत्पर, उदारहृदयी श्रीमती मंजुजी सुनीलजी बोथरा (रायपुर) के भक्तिभाव की अनुशंसा करती हूँ।

जिन्होंने दूरस्थ रहकर भी इस ज्ञान यज्ञ को निर्बाध रूप से प्रवाहमान बनाए रखने में यथोचित सेवाएँ प्रदान की, ऐसी श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख (जगदलपुर) भी साधुवाद के पात्र हैं।

सेवा स्मरण की इस श्रृंखला में मैं ऋणी हूँ कोलकाता निवासी, अनन्य सेवाभावी श्री चन्द्रकुमारजी शकुंतलाजी मुणोत की, जिन्होंने ढ़ाई साल के कोलकाता प्रवास में भ्रातातुल्य स्नेह एवं सहयोग प्रदान करते हुए अपनी सेवाएँ अनवरत प्रदान की। श्री खेमचंदजी किरणजी बांठिया की अविस्मरणीय सेवाएँ भी इस शोध यात्रा की पूर्णता में अनन्य सहयोगी बनी।

सहयोग की इस श्रृंखला में मैं आभारी हूँ, टाटा निवासी श्री जिनेन्द्रजी नीलमजी बैद की, जिनके अथक प्रयासों से मुद्राओं का रेखांकन संभव हो पाया।

अनुमोदना की इस कड़ी में कोलकाता निवासी श्री कान्तिलालजी मुकीम, मणिलालजी दूसाज, कमलचंदजी धांधिया, विमलचन्दजी महमवाल, विजयेन्द्रजी संखलेचा, अजयजी बोथरा, महेन्द्रजी नाहटा, पन्नालाल दूगड़, निर्मलजी कोचर आदि की सेवाओं को विस्मृत नहीं कर सकती हूँ।

बनारस निवासी श्री अश्विनभाई शाह, ललितजी भंसाली, कीर्ति भाई ध्रुव दिव्येशजी शाह, राहुलजी गांधी आदि भी साधुवाद के अधिकारी हैं जिन्होंने अपनी आत्मियता एवं नि:स्वार्थ सेवाएँ बनारस प्रवास के बाद भी बनाए रखी।

इसी कड़ी में बनारस सेन्ट्रल लाइब्रेरी के मुख्य लाइब्रेरियन श्री संजयजी सर्राफ एवं श्री विवेकानन्दजी जैन की भी मैं अत्यंत आभारी हूँ कि उन्होंने ग्रुस्तकें

उपलब्ध करवाने में अपना अनन्य सहयोग दिया।

इसी श्रृंखला में श्री कोलकाता संघ, मुंबई संघ, जयपुर संघ, मालेगाँव संघ, अहमदाबाद संघ, बनारस संघ, शाजापुर संघ, टाटा संघ के पदाधिकारियों एवं धर्म समर्पित सदस्यों ने स्थानीय सेवाएँ प्रदान कर इस शोध यात्रा को सरल एवं सुगम बनाया अत: उन सभी को साधुवाद देती हूँ।

इस शोध कार्य को प्रामाणिक बनाने में कोबा लाइब्रेरी (अहमदाबाद) एवं वहाँ के सदस्यगण मनोज भाई, केतन भाई, अरूणजी आदि, एल. डी. इन्स्टीट्यूट (अहमदाबाद), प्राच्य विद्यापीठ (शाजापुर), पार्श्वनाथ शोध संस्थान (वाराणसी) एवं लाइब्रेरियन ओमप्रकाश सिंह तथा संस्थान अधिकारियों ने यथेच्छित पुस्तकों के आदान-प्रदान में ज़ो सहयोग दिया, उसके लिए मैं उनकी सदैव आभारी रहूंगी।

प्रस्तुत कार्य को जन समुदाय के लिए उपयोगी बनाने में जिनकी पुण्यराशि संबल बनी है उन समस्त श्रुतप्रेमी लाभार्थी परिवार की उन्मुक्त कण्ठ से अनुमोदना करती हूँ।

इन शोध कृतियों को कम्प्यूटराईज्ड, संशोधन एवं सेटिंग करने में अनन्य सहयोगी विमलचन्द्र मिश्रा (वाराणसी) का अत्यन्त आभार मानती हूँ। आपके विनम्र, सुशील एवं सज्जन स्वभाव ने मुझे अनेक बार के प्रूफ संशोधन की चिन्ताओं से सदैव मुक्त रखा। स्वयं के कारोबार को संभालते हुए आपने इस बृहद् कार्य को जिस निष्ठा के साथ पूर्ण किया है यह सामान्य व्यक्ति के लिए नामुमकिन है।

इसी श्रृंखला में शांत स्वभावी श्री रंजनजी, रोहितजी कोठारी (कोलकाता) भी धन्यवाद के पात्र हैं। सम्पूर्ण पुस्तकों के प्रकाशन एवं कॅवर डिजाइनिंग में अप्रमत्त होकर अंतरमन से सहयोग दिया। शोध प्रबंध की सम्पूर्ण कॉपी बनाने का लाभ लेकर आप श्रुत संवर्धन में भी परम हेतुभूत बने हैं।

23 खण्डों को आकर्षक एवं चित्तरंजक कॅवर से नयनरम्य बनाने के लिए कॅवर डिजाईनर शंभु भट्टाचार्य की भी मैं तहेदिल से आभारी हूँ।

इसे संयोग कहूँ या विधि की विचित्रता? मेरी प्रथम शोध यात्रा की संकल्पना लगभग 17 वर्ष पूर्व जहाँ से प्रारम्भ हुई वहीं पर उसकी चरम पूर्णाहुति भी हो रही है। श्री जिनरंगसूरि पौशाल (कोलकाता) अध्ययन योग्य सर्वश्रेष्ठ

स्थान है। यहाँ के शान्त-प्रशान्त परमाणु मनोयोग को अध्ययन के प्रति जोड़ने में अत्यन्त सहायक बने हैं। इसी के साथ मैं साधुवाद देती हूँ श्रीजिनरंगसूरि पौशाल, कोलकाता के ट्रस्टी श्री कमलचंदजी धांधिया, कान्तिलालजी मुकीम, विमलचंदजी महमवाल, मणिलालजी दूसाज आदि समस्त भूतपूर्व एवं वर्तमान ट्रस्टियों को, जिन्होंने अध्ययन एवं स्थान की महत्त्वपूर्ण सुविधा के साथ कम्पोजिंग में भी पूर्ण रूप से अर्थ सहयोग दिया। इन्हीं की पितृवत छत्र-छाया में यह शोध कार्य शिखर तक पहुँच पाया है। इस अवधि के दौरान ग्रन्थ आदि की आवश्यक सुविधाओं हेतु शाजापुर, बनारस आदि शोध संस्थानों में प्रवास रहा। उन दिनों से ही जौहरी संघ के पदाधिकारी गण कान्तिलालजी मुकीम, मणिलालजी दूसाज, विमलचन्दजी महमवाल आदि बार-बार निवेदन करते रहे कि आप पूर्वी क्षेत्र की तरफ एक बार फिर से पधारिए। हम आपके अध्ययन की पूर्ण व्यवस्था करेंगे। उन्हीं की सद्भावनाओं के फलस्वरूप शायद इस कार्य का अंतिम प्रणयन यहाँ हो रहा है। इसी के साथ शोध प्रतियों के मुद्रण कार्य में भी श्री जिनरंगसूरि पौशाल ट्रस्टियों का हार्दिक सहयोग रहा है।

अन्ततः यही कहूँगी–

प्रभु वीर वाणी उद्यान की, सौरभ से महकी जो कृति।
जड़ वक्र बुद्धि से जो मैंने, की हो इसकी विकृति।
अविनय, अवज्ञा, आशातना, यदि हुई हो श्रुत की वंचना।
मिच्छामि दुक्कडम् देती हूँ, स्वीकार हो मुझ प्रार्थना।।

●

मिच्छामि दुक्कडं

आगम मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, जैन जगत की अनुपम साधिका, प्रवर्त्तिनी पद सुशोभिता, खरतरगच्छ दीपिका पू. गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की अन्तरंग कृपा से आज छोटे से लक्ष्य को पूर्ण कर पाई हूँ।

यहाँ शोध कार्य के प्रणयन के दौरान उपस्थित हुए कुछ संशय युक्त तथ्यों का समाधान करना चाहूँगी–

सर्वप्रथम तो मुनि जीवन की औत्सर्गिक मर्यादाओं के कारण जानते-अजानते कई विषय अनछुए रह गए हैं। उपलब्ध सामग्री के अनुसार ही विषय का स्पष्टीकरण हो पाया है अतः कहीं-कहीं सन्दर्भित विषय में अपूर्णता भी प्रतीत हो सकती है।

दूसरा जैन संप्रदाय में साध्वी वर्ग के लिए कुछ नियत मर्यादाएँ हैं जैसे प्रतिष्ठा, अंजनशलाका, उपस्थापना, पदस्थापना आदि करवाने एवं आगम शास्त्रों को पढ़ाने का अधिकार साध्वी समुदाय को नहीं है। योगोद्वहन, उपधान आदि क्रियाओं का अधिकार मात्र पदस्थापना योग्य मुनि भगवंतों को ही है। इन परिस्थितियों में प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या एक साध्वी अनधिकृत एवं अननुभूत विषयों पर अपना चिन्तन प्रस्तुत कर सकती है?

इसके जवाब में यही कहा जा सकता है कि 'जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' यह शोध का विषय होने से यत्किंचित लिखना आवश्यक था अतः गुरु आज्ञा पूर्वक विद्वद्वर आचार्य भगवंतों से दिशा निर्देश एवं सम्यक जानकारी प्राप्तकर प्रामाणिक उल्लेख करने का प्रयास किया है।

तीसरा प्रायश्चित्त देने का अधिकार यद्यपि गीतार्थ मुनि भगवंतों को है किन्तु प्रायश्चित्त विधि अधिकार में जीत (प्रचलित) व्यवहार के अनुसार प्रायश्चित्त योग्य तप का वर्णन किया है। इसका उद्देश्य मात्र यही है कि भव्य जीव पाप भीरु बनें एवं दोषकारी क्रियाओं से परिचित होवें। कोई भी आत्मार्थी इसे देखकर स्वयं प्रायश्चित्त ग्रहण न करें।

इस शोध के अन्तर्गत कई विषय ऐसे हैं जिनके लिए क्षेत्र की दूरी के कारण यथोचित जानकारी एवं समाधान प्राप्त नहीं हो पाए, अतः तद्विषयक पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं कर पाई हूँ।

कुछ लोगों के मन में यह शंका भी उत्पन्न हो सकती है कि मुद्रा विधि के अधिकार में हिन्दू, बौद्ध, नाट्य आदि मुद्राओं पर इतना गूढ़ अध्ययन क्यों?

मुद्रा एक यौगिक प्रयोग है। इसका सामान्य हेतु जो भी हो परंतु इसकी अनुश्रुति आध्यात्मिक एवं शारीरिक स्वस्थता के रूप में ही होती है।

प्रायः मुद्राएँ मानव के दैनिक चर्या से सम्बन्धित है। इतर परम्पराओं का जैन परम्परा के साथ पारस्परिक साम्य-वैषम्य भी रहा है अतः इनके सद्पक्षों को उजागर करने हेतु अन्य मुद्राओं पर भी गूढ़ अन्वेषण किया है।

यहाँ यह भी कहना चाहूँगी कि शोध विषय की विराटता, समय की प्रतिबद्धता, समुचित साधनों की अल्पता, साधु जीवन की मर्यादा, अनुभव की न्यूनता, व्यावहारिक एवं सामान्य ज्ञान की कमी के कारण सभी विषयों का यथायोग्य विश्लेषण नहीं भी हो पाया है। हाँ, विधि-विधानों के अब तक अस्पृष्ट पन्नों को खोलने का प्रयत्न अवश्य किया है। प्रज्ञा सम्पन्न मुनि वर्ग इसके अनेक रहस्य पटलों को उद्घाटित कर सकेंगे। यह एक प्रारंभ मात्र है।

अन्ततः जिनवाणी का विस्तार करते हुए एवं शोध विषय का अन्वेषण करते हुए अल्पमति के कारण शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणा की हो, आचार्यों के गूढ़ार्थ को यथारूप न समझा हो, अपने मत को रखते हुए जाने-अनजाने अर्हतवाणी का कटाक्ष किया हो, जिनवाणी का अपलाप किया हो, भाषा रूप में उसे सम्यक अभिव्यक्ति न दी हो, अन्य किसी के मत को लिखते हुए उसका संदर्भ न दिया हो अथवा अन्य कुछ भी जिनाज्ञा विरुद्ध किया हो या लिखा हो तो उसके लिए त्रिकरण-त्रियोगपूर्वक श्रुत रूप जिन धर्म से मिच्छामि दुक्कड़म् करती हूँ।

●

विषयानुक्रमणिका

अध्याय-1 : मुद्राओं से प्रभावित सप्त चक्र आदि के विशिष्ट प्रभाव 1-29

1. सप्त चक्रों पर मुद्रा के प्रभाव 2. ग्रन्थि तन्त्रों पर मुद्रा के प्रभाव 3. चैतन्य केन्द्रों पर मुद्रा के प्रभाव 4. पाँच तत्त्वों पर मुद्रा के प्रभाव 5. मुद्रा प्रयोग के नियमोपनियम।

अध्याय-2 : भरतमुनि रचित नाट्यशास्त्र की मुद्राओं का स्वरूप, प्रयोजन एवं उसके लाभ 30-162

असंयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. पताका मुद्रा 2. त्रिपताका मुद्रा 3. कर्तरीमुख मुद्रा 4. अर्धचन्द्र मुद्रा 5. अराल मुद्रा 6. शुकतुण्ड मुद्रा 7. मुष्टि मुद्रा 8. शिखर मुद्रा 9. कपित्थ मुद्रा 10. कटकामुख मुद्रा 11. सूच्यास्य मुद्रा 12. पद्मकोश मुद्रा 13. सर्पशीर्ष मुद्रा 14. मृगशीर्ष मुद्रा 15. लांगुल मुद्रा 16. अलपद्म मुद्रा 17. चतुर मुद्रा 18. भ्रमर मुद्रा 19. हंसास्य मुद्रा 20. हंसपक्ष मुद्रा 21. सन्दंश मुद्रा 22. मुकुल मुद्रा 23. ऊर्णनाभ मुद्रा 24. ताम्रचूड़ मुद्रा।

संयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. अंजलि मुद्रा 2. कपोत मुद्रा 3. कर्कट मुद्रा 4. स्वस्तिक मुद्रा 5. खटका वर्धमान मुद्रा 6. उत्संग मुद्रा 7. निषेध मुद्रा 8. डोल मुद्रा 9. पुष्पपुट मुद्रा 10. मकर मुद्रा 11. गजदन्त मुद्रा 12. अवहित्त मुद्रा 13. वर्धमान मुद्रा।

नृतहस्त मुद्राएँ– 1. चतुरस्र मुद्रा 2. उद्वृत्त मुद्रा 3. तलमुख मुद्रा 4. स्वस्तिक मुद्रा 5. विप्रकीर्ण मुद्रा 6. अराल मुद्रा 7. खटका मुद्रा 8. आविद्ध वक्र मुद्रा 9. सूचीमुख मुद्रा 10. रेचित मुद्रा 11. अर्धरेचिता मुद्रा 12. उत्तानवंचित मुद्रा 13. पल्लव मुद्रा 14. नितम्ब मुद्रा 15. केशबंध मुद्रा 16. लताहस्त मुद्रा 17. करिहस्त/गजहस्त मुद्रा 18. पक्ष वंचित मुद्रा

19. पक्ष प्रद्योत मुद्रा 20. गरुड़ पक्ष मुद्रा 21. दण्ड पक्ष मुद्रा 22. उर्ध्वमण्डलिन् मुद्रा 23. पार्श्वमण्डलिन् मुद्रा 24. उरोमण्डलिन् मुद्रा 25. मुष्टि स्वस्तिक मुद्रा 26. नलिनी पद्मकोश मुद्रा 27. अलपल्लव मुद्रा 28. उल्वण मुद्रा 29. ललित मुद्रा 30. वलित मुद्रा।

भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में वर्णित अधिकांश मुद्राओं के नाम 'द मिरर ऑफ गेश्चर' नामक पुस्तिका में भी प्राप्त होते हैं लेकिन इसमें निर्दिष्ट मुद्राओं के स्वरूप भिन्न हैं। तुलना की दृष्टि से इस अध्याय में 'द मिरर ऑफ गेश्चर' में उल्लिखित मुद्राओं का भी सचित्र वर्णन किया गया है।

यहाँ उनकी नाम सूची इस प्रकार है–

असंयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. पताका मुद्रा 2. त्रिपताका मुद्रा 3. कर्त्तरीमुख मुद्रा 4. अर्धचन्द्र मुद्रा 5. अराल मुद्रा (प्रथम) 6. अराल मुद्रा (द्वितीय) 7. शुकतुण्ड मुद्रा 8. मुष्टि मुद्रा 9. शिखर मुद्रा 10. कपित्थ मुद्रा 11. कटकामुख मुद्रा 12. सूच्यास्य मुद्रा 13. पद्मकोश मुद्रा 14. सर्पशीर्ष मुद्रा 15. मृगशीर्ष मुद्रा 16. लांगुल मुद्रा 17. अलपद्म मुद्रा 18. चतुर मुद्रा 19. भ्रमर मुद्रा 20. हंसास्य मुद्रा 21. हंसपक्ष मुद्रा (प्रथम) 22. हंसपक्ष मुद्रा (द्वितीय) 23. सन्दंश मुद्रा (प्रथम) 24. सन्दंश मुद्रा (द्वितीय) 25. सन्दंशमुकुल मुद्रा (तृतीय) 26. मुकुल मुद्रा 27. ऊर्णनाभ मुद्रा 28. ताम्रचूड़ मुद्रा (प्रथम) 29. ताम्रचूड़ मुद्रा (द्वितीय)।

संयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. अंजलि मुद्रा 2. कपोत मुद्रा 3. स्वस्तिक मुद्रा (प्रथम) 4. स्वस्तिक मुद्रा (द्वितीय) 5. खटका वर्धमान मुद्रा (प्रथम) 6. उत्संग मुद्रा 7. निषेध मुद्रा (प्रथम) 8. डोल मुद्रा 9. पुष्पपुट मुद्रा 10. मकर मुद्रा 11. गजदन्त मुद्रा 12. अवहित्त मुद्रा 13. वर्धमान मुद्रा।

नृत्तहस्त मुद्राएँ– 1. चतुरस्र मुद्रा 2. उद्वृत्त मुद्रा 3. तलमुख मुद्रा 4. आविद्ध वक्र मुद्रा 5. रेचित मुद्रा 6. अर्धरेचित मुद्रा 7. नितम्ब मुद्रा 8. केशबंध मुद्रा 9. लताहस्त मुद्रा 10. करिहस्त मुद्रा 11. पक्षवंचित मुद्रा 12. पक्ष प्रद्योत मुद्रा 13. गरूड़ मुद्रा 14. मुष्टि स्वस्तिक मुद्रा 15. नलिनी पद्मकोश मुद्रा 16. उल्वण मुद्रा 17. ललित मुद्रा।

अध्याय-3 : विष्णुधर्मोत्तरपुराण आदि में उल्लिखित मुद्राओं की सूची 163-173

विष्णुधर्मोत्तरपुराण आदि ग्रन्थों में निर्दिष्ट मुद्राओं का स्वरूप लगभग भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के समान ही है।

अध्याय-4 : अभिनयदर्पण में वर्णित अतिरिक्त मुद्राओं के सुप्रभाव 174-201

1. अर्धपताका मुद्रा 2. मयूरहस्त मुद्रा 3. चन्द्रकला मुद्रा 4. सिंहमुख मुद्रा 5. त्रिशूल मुद्रा 6. व्याघ्र मुद्रा 7. अर्धसूची मुद्रा 8. कटक मुद्रा 9. पल्लि मुद्रा 10. शिवलिंग मुद्रा 11. कर्तरी स्वस्तिक मुद्रा 12. शकट मुद्रा 13. शंख मुद्रा 14. चक्र मुद्रा 15. सम्पुट मुद्रा 16. पाश मुद्रा 17. कीलक मुद्रा 18. मत्स्य मुद्रा 19. वराह मुद्रा 20. गरूड़ मुद्रा 21. नागबन्ध मुद्रा 22. खट्वा मुद्रा 23. भेरूण्ड मुद्रा।

अध्याय-5 : भारतीय परम्परा में प्रचलित मुद्राओं की विधि एवं उद्देश्य 202-304

1. अधोमुष्टि मुकुल मुद्रा 2. अजमुख मुद्रा 3. अंगारख मुद्रा 4. अराल-कटक मुख मुद्रा 5. अर्धमुख मुद्रा 6. अर्जुन मुद्रा 7. अशोक मुद्रा 8. वक्र मुद्रा 9. भीम मुद्रा 10. भिन्नांजली मुद्रा 11. ब्रह्म मुद्रा 12. ब्राह्मण मुद्रा 13. बृहस्पति मुद्रा 14. छग मुद्रा 15. चक्रवाक 16. चंपक मुद्रा 17. चन्द्र मुद्रा 18. चंद्रमृग मुद्रा 19. गर्दभ मुद्रा 20. इन्द्र मुद्रा 21. कंदंजली मुद्रा 22. करकट मुद्रा 23. करतरी दण्ड मुद्रा 24. कार्त्तवीर्य मुद्रा 25. कटक मुद्रा (प्रथम) 26. कटक मुद्रा (द्वितीय) 27. केतकी मुद्रा 28. केतु मुद्रा 29. खड्ग मुकुल मुद्रा 30. अर्घ मुद्रा 31. आश्चर्य मुद्रा 32. अश्वत्थ मुद्रा 33. भागीरथ मुद्रा 34. डमरू मुद्रा 35. दान मुद्रा 36. दिलीप मुद्रा 37. दीप मुद्रा 38. गंगा मुद्रा 39. हरिश्चन्द्र मुद्रा 40. कृष्णमृग मुद्रा 41. क्रोध मुद्रा 42. खड्ग मुद्रा 43. क्षत्रिय मुद्रा 44. कूर्म मुद्रा 45. कुरूवक मुद्रा 46. कुबेर मुद्रा 47. लक्ष्मी मुद्रा 48. लीन कर्कट मुद्रा 49. लीनाल पद्म मुद्रा 50. मध्यपताका मुद्रा

51. मन्मथ मुद्रा 52. नैर्ऋति मुद्रा 53. निम्बसल मुद्रा 54. वरुण मुद्रा 55. वायु मुद्रा 56. व्हलो मुद्रा 57. व्याली मुद्रा 58. परदिष मुकुल मुद्रा 59. पारीजात मुद्रा 60. पार्वती मुद्रा 61. पाटली मुद्रा 62. पूग मुद्रा 63. पुन्नाग मुद्रा 64. राहु मुद्रा 65. रावण मुद्रा 66. संयम नायक मुद्रा 67. संकीर्ण मुद्रा 68. संकीर्ण मकर मुद्रा 69. सरस्वती मुद्रा 70. शैव्य मुद्रा 71. शम्भु मुद्रा 72. शनैश्चर मुद्रा 73. शमी मुद्रा 74. शुद्र मुद्रा 75. शुक्र ग्रह मुद्रा 76. सिंह मुद्रा 77. सिन्धुवर मुद्रा 78. स्त्री मुद्रा 79. सूर्य मुद्रा 80. ताल पताका मुद्रा 81. तालसिंह मुद्रा 82. त्रिज्ञान मुद्रा 83. उद्वेष्टि ताल-पद्म मुद्रा 84. उलूक मुद्रा 85. वैश्य मुद्रा 86. रसाल मुद्रा 87. रिषभ मुद्रा 88. सगर मुद्रा 89. सहदेव मुद्रा 90. सारस मुद्रा 91. सरयु मुद्रा 92. शशांक मुद्रा 93. शिबि मुद्रा 94. शिंशप मुद्रा 95. श्वान मुद्रा 96. भेरूण्ड मुद्रा।

सम्बन्ध सूचक मुद्राएँ– 1. ज्येष्ठ भ्रातृ मुद्रा 2. कनिष्ठ भ्रातृ मुद्रा 3. मातृ मुद्रा 4. ननंद मुद्रा 5. पितृ मुद्रा 6. सपत्नी मुद्रा 7. श्वश्री मुद्रा 8. श्वसुर मुद्रा 9. स्नुष मुद्रा 10. भर्त्तार भ्रातृ मुद्रा 11. भर्त्तार मुद्रा 12. दम्पति मुद्रा।

अवतार सम्बन्धी मुद्राएँ– 1. बलरामावतार मुद्रा 2. कल्कावतार मुद्रा 3. कृष्णावतार मुद्रा 4. कूर्मावतार मुद्रा 5. मत्स्यावतार मुद्रा 6. नरसिंह अवतार मुद्रा 7. परशुरामावतार मुद्रा 8. रघुरामावतार मुद्रा 9. वामनावतार मुद्रा।

अध्याय-6 : शिल्पकला एवं मूर्तिकला में प्राप्त हस्त मुद्राएँ 305-331

(i) शिल्पकला में उपलब्ध मुद्राएँ– 1. अभय मुद्रा 2. वरद दान मुद्रा 3. कटकहस्त / सिंहकर्णहस्त मुद्रा 4. सूचीहस्त मुद्रा 5. तर्जनीहस्त मुद्रा 6. कट्यावलंबित हस्त मुद्रा 7.दण्डहस्त या गजहस्त मुद्रा 8. अंजलि हस्त मुद्रा 9. विस्मयहस्त मुद्रा 10. व्याख्यान / चिन्मुद्रा / संदर्शन हस्त मुद्रा

11. ज्ञान मुद्रा 12. योग मुद्रा 13. अंजलि मुद्रा 14. ध्यान मुद्रा 15. व्याख्यान मुद्रा 16. धर्मचक्र मुद्रा 17. कायोत्सर्ग मुद्रा 18. कटकामुखहस्त मुद्रा 19. दण्डहस्त या गजहस्त मुद्रा 20. सूचीहस्त मुद्रा 21. भूमिस्पर्श मुद्रा 22. अर्धपर्यंक मुद्रा 23. समपाद मुद्रा 24. ज्ञानमुद्रा 25. वरद मुद्रा 26. ललित मुद्रा 27. तर्क मुद्रा 28. शरण मुद्रा 29. उत्तरबोधि मुद्रा।

(ii) मूर्तिकला में उपलब्ध मुद्राएँ– 1. अभयहस्त मुद्रा 2. वरद मुद्रा 3. तर्जनी हस्त मुद्रा 4. भूमिस्पर्श मुद्रा 5. व्याख्यान/चिन्मुद्रा/संदर्शन मुद्रा 6. लताहस्त मुद्रा 7. विस्मय मुद्रा 8. मुष्टिहस्त/शिखर हस्त मुद्रा 9. पताका हस्त मुद्रा 10. अर्धपताक हस्त मुद्रा 11. त्रिपताक हस्त मुद्रा 12. मौनव्रत मुद्रा 13. मृगशीर्ष हस्त मुद्रा 14. कटकहस्त/सिंहकर्ण हस्त मुद्रा 15. अर्धचन्द्र हस्त मुद्रा 16. हंसास्य हस्त मुद्रा 17. ध्यान मुद्रा 18. धर्मचक्र मुद्रा 19. कट्यावलम्बित मुद्रा 20. अंजलि हस्त मुद्रा 21. अलपद्म/अल पल्लव मुद्रा 22. पक्षवंचित मुद्रा 23. ऊर्ध्वमण्डलिन् मुद्रा 24. नागबन्ध हस्त मुद्रा।

अध्याय-7 : उपसंहार **332-342**

भौतिक एवं आध्यात्मिक चिकित्सा में उपयोगी मुद्राएँ

1. शारीरिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ 2. भावनात्मक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ 3. आध्यात्मिक रोग निदान में प्रभावी मुद्राएँ।

सहायक ग्रन्थ सूची **343-345**

●

अध्याय-1

मुद्राओं से प्रभावित सप्त चक्रादि के विशिष्ट प्रभाव

मुद्रा एक ऐसी योग पद्धति है जिसके माध्यम से प्राचीन साधकों एवं दार्शनिकों के अनुभव, ज्ञान एवं साधना पद्धति को आधुनिक वैज्ञानिक संदर्भों में प्रतिपादित किया जा सकता है। यह प्राच्य विद्या वर्तमान युग को एक नई दिशा देने में सक्षम है। इसके द्वारा आज व्यक्तिगत स्तर पर उभर रही समस्याओं का ही नहीं अपितु सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय आदि अनेक समस्याओं का निवारण किया जा सकता है। मुद्रा दैनिक क्रियाओं में उपयोगी एक महत्त्वपूर्ण विधि है और इसका विधिवत नियमित प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों में निर्णायक भूमिका अदा कर सकता है।

हमारी शारीरिक संरचना एक जटिल मशीन के समान है। इसके विभिन्न पुर्जे (Parts) विविध कार्य करते हैं। मुद्रा प्रयोग के द्वारा उन सभी को एक साथ प्रभावित किया जा सकता है। इस योग के द्वारा शरीरस्थ मूलाधार आदि सप्त चक्रों को जागृत कर मानसिक, शारीरिक एवं भावनात्मक विकृतियों पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। इसी के साथ मुद्रा योग अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ, चैतन्य केन्द्र एवं पंच तत्त्व आदि को संतुलित एवं नियंत्रित रखते हुए स्वस्थ, सुसंस्कृत एवं सुदृढ़ समाज के निर्माण में सहयोगी बनता है।

सप्त चक्रों पर मुद्रा के प्रभाव

किसी भी मुद्रा का प्रयोग एवं उसकी साधना जागरण का अभूतपूर्व माध्यम होता है। ये सात चक्र आध्यात्मिक जगत एवं भौतिक जगत को अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं। सात चक्रों के नाम इस प्रकार हैं–

1. मूलाधार चक्र 2. स्वाधिष्ठान चक्र 3. मणिपुर चक्र 4. अनाहत चक्र 5. विशुद्धि चक्र 6. आज्ञा चक्र और 7. सहस्रार चक्र।

1. मूलाधार चक्र

प्रथम मूलाधार चक्र गुप्तांग एवं गुदा के बीच पेरिनियम में स्थित है। इसे मूलाधार, मूल आधार अथवा प्रथम चक्र के रूप में जाना जाता है। मूलाधार चक्र प्रभावित होने से साधक पर निम्न प्रभाव देखे जा सकते हैं–

इस चक्र का मूल कार्य ऊर्जा का उत्पादन है। यही बलशाली आन्तरिक ऊर्जा व्यक्तित्व विकास करते हुए भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करती है, आत्मविश्वास को सुदृढ़ बनाती है। यह ऊर्जा जागृत न हो तो व्यक्ति Over confident अथवा Low confident हो जाता है।

इस चक्र में रूकावट होने पर अथवा इसके सक्रिय न होने पर समस्त चक्रों पर दुष्प्रभाव पड़ता है, क्योंकि यह प्रथम चक्र होने से सभी का आधार चक्र है। इसके असंतुलन से व्यक्ति सुनता कम और बोलता ज्यादा है। वह परिस्थितियों को भी सहज स्वीकार नहीं कर पाता।

इस चक्र के जागृत होने से क्रोध, पागलपन, घृणा, वस्तु के प्रति अत्यधिक लगाव, अनियंत्रण, अवसाद, अहंकार, वैचारिक एवं भावनात्मक अस्थिरता, ईर्ष्या, आलस्य, अपेक्षा वृत्ति, बड़बड़ाना, (Depression) आत्महत्या के प्रयास आदि कई भावनात्मक समस्याएँ नियंत्रित होती हैं तथा दुष्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने में सहयोग मिलता है।

सुसंस्कारों के निर्माण में यह चक्र विशेष सहायक बनता है। घटती संवेदनाओं एवं पारिवारिक मूल्यों के पुनर्जागरण में इस चक्र का सक्रिय रहना आवश्यक है। यह चक्र कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करते हुए मृत्यु भय को दूर करता है। इससे साधक आत्मज्ञाता बनकर स्वस्वरूप को प्राप्त करते हुए अन्य कई आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करता है।

इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध प्रजनन तंत्र, गुर्दे एवं गुप्तांग से है। इसलिए तत्सम्बन्धी रोगों जैसे– पुरुष एवं स्त्री प्रजनन अंगों की समस्या, हस्त दोष, स्वप्न दोष, मासिक धर्म सम्बन्धी विकारों आदि का उपशमन होता है। इसी के साथ कैन्सर, कोष्ठबद्धता, फोड़े, सिरदर्द, हड्डी-जोड़ों आदि की समस्या, शारीरिक कमजोरी, बवासीर, गुर्दे, मांसपेशी आदि रोगों का भी निवारण होता है।

यह चक्र शक्ति केन्द्र एवं गोनाड्स ग्रन्थि के कार्य को प्रभावित करता

है अत: इसका संतुलन अथवा असंतुलन शरीर की समस्त गतिविधियों को प्रभावित करता है।

2. स्वाधिष्ठान चक्र

दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र मूलाधार एवं नाभि के मध्य स्थित है। इसे सकराल, यौन, स्वाधिष्ठान एवं द्वितीय चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र में उत्पन्न ऊर्जा काम वासना एवं यौन उत्तेजना को नियंत्रित रखती है। दूसरों से प्रीतिपूर्ण व्यवहार रखने में यह चक्र सहायक बनता है।

स्वाधिष्ठान चक्र प्रभावित होने पर व्यक्ति के जीवन में निम्न प्रभाव देखें जा सकते हैं–

इस चक्र का मूल कार्य प्रजनन तंत्र एवं यौन इच्छाओं को नियंत्रित करना है। इससे सम्बन्धों में मधुरता एवं विश्वास की वृद्धि होती है। इसका असंतुलन या निष्क्रियता कामेच्छाओं को असंतुलित और सम्बन्धों में पारस्परिक अविश्वास की वृद्धि करता है।

प्रथम मूलाधार चक्र यदि सम्यक प्रकार से जागृत हो और साधक को व्यक्तित्त्व बोध अच्छे से हुआ हो तो ही व्यक्ति दूसरे चक्र की ऊर्जा का उपयोग सत्कार्यों में कर सकता है। अत: दूसरा चक्र मुख्य रूप से व्यावहारिक, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन को प्रेम एवं सौहार्द पूर्ण बनाने में सहायक बनता है।

इस चक्र की सक्रियता से भावनात्मक समस्याएँ जैसे– भय, लालसा, असृजनशीलता, अविश्वास, निष्क्रियता, अनाकर्षक व्यवहार, अत्यधिक कामवृत्ति, अकेलापन, नशे की आदत, मानसिक अशांति एवं भावनात्मक अस्थिरता आदि का निवारण होता है।

यह चक्र आत्मा की आन्तरिक शक्तियों एवं गुणों को जागृत करते हुए जीव को निर्भय बनाता है। क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि दुष्वृत्तियों का क्षय करता है। व्यक्तित्व हिमालय की भाँति धवल एवं वाणी प्रभावशाली बनती है। अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है। साधक को आध्यात्मिक उच्चता प्राप्त होती है।

शारीरिक स्तर पर यह चक्र मुख्य रूप से प्रजनन अंग, दोनों पैर एवं गुर्दे आदि को विशेष प्रभावित करता है। इन अंगों से सम्बन्धित रोग जैसे कि

पैरों में दर्द, सुजन, गुर्दे के रोग, प्रजनन समस्याएँ, अंडाशय, गर्भाशय की समस्या, यौनी विकार, यौन रोग आदि का शमन होता है। इसी के साथ यह खून की कमी, सूखी त्वचा, खसरा, हर्निया, दाद-खाज आदि चर्म समस्याएँ, नपुंसकता, मासिक धर्म सम्बन्धी विकार, रक्त कैन्सर आदि का भी शमन करता है।

इस चक्र के जागृत होने से स्वास्थ्य केन्द्र एवं प्रजनन ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं। जिसके द्वारा काम विकार एवं भावनाओं पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

3. मणिपुर चक्र

तीसरा मणिपुर चक्र नाभि में स्थित है। इसे नाभि चक्र या तृतीय चक्र के नाम से भी जाना जाता है। मणिपुर एक ऊर्जा चक्र है। यह साधक को सक्रिय, गतिशील एवं उत्साही बनाता है। इससे साधक आत्मविश्वासी एवं दृढ़ संकल्पी बनता है।

इस चक्र के जागृत होने पर साधक के मनोबल, संकल्पबल एवं आत्मविश्वास में वृद्धि होती है तथा इस चक्र के विकार युक्त होने पर व्यक्ति असक्षम एवं असृजनशील बन जाता है और उसके मनोविकार बढ़ने लगते हैं।

यह तृतीय चक्र व्यक्ति को सामाजिक कर्तव्यों एवं दायित्वों के विषय में जागृत करता है। प्रथम चक्र स्वयं को स्वयं से, द्वितीय चक्र दो व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार से और तृतीय चक्र समूह से जोड़ता है। यह ऊर्ध्वगमन में भी सहायक बनता है।

इस चक्र के जागरण से क्रोध, भय, अनैकाग्रता, अविश्वास, शंकालु वृत्ति, अखुशहाल जीवन, अविषाद, लालच, अत्यधिक कामवृत्ति आदि भावनात्मक समस्याएँ नियंत्रित होती हैं।

इस चक्र के ध्यान से कई आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होते हैं जैसे कि व्यक्ति अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, क्षमा आदि को स्वीकार कर उत्तरोत्तर प्रगति करता है। अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ और नैसर्प आदि नौ निधियों की शक्ति प्राप्त होती है तथा परोपकार एवं परमार्थ आदि की रूचि में वृद्धि होती है।

मणिपुर चक्र का मुख्य प्रभाव उदर भाग स्थित पाचनतंत्र, यकृत (लीवर), पित्ताशय तिल्ली आदि पर पड़ता है। जब यह चक्र प्रभावित होता है तब पाचन संबंधी समस्याएँ तथा मधुमेह, अल्सर, पित्ताशय, लीवर, उदर आदि

के रोगों में निश्चित रूप से फायदा होता है। इसी प्रकार यह चक्र रक्त विकार, हृदय विकार, मानसिक विकार, शरीर एवं श्वास की दुर्गंध, वायु विकार, आँखों की समस्या आदि अनेक रोगों का निवारण करता है।

इस चक्र के प्रभावित होने से एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थियाँ विकार मुक्त होती है तथा तैजस् केन्द्र सक्रिय बनता है। ऐसी स्थिति में उदर प्रदेश एवं पाचन तंत्र सम्बन्धी कार्य सुचारू रूप से होते हैं।

4. अनाहत चक्र

अनाहत सप्त चक्रों में चौथा चक्र है। इसका स्थान हृदय प्रदेश माना गया है। इसे अनहत, हृदय अथवा चतुर्थ चक्र के नाम से भी जाना जाता है। अनाहत चक्र की शक्ति प्रेम, परोपकार, दयालुता, उदारता, सहकारिता, कर्तव्यपरायणता, विश्वमैत्री की भावना को उत्पन्न करती हैं। अनाहत चक्र के प्रभावित होने पर व्यक्ति में निम्न प्रभाव परिलक्षित होते हैं।

यह चक्र मुख्य रूप से वक्ष:स्थल, हृदय, रक्तवाहिनियों एवं श्वसन संस्थान सम्बन्धी कार्यों को प्रभावित करता है। इसे भाव संस्थान भी माना गया है। कलात्मक उमंगे, रसानुभूति एवं कोमल संवेदनाओं के उत्पादन का स्रोत यही चक्र है।

अनाहत चक्र के जागृत होने पर व्यक्ति हृदयगत भावों को सम्यक् रूप से अभिव्यक्त करने में सक्षम बनता है। कलात्मक एवं सृजनात्मक कार्य जैसे चित्रकला, नृत्य, संगीत, कविता आदि की अभिरूचि में वृद्धि होती है।

भावनात्मक विकार जैसे कि उत्तेजना, चिल्लाना, गाली देना, अनुत्साह, असन्तुष्टि, दुखीपन, धुम्रपान, निर्ममता, कौटुम्बिक समस्या, आत्मसम्मान की कमी आदि अनेक नकारात्मक शक्तियों का निर्गमन इस चक्र की साधना से हो सकता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से करूणा, क्षमा, विवेक, आत्मिक आनंद, उदारता, प्रेम, सौहार्द, वसुधैव कुटुम्बकम् आदि के भाव विकसित होते हैं तथा सभी के प्रति मैत्री एवं समत्त्व वृत्ति का विकास होता है।

जब किसी मुद्रा का प्रभाव अनाहत चक्र पर पड़ता है तो दैहिक स्तर पर हृदय, रक्त संचरण एवं श्वसन क्रिया प्रभावित होती है। जिससे हृदय रोग, दमा, छाती में दर्द, रक्तवाहिनियों में रूकावट या Blotting आ जाना आदि

रोगों में विशेष रूप से लाभ प्राप्त होता है। इससे एलर्जी, Anxiety disorder सुस्ती, फेफड़ों के रोग, प्रतिरोधात्मक तंत्र के विकार आदि शारीरिक समस्याएँ भी दूर होती हैं।

थायमस ग्रन्थि एवं आनंद केन्द्र के सम्यक संचालन हेतु इस केन्द्र का सक्रिय होना बहुत आवश्यक है। भावना शुद्धि, सौहार्द एवं सामंजस्य की स्थापना में यह चक्र विशेष सहयोगी है।

5. विशुद्धि चक्र

सात चक्रों में पांचवाँ विशुद्धि चक्र कण्ठ प्रदेश में स्थित है। इसे विशुद्ध, कण्ठ अथवा पंचम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। पंचम चक्र की ऊर्जा के प्रभाव से साधक अपने आत्म भावों को वाणी के द्वारा अच्छी प्रकार से अभिव्यक्त कर पाता है। इस चक्र के प्रभाव से साधक के वैयक्तिक, व्यवहारिक एवं आध्यात्मिक जीवन में निम्न लाभ देखे जा सकते हैं–

यह विशुद्धि चक्र संचार केन्द्र है और स्वयं को व्यक्त करने में मुख्य रूप से सहायक बनता है। विपरित परिस्थितियों में समत्व स्थिति एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार में भी विशेष उपयोगी बनता है। अचेतन मन एवं चित्त संस्थान को प्रभावित करते हुए दायें मस्तिष्क के Silent area को जगाने में भी यह चक्र प्राथमिक भूमिका निभाता है।

इस चक्र के सक्रिय न होने पर भावनाओं की अभिव्यक्ति एवं अन्य संचरण कार्यों में रूकावट आ जाती है। इसी के साथ स्मरण शक्ति का ह्रास, कई प्रकार की मानसिक विकृतियाँ एवं कंठ विकार उत्पन्न होते हैं।

चक्र के सक्रिय होने पर भावनात्मक समस्याएँ जैसे अनियंत्रित व्यवहार, भावनाओं में रूकावट, आंतरिक चिंता, अनुशासन की कमी, स्मृति खोना, आत्महीनता, घबराहट, निष्क्रियता, अहंकार आदि अवरोधों के निवारण में विशेष सहायता प्राप्त होती है।

पाँचवें चक्र का ध्यान करने पर साधक भूख प्यास को नियंत्रित कर सकता है। इससे अतिन्द्रिय क्षमता के प्रसुप्त बीजांकुर फुट पड़ते हैं। आंतरिक शक्ति का जागरण होता है। शारीरिक, मानसिक, वैचारिक एवं भावनात्मक स्थिरता एवं दृढ़ता बढ़ती है। साधक चिंतन शक्ति का विकास करते हुए दार्शनिक या आत्मचिंतक बनता है। कंठ प्रदेश में स्रावित होने वाले अमृत रस के पान

से साधक कांतिवान एवं तेजस्वी बनता है तथा अन्य भी कई आध्यात्मिक लाभों को प्राप्त करता है।

शारीरिक स्तर पर विशुद्धि चक्र के जागरण एवं संतुलन से स्वर तंत्र, कंठ एवं कर्ण प्रदेश पर अधिक प्रभाव पड़ता है। इससे तत्सम्बन्धी रोगों थायरॉइड, बहरापन, कम सुनना, Vocal cord एवं स्वर तंत्र के विकार आदि से राहत मिलती है।

विशुद्धि चक्र के रोग मुक्त होने से विशुद्धि केन्द्र, थायरॉइड और पेराथायरॉईड ग्रंथियाँ प्रभावित होती हैं। इससे वाणी प्रखर एवं प्रभावशाली बनती है।

6. आज्ञा चक्र

इस चक्र का स्थान दोनों भौहों के बीच है। इसे तीसरी आँख या षष्टम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र से प्राप्त ऊर्जा अन्तर्ज्ञान, एकाग्रता एवं अतिन्द्रिय शक्तियों में वृद्धि करती है। आध्यात्मिक उत्थान में यह चक्र विशेष सहायक माना गया है। इसके गतिशील होने पर साधक के जीवन में निम्न लाभ देखे जाते हैं–

इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध हमारे अन्तर्ज्ञान एवं अवचेतन मन में घटित घटनाओं से है। यह ईडा, पिंगला एवं सुषुम्ना का संगम स्थल है। इस चक्र की साधना से व्यष्टि सत्ता समष्टि चेतना से सम्बन्ध जोड़ने में सक्षम हो जाती है।

आज्ञा चक्र के जागरण से साधक दिव्य ज्ञानी, दार्शनिक, दूसरों के मनोभावों को समझने वाला बनता है। भूत एवं भविष्य का ज्ञान और विचार संप्रेषण में दक्षता प्राप्त कर लेता है। मन, बुद्धि एवं विचारों की एकाग्रता सधती है जिससे आत्मनियंत्रण की विशिष्ट शक्ति का जागरण होता है।

इस चक्र के प्रभावित होने पर उन्मत्तता, अवषाद, ज्ञान की कमी, चालाकी, स्मृति समस्याएँ, मानसिक विकार, पागलपन, चंचलता, वैचारिक अस्थिरता आदि भावनात्मक समस्याओं का समाधान होता है।

आत्मनियंत्रण में यह चक्र विशेष सहायक है। बौद्धिक सूक्ष्मता एवं प्रखरता में वृद्धि करते हुए यह आन्तरिक ज्ञान चेतना को भी जागृत करता है। इस चक्र को आत्मा का उत्थान द्वार माना गया है। इससे साधक काम वासना आदि पर विजय प्राप्त कर आत्मानंद की प्राप्ति करता है तथा मस्तिष्किय रहस्यों

एवं आत्मज्ञान को उपलब्ध करता है।

छठे आज्ञा चक्र के जागृत होने पर शरीरस्थ पीयूष ग्रन्थि एवं छोटा मस्तिष्क विशेष प्रभावित होता है। इनके स्वस्थ रहने से अनिद्रा, सिरदर्द, ब्रेनट्युमर, मिरगी एवं मस्तिष्क संबंधी रोगों का निवारण होता है। इसी के साथ पुरानी थकान, पागलपन, पीयुष ग्रन्थि की समस्या, बौद्धिक दुर्बलता आदि भी दूर होती हैं।

बौद्धिक स्तर पर यह चक्र एकाग्रता को बढ़ाता है। विचारों को स्थिर करता है। बौद्धिक दुर्बलता एवं अस्थिरता को दूर करता है। सूक्ष्म बुद्धि विकसित होने से समझ शक्ति तथा स्मृति बल में अभिवृद्धि होती है।

आज्ञा चक्र आन्तरिक दिव्य ज्ञान को जागृत करने एवं आत्मनियंत्रण में विशेष लाभदायी है। इस चक्र के संतुलित रहने से दर्शन केन्द्र एवं पीयूष ग्रन्थि नियन्त्रित रहती हैं।

7. सहस्त्रार चक्र

सहस्त्रार चक्र सिर के ऊपरी भाग में अवस्थित उच्चतम चेतना का केन्द्र है। इसे ताज या सप्तम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र का सम्बन्ध सम्पूर्णतया आध्यात्मिक जगत से है। इस चक्र में प्रवाहित ऊर्जा आत्मा और परमात्मा के बीच तादात्म्य स्थापित कर शाश्वत सत्य का अनुभव करवाती है।

यह चक्र अमरत्व का प्रतीक है। इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध ऊपरी मस्तिष्क से है। यह साधक के ज्ञानार्जन में सहायक बनता है और उसे निर्विकल्प एवं निर्विकारी बनाता है।

सहस्त्रार चक्र के जागृत होने पर साधक की मनोदशा संसार के भौतिक प्रपंचों से मुक्त होकर आध्यात्मिक जगत में स्थिर होती है। इससे असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था प्राप्त होती है। यह चक्र साधना के उच्चतम प्रतिफल की अनुभूति करवाता है।

भावनात्मक समस्याएँ जैसे कि उन्मत्तता, अवषाद, मृत्यु भय, निराशा, नादानी, पागलपन, अनुत्साह , अन्तरप्रेरणा की कमी, खुश नहीं रहना, निर्णय आदि लेने में कठिनाई होना, मानसिक एवं वैचारिक अस्थिरता आदि के निवारण में विशेष भूमिका निभाता हैं।

इस चक्र की साधना से साधक को दिव्य ज्ञान की अनुभूति होती है तथा परमोच्च सिद्ध अवस्था की प्राप्ति होती है।

दैहिक स्तर पर यह चक्र मुख्य रूप से ऊपरी मस्तिष्क को संतुलित रखता है। मस्तिष्क कैन्सर, मानसिक एवं बौद्धिक समस्याएँ , कामासक्ति, सिरदर्द, मिरगी आदि में इस चक्र की सक्रियता फायदा करती है। इससे पार्किंसंस रोग, अन्त:स्रावी ग्रन्थियों की समस्या, ऊर्जा की कमी, पुरानी बिमारी, कामेच्छाओं के असंतुलन आदि दूर होते हैं।

पिनियल ग्रन्थि एवं ज्योति केन्द्र सम्बन्धी असंतुलन के नियंत्रण में यह चक्र सहायक बनता है। इस चक्र के विकार ग्रस्त होने पर व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक अवस्था का ज्ञान नहीं रहता।

ग्रन्थि तंत्रों पर मुद्रा के प्रभाव

आधुनिक विज्ञान के अनुसार व्यक्ति की विविध शारीरिक क्रियाओं के संचालन हेतु अनेक ग्रन्थियाँ एक टीम के रूप में कार्य करती हैं, जिसे तन्त्र कहा जाता है। शरीर के नियंत्रक एवं संयोजक के रूप में मुख्य दो तन्त्र हैं– नाड़ी तन्त्र एवं अन्त:स्रावी ग्रन्थि तन्त्र।

अन्त:स्रावी ग्रन्थियों की रचना हमारे शरीर के नियामक एवं रक्षक तंत्र के रूप में की गई है। यह अपने प्रभावों का निष्पादन रासायनिक स्रावों के माध्यम से करता है जिसे हार्मोन (Harmone) कहते हैं, यह हार्मोन्स रक्त में घुल-मिलकर शरीर के गठन एवं उसके स्वस्थ रहने में सहयोगी बनते हैं तथा मुनष्य की मानसिक दशा, स्वभाव, व्यवहार आदि पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। मुनष्य के भीतर रहे हुए आवेग, वासना, घृणा, कामना आदि को नियंत्रित करने में यह एक प्रमुख स्रोत है। योगाचार्यों के अनुसार ग्रन्थियाँ मन और चारित्र का निर्माण करती हैं।

मुद्रा प्रयोग के द्वारा पेडु के ईद-गिर्द और नीचे स्थित विद्युत एवं ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण किया जा सकता है। इससे अन्त:स्रावी ग्रन्थियों की शक्ति को कई गुणा बढ़ाकर उत्तम चारित्रिक विकास भी संभव है। इन स्रावों के असंतुलन से शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकृतियाँ उत्पन्न होती है। भारतीय योगी साधकों ने हजारों वर्ष पूर्व इन ग्रन्थियों का वर्णन चक्र अथवा कमल के रूप में किया है। ग्रन्थियों एवं चक्रों की तुलना करने पर उनमें कोई विशेष अंतर

परिलक्षित नहीं होता।

जिस प्रकार मधुमक्खी सिंचित फलों के रस में अपना स्राव मिलाकर मधु बनाती है उसी प्रकार ग्रन्थियाँ शरीर में से आवश्यक तत्त्व ग्रहण करके उनमें अपना रस मिलाकर रासायनिक कारखानों की भाँति शक्तिशाली हार्मोन्स का निर्माण करती हैं। ये हार्मोन्स हमारे शरीर में प्रतिक्षण मृतप्राय: कोशिकाओं (Cells) को पुनर्जीवित कर क्रियाशील बनाने का कार्य करते हैं। इससे शारीरिक क्रियाएँ व्यवस्थित रूप से चलती रहती है। कई बार जब ग्रन्थियों में विकृति आ जाती है तो उन्हें संतुलित करना अत्यावश्यक हो जाता है, अन्यथा कई असाध्य रोग उत्पन्न हो सकते हैं। समस्त शारीरिक एवं मानसिक रोगों का मूल कारण अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का असंतुलन ही है।

पंच महाभूतों का नियमन कर शरीर के संगठन (Melabolism of the body) को मजबूत रखना ग्रन्थियों का मुख्य कार्य है। मस्तिष्क और शरीर के प्रत्येक अवयव का संतुलन एवं रोगों से सुरक्षित रखने का कार्य ग्रन्थियाँ ही करती हैं। इस तरह ग्रन्थियाँ हमारे शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं वैयक्तिक निर्माण एवं विकास में सहायक बनती हैं। इन ग्रन्थियों के असंतुलन का प्रभाव व्यक्ति के स्वभाव एवं व्यवहार पर परिलक्षित होता है जैसे कि यदि एंड्रिनल ग्रन्थि सही रूप से कार्यरत न हो तो लीवर बराबर काम नहीं करता तथा व्यक्ति डरा हुआ एवं चिडचिड़ा बन जाता है। यौन ग्रन्थियों के अधिक सक्रिय होने पर वासना बढ़ती है और व्यक्ति स्वार्थी बनता है। यदि थायमस ग्रन्थि अंसतुलित हो तो स्वभाव में छिछोरापन और दुष्टता आती है। पिच्युटरी ग्रन्थि के बराबर काम नहीं करने पर व्यक्ति निर्दयी और कठोर बन जाता है तथा अपराध कार्यों में उसकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है। इसलिए अंत:स्रावी ग्रन्थियों को संतुलित रखना परम आवश्यक है। ये समस्त ग्रन्थियाँ परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं क्योंकि एक ग्रंथि में उत्पन्न विकार समस्त ग्रन्थियों को प्रभावित करता है। मुद्रा प्रयोग के माध्यम से अंत:स्रावी ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित किया जा सकता है। हमारे शरीर में मुख्यतया निम्न आठ ग्रन्थियाँ हैं–

1. पिनीयल ग्रन्थि (Pineal Gland)

पिनीयल ग्रन्थि मस्तिष्क के मध्य पिछले हिस्से में स्थित है। इसका आकार गेहूं के दाने से भी छोटा होता है। यह ग्रन्थि मुख्य सचिव की भाँति शरीर

की व्यवस्था एवं गतिविधियों का संचालन करती है। इसे तीसरी आंख भी कहते हैं।

पिनीयल ग्रन्थि सभी ग्रन्थियों का विधिवत विकास एवं संचालन करती है, शैशव अवस्था में कामवृत्तियों को नियंत्रित रखती है तथा संकट के समय में शारीरिक तन्त्रों को आवश्यक निर्देश देने एवं उन्हें क्रियान्वित करने का कार्य करती है। इससे नियंत्रण एवं नेतृत्व शक्ति का विकास होता है। अत: इस ग्रन्थि का सक्रिय एवं संतुलित रहना अनिवार्य है।

शारीरिक स्तर पर इस ग्रन्थि के विधिवत् कार्य न करने पर उच्च रक्तचाप (High Blood Pressure) एवं समय से पूर्व काम वासना जागृत हो जाती है। शरीरस्थ सोडियम, पोटैशियम और जल की मात्रा का संतुलन यही ग्रन्थि करती है। जिन लोगों की यह ग्रन्थि ठीक से काम नहीं करती उनके शरीर में पानी का जमाव होने से शरीर फुग्गे की तरह फूल जाता है और किडनी के रोगों की संभावना बढ़ जाती है।

यदि यह ग्रन्थि जागृत होकर सम्यक रूप से कार्य करे तो मनुष्य में अनेक दिव्य गुणों का उद्भव हो सकता है। इससे साधक में सज्जनता, साधुता, समझदारी आती है तथा हृदय की सुकुमारता एवं मनोबल दृढ़ होता है।

2. पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland)

पीयूष ग्रन्थि का स्थान मस्तिष्क के निचले छोर तथा नाक के मूल भाग के पीछे की ओर है। इस ग्रन्थि का आकार मटर के दाने के जितना है। यह ग्रन्थि सब ग्रन्थियों की रानी है तथा अन्य ग्रन्थियों को काम का आदेश देती है। इसे ग्रन्थियों को नेता (Master Gland) भी कहा जाता है।

यह ग्रन्थि कम से कम नौ प्रकार के विभिन्न हार्मोनों का स्राव करती है जिससे जीवन के कई महत्त्वपूर्ण क्रियाकलापों पर प्रभाव पड़ता है। यह हमारे मनोबल, निर्णायक शक्ति, स्मरण शक्ति एवं देखने-सुनने की शक्ति का नियमन करती है। इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने से व्यक्ति बुद्धिशाली, प्रसिद्ध लेखक, कवि, वैज्ञानिक, तत्त्वज्ञानी और मानव जाति का प्रेमी बनता है।

इस ग्रन्थि का स्राव शरीर की आन्तरिक हलन-चलन, स्फुर्ति, हृदय की धड़कन, शरीर तापक्रम, रक्त शर्करा आदि को नियंत्रित रखता है। यह ग्रन्थि व्यक्ति की लम्बाई, सिर के बाल एवं हड्डियों के विकास को भी संचालित करती है।

इस ग्रन्थि के असंतुलित होने पर से शरीर दुर्बल अथवा अत्यधिक मोटा हो जाता है। यह मस्तिष्क का भी नियंत्रण करती है। अत्यधिक डरने, चोट लगने अथवा गर्भावस्था में अधिक चिंता करने से गर्भस्थ शिशु की पीयूष ग्रन्थि प्रभावित होती है जिसके परिणामस्वरूप अल्प विकसित मस्तिष्क वाले बच्चे (Retarded child) का जन्म होता है। ऐसे बच्चे हीन वृत्तिवाले, भावनाशून्य, शरारती एवं स्वच्छंदी होते हैं। पीयूष ग्रन्थि को मुद्रा प्रयोग द्वारा प्रभावित करने से इन सब समस्याओं में विस्मयकारी समाधान देखा जा सकता है।

इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने से बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास में सहायता प्राप्त हो सकती है। यह ग्रन्थि तनावमुक्त, प्रसन्नता, सहिष्णुता, मैत्री भावना आदि गुणों से युक्त जीवन जीने में सहयोग करती है तथा वाचालता, अस्थिरता, अत्यधिक संवेदनशीलता, शारीरिक उष्णता आदि को न्यून करती है।

3. थाइरॉइड-पेराथाइरॉइड ग्रन्थियाँ (Thyroid and Para thyroid Gland)

थाइरॉइड एवं पेराथाइरॉइड ग्रन्थियाँ स्वर यंत्र के समीप श्वासनली के ऊपरी छोर पर स्थित हैं। इन्हें अवटु एवं परावटु ग्रन्थि भी कहा जाता है। यह ग्रन्थि विपुल मात्रा में रक्त की आपूर्ति करती है और बालकों के विकास में विशेष सहायक बनती है।

थाइरॉइड ग्रन्थि शरीर में ऊर्जा उत्पादन का मुख्य अवयव है। चयापचय की मात्रा और व्यक्ति की जल्दबाजी को निर्धारित करने का मुख्य कार्य यही ग्रन्थि करती है। इस ग्रन्थि की सक्रियता से सद्भाव, उच्च विचारशक्ति, एकाग्रता, आत्मसंयम, संतुलित स्वभाव, पवित्रता, परोपकार आदि गुणों का जन्म होता है।

शारीरिक स्तर पर यह ग्रन्थि शरीरस्थ चूने एवं गंधक तत्त्व (Calcium and Phosphorus) का पाचन करती है। शरीर में रहे विजातिय तत्त्वों को दूर करती है। गर्मी को संतुलित रखती है। पाचन एवं प्रजनन अंगों से सीधा सम्बन्ध होने के कारण यह भोजन को रक्त, मांस, मज्जा, हड्डी एवं वीर्य में परिवर्तित करने में सहायक बनती है। कामेच्छा को गति देने, प्रजनन अंगों को स्वच्छ रखने एवं मासिक धर्म को नियंत्रित रखने में भी इस ग्रन्थि की मुख्य भूमिका है।

इस ग्रन्थि के असंतुलित रहने पर शरीर में थकान महसूस होती है। शरीर का सूखना (Rickets), हिचकी (Convulsion), स्नायुओं का ऐंठन आदि रोग होते हैं। बालकों का विकास अवरूद्ध हो जाता है। पथरी, मोटापा, रियुमेटिजम, आर्थराईटिस, कोलेस्ट्रॉल आदि की समस्या बढ़ जाती है तथा अस्वस्थता, वाचालता, मुखरता, कृतघ्नता आदि दुर्गुणों की वृद्धि होती है।

इस ग्रन्थि की संतुलित अवस्था में वायु तत्त्व, केलशियम, आयोडिन और कोलेस्ट्रॉल नियन्त्रित रखते हैं। मस्तिष्क को संतुलित रखते हुए यह शरीर में होने वाले वसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट की चयापचय क्रिया को भी नियंत्रित रखती है।

इस ग्रन्थि के जागृत रहने पर सुख और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है, कामेच्छा नियंत्रित रहती है और बालकों में सुसंस्कारों एवं सद्गुणों का विकास होता है।

4. थायमस ग्रन्थि (Thymus Gland)

थायमस ग्रन्थि गर्दन के नीचे एवं हृदय के कुछ ऊपर सीने के मध्य स्थित है। इसे धायमाता कहा जाता है। इसका प्रमुख कार्य बालकों की रोग से रक्षा करना है। शैशव अवस्था में इस ग्रन्थि की वृद्धि बहुत तेजी से होती है और बीस वर्ष की आयु के बाद यह सिकुड़ जाती है।

इस ग्रन्थि से शैशव अवस्था में शारीरिक विकास का नियमन होता है। विशेष रूप से गोनाड्स (काम ग्रन्थियों) को सक्रिय नहीं होने देती। यौवन अवस्था में उन्मादों का निरोध करती है। मस्तिष्क का सम्यक नियोजन करते हुए लसिका-कोशिकाओं के विकास में अपने स्राव (T-cells) द्वारा सहयोग कर रोग निरोधक कार्यवाही में योगदान करती है। इस प्रकार बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास में यह विशेष सहयोगी बनती है।

5. एड्रीनल ग्रन्थि (Adrenal Gland)

एड्रीनल ग्रन्थि गुर्दे के ऊपरी भाग में युगल रूप में रहती है। यह टोपी जैसी त्रिकोणाकार होती है। इस ग्रन्थि के द्वारा ग्रन्थि शारीरिक गतिविधियों जैसे– हलन-चलन, श्वसन, रक्त संचरण, पाचन, मांसपेशी संकुचन, पानी आदि अनावश्यक पदार्थों के निष्कासन में विशेष सहयोग प्राप्त होता है।

यह ग्रन्थि तीन दर्जन से भी अधिक प्रकार के स्रावों को उत्पन्न करती

है। ये स्राव मस्तिष्क एवं प्रजनन अवयवों के स्वस्थ विकास में सहायक बनते हैं तथा मानसिक एकाग्रता एवं शारीरिक सहनशीलता को बढ़ाते हैं। इन स्रावों के प्रभाव से शरीर की स्नायविक और मांसपेशीय संरचना स्वस्थ एवं बलवान रहती है। रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करते हुए शरीर के लिए आवश्यक रसायनों एवं औषधियों के निर्माण में भी यह सहायक बनती है। शरीरस्थ अग्नितत्त्व का नियमन करते हुए यह ग्रन्थि यकृत, लीवर, गोल ब्लेडर, पाचक रस एवं पित्त उत्पादन कार्य का संतुलन करती है।

इस ग्रन्थि के सक्रिय एवं संतुलित रहने से तीव्र परख शक्ति, अथक कार्य शक्ति, आंतरिक साहस, निर्भयता, आशावादिता, आत्मविश्वास आदि सकारात्मक गुणों की वृद्धि होती है। इसके एपीनेफ्रीन और नोर-एपीनेफ्रिन नामक हार्मोनों के स्राव दर्द, शीत प्रकोप, अल्प रक्तचाप, भावनात्मक उद्वेग, क्रोध, उत्तेजना आदि का शमन करने में विशेष सहयोगी बनते हैं।

6. पेन्क्रियाज ग्रन्थि (Pancreas Gland)

यह ग्रन्थि पेट में 6इंच से 8 इंच लम्बी स्थित है। इस ग्रन्थि में उत्पन्न रस क्षारीय स्वभाव का होने से शरीर के आम्लिय तत्त्वों को नियंत्रित रखता है। इन्हीं रसों में से एक इंसुलिन नामक रस रक्त शर्करा को पचाने में महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। यही रस शरीर में ऊर्जा का भी उत्पादन करता है।

वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधानों के अनुसार पेन्क्रियाज के अधिक क्रियाशील रहने पर शरीरस्थ रक्त शर्करा कम हो जाती है जिससे लो ब्लड प्रेशर, आधासीसी आदि रोगों की संभावना बढ़ जाती है और वहीं इसकी निष्क्रियता मधुमेह आदि रोगों को बढ़ाती है।

इस ग्रन्थि से जागृत रहने पर भूख, पसीना, रक्तचाप आदि नियंत्रित रहते हैं तथा सिरदर्द, तनाव, कमजोरी, लो ब्लड प्रेशर, मधुमेह आदि रोगों का निवारण होता है। यह ग्रन्थि अनिर्णायकता, चिंतातुरता, अतिसंवेदनशीलता आदि समस्याओं का भी निवारण करती है।

7. प्रजनन ग्रन्थियाँ (गोनाड्स)

रजपिंड एवं शुक्रपिंड (Overies and Testies) के रूप में काम ग्रन्थियाँ मनुष्य के शरीर में पेडु एवं पृष्ठ रज्जु के नीचे के छोर के पास स्थित हैं। स्त्रियों में डिम्बाशय एवं पुरुषों में वृषण प्रजनन ग्रन्थि का कार्य करते हैं। यह ग्रन्थि प्रजनन की अटूट श्रृंखला को चालु रखती है।

गोनाड्स या काम ग्रन्थियाँ मुख्य रूप से कामेच्छा को नियन्त्रित कर विपरित लिंग के प्रति आकर्षण उत्पन्न करती हैं। इससे नि:सृत स्राव के द्वारा स्त्रियाँ स्त्रियोचित व्यक्तित्व को और पुरुष पुरुषत्व को प्राप्त करते हैं। ग्रन्थियाँ देह में स्थित जलतत्त्व का संतुलन करते हुए ज्ञानतंतुओं, मज्जा कोष, मांस, हड्डी, बोन-मेरो एवं वीर्य रज का नियमन करती हैं तथा अन्य अवयव एवं उनके क्रियाकलापों पर भी गहरा प्रभाव डालती है।

यदि काम ग्रन्थियाँ सुचारू रूप से कार्य न करें तो कन्याओं की मासिक धर्म (Menstural Periods) सम्बन्धी गड़बड़ियाँ, मुहाँसे, पांडुरोग (Anemia) आदि तथा लड़कों में हस्तदोष-स्वप्नदोष आदि समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने पर शरीर की गर्मी संतुलित रहती है। इससे युवक-युवतियों का स्वभाव मिलनसार बनता है। यह मनुष्य के व्यवहार एवं वाणी को लोकप्रिय बनाती है।

चैतन्य केन्द्रों पर मुद्रा का प्रभाव

भगवतीसूत्र में बतलाया गया है 'सव्वेणं सव्वे' हमारी चेतना के असंख्य प्रदेश हैं और वे सब चैतन्य केन्द्र हैं। कुछ स्थान या केन्द्र ऐसे होते हैं जिनके द्वारा हम शरीर एवं भावों को अधिक प्रभावित कर सकते हैं। हमारे शरीर के संचालन में चैतन्य केन्द्रों की विशेष भूमिका होती है। चेतना का आन्तरिक स्तर मन नहीं है अपितु चेतन मन में उठने वाले आवेग क्रोध, अभिमान, ईर्ष्या, लालच आदि वृत्तियाँ हैं।

यद्यपि प्रत्येक मनुष्य में विवेक चेतना अन्तर्निहित होती है। इस विवेक चेतना एवं विवेक पूर्ण निर्णायक शक्ति का सम्यग विकास ही हमारे भीतर रही पाशवी वृत्तियों, रूढ़िगत परम्पराओं, मानसिक विकारों एवं भावनात्मक अस्थिरता आदि को दूर कर सकती है। विवेक चेतना के जागरण के लिए चैतन्य केन्द्रों का स्वस्थ एवं विकार रहित रहना परमावश्यक है। चित्त का यह स्वभाव है कि वह सिर से लेकर पैर तक घुमता रहता है। कभी ऊपर तो कभी नीचे, कभी अच्छे विचारों में तो कभी बुरे विचारों में, कभी उत्कृष्ट भावों में तो कभी गहन पतन के मार्ग पर। इन सब पर नियंत्रण करने हेतु चैतन्य केन्द्रों का संतुलित एवं जागृत रहना आवश्यक है। मुद्रा प्रयोग के माध्यम से यह कार्य सहज संभव होता है।

वैज्ञानिक शोधों के अनुसार हमारा सम्पूर्ण शरीर विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र (Electro Magnetic Field) है, किन्तु कुछ विशेष स्थानों में विद्युत क्षेत्र की तीव्रता अन्य स्थानों की तुलना में कई गुणा अधिक होती है। हमारा मस्तिष्क, इन्द्रियाँ, अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ आदि कुछ ऐसे ही क्षेत्र हैं। आयुर्वेद की भाषा में इन्हें मर्म स्थान कहा गया है। आयुर्वेदाचार्यों ने 107 मर्म स्थानों का उल्लेख किया है जहाँ पर प्राणों का केन्द्रीकरण होता है। इन रहस्यमय स्थानों में चेतना विशेष प्रकार से अभिव्यक्त होती है। युवाचार्य महाप्रज्ञजी ने तेरह चैतन्य केन्द्रों की चर्चा की है।

1. शक्ति केन्द्र 2. स्वास्थ्य केन्द्र 3. तैजस केन्द्र 4. आनंद केन्द्र, 5. विशुद्धि केन्द्र 6. ब्रह्म केन्द्र 7. प्राण केन्द्र 8. चाक्षुष केन्द्र 9. अप्रमाद केन्द्र 10. दर्शन केन्द्र 11. ज्योति केन्द्र 12. शांति केन्द्र और 13. ज्ञान केन्द्र।

ये चैतन्य केन्द्र समस्त अवयवों में सक्रियता उत्पन्न करते हैं तथा इन्द्रियों एवं मन को भी संचालित करते हैं। इन्द्रियों पर नियन्त्रण पाना साधना का मुख्य लक्ष्य होता है। मुद्रा साधना इसमें सहायक बनती है।

1-2. शक्ति केन्द्र एवं स्वास्थ्य केन्द्र

शक्ति केन्द्र मूलाधार के स्थान पर अर्थात् पृष्ठ रज्जु के नीचे स्थित है। यह स्थान हमारी समस्त शारीरिक ऊर्जा एवं जैविक विद्युत (Bio-electricity) का संचयगृह है। यहीं से विद्युत का उत्पादन एवं प्रसरण होता है। इस केन्द्र के जागृत होने से अधोगामी विद्युत प्रवाह ऊर्ध्वगामी बनता है। इससे साधक की सभी क्रियाएँ सकारात्मक एवं ऊर्ध्वगामी बनती है। शक्ति केन्द्र कुण्डलिनी का स्थान है अत: इसके जागृत होने से साधना चरम लक्ष्य तक अवश्य पहुँचती है।

पेडु के नीचे जननेन्द्रिय का अधोवर्ती स्थान स्वास्थ्य केन्द्र है। यह काम ग्रन्थियों का प्रभावी क्षेत्र है इसलिए काम-वासना आदि की उत्पत्ति यहीं से होती है और हमारे समग्र स्वास्थ्य का नियंत्रण भी यहीं से होता है। स्वास्थ्य केन्द्र के स्वस्थ, सक्रिय एवं संतुलित रहने पर व्यक्ति स्वस्थ चित्त का अनुभव करता है। मानसिक एवं भावनात्मक स्वस्थता एवं विकार रहितता में भी यह केन्द्र सहायक बनता है। आत्मनियंत्रण की कला भी इसी केन्द्र से विकसित होती है।

शक्ति केन्द्र और स्वास्थ्य केन्द्र की निर्दोषता से सम्पूर्ण विकास सहज एवं सरल हो जाता है। ये दोनों मूल केन्द्र होने से यदि इनमें विकार हो जायें तो समस्त केन्द्र विकार ग्रस्त हो जाते हैं। यह केन्द्र संतुलित रहने से वृत्तियों का उभार ही नहीं होता, कामेच्छा आदि संतुलित रहती हैं तथा आन्तरिक ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण होता है।

3. तैजस केन्द्र

तैजस् केन्द्र नाभि के स्थान पर होता है। इस केन्द्र का सम्बन्ध एड्रीनल-पैन्क्रियाज ग्रंथि एवं मणिपुर चक्र से है। यह केन्द्र ग्रन्थियों एवं चक्रों के कार्य वहन में सहायक बनता है। योगाचार्यों के अनुसार इस केन्द्र के असंतुलन से क्रोध, लोभ, भय आदि वृत्तियाँ अभिव्यक्त होती हैं। इसके जागरण एवं संतुलन के द्वारा विकृत भावों को रोका जा सकता है। इसके माध्यम से ईर्ष्या, घृणा, भय, संघर्ष, तृष्णा आदि कुवृत्तियों को भी नियंत्रित रखा जा सकता है।

तैजस् केन्द्र अग्नि तत्त्व का स्थान है। इसके अधिक सक्रिय होने पर काम-वासना आदि वृत्तियों में उभार आ जाता है अत: इसको नियन्त्रित रखने से तेजस्विता बढ़ती है, शक्ति का संचय होता है तथा आवेगात्मक वृत्तियाँ शांत रहती हैं।

4. आनंद केन्द्र

आनंद केन्द्र का स्थान फुप्फुस के नीचे हृदय के निकट में है। थायमस ग्रन्थि को प्रभावित करने हेतु यह एक महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। आनंद केन्द्र के जागृत होने से साधक बाह्य जगत से मुक्त होकर भीतरी जगत में प्रवेश करता है। काम-वासना के परिशोधन में भी यह सहायक बनता है।

जब आनंद केन्द्र संतुलित रहता है तब काम वासना आदि वृत्तियाँ संतुलित रहती हैं, अध्यात्म की ओर रूझान बढ़ता है और हृदय सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है।

आनंद केन्द्र के विकृत होने पर कामवृत्तियों की उग्रता बढ़ जाती है जिससे आलस, शुष्कता, निष्क्रियता आदि में वृद्धि होती है एवं अन्य कई विकार उत्पन्न होते हैं।

5. विशुद्धि केन्द्र

विशुद्धि केन्द्र का स्थान कंठ है। यह थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि का मुख्य क्षेत्र है। इस केन्द्र के प्रभावित होने से वाणी पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यह उच्चतर चेतना एवं आत्मिक शक्तियों का विकास करता है। इसका मन के साथ गहरा सम्बन्ध है।

इस केन्द्र के जागृत होने पर जीवन की गति नियंत्रित रहती है। इससे जैविक क्षमता में अभिवृद्धि भी होती है तथा यह भावों के उदात्तीकरण एवं निर्मलीकरण में सहायक बनता है। इस केन्द्र की विशुद्धि से चित्त की एकाग्रता, स्थिरता एवं समाधि को प्राप्त किया जा सकता है।

विशुद्धि केन्द्र का असंतुलन जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप में अरुचि उत्पन्न करता है। इससे मानसिक एवं आध्यात्मिक चेतना समाप्त हो जाती है। शारीरिक स्तर पर चयापचय, पाचन आदि की क्रिया असंतुलित रहती है।

इस केन्द्र के नियोजन से शारीरिक क्रियाएँ सुचारू रूप से चलती है। आध्यात्मिक एवं मानसिक जगत सुंदर बनता है।

6. ब्रह्म केन्द्र

ब्रह्म केन्द्र का स्थान जिह्वा का अग्रभाग है। इस केन्द्र की जागृति एवं साधना ब्रह्मचर्य को पुष्ट करती है। हमारे ज्ञानेन्द्रियों का कामेन्द्रियों के साथ सम्बन्ध होता है। जिह्वा का सम्बन्ध जननेन्द्रिय एवं जल तत्त्व से है अत: जब जिह्वा को अधिक रस मिलता है तो कामुकता बढ़ती है।

ब्रह्म केन्द्र के संतुलित अथवा नियंत्रित रहने से संयम एवं ब्रह्मचर्य में वृद्धि होती है। जीभ पर रखा गया संयम काया-वासनाओं को शिथिल करता है। ब्रह्म केन्द्र पर नियंत्रण प्राप्त करने से मनवांछित कार्य की सिद्धि होती है।

इस केन्द्र का असंतुलन काम वासनाओं को उत्तेजित एवं वाणी को अनियंत्रित करता है।

7. प्राण केन्द्र

प्राण केन्द्र का स्थान नासाग्र है। यह अंग प्राण का मुख्य केन्द्र है और इसकी साधना से प्राण का ऊर्ध्वीकरण होता है।

प्राण केन्द्र की साधना से प्रकाश दर्शन, पूर्वाभास, दूराभास आदि हो सकता है। एकाग्रता की सिद्धि में यह केन्द्र अत्यन्त उपयोगी है। इससे संकल्प

शक्ति, मनोबल एवं आत्मविश्वास की वृद्धि होती है।

इस केन्द्र के निष्क्रिय होने पर प्राण बल कमजोर होता है जिससे जीवन का समग्र विकास अवरुद्ध हो जाता है।

8. चाक्षुष केन्द्र

चाक्षुष केन्द्र का स्थान चक्षु है। चित्त की एकाग्रता के लिए यह बहुत प्रभावशली केन्द्र है। इसके माध्यम से मस्तिष्किय विद्युत् से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। यह जीवनशक्ति का केन्द्र है अत: इसके दीर्घकालीन अभ्यास से दीर्घायु की प्राप्ति हो सकती है।

9. अप्रमाद केन्द्र

अप्रमाद केन्द्र का स्थान कान और उसके आस-पास कनपट्टि का स्थान है। इस केन्द्र की साधना व्यसन मुक्ति में परम उपयोगी है।

रूस के वैज्ञानिकों के अनुसार अप्रमाद केन्द्र पर विद्युत् प्रवाह के प्रयोग से व्यसन मुक्ति में सफलता प्राप्त हो सकती है। इस केन्द्र पर नियंत्रण प्राप्त करने से अनेक बुराईयों का शमन होता है। स्नायुतंत्र चैतन्यशील बनता है तथा स्मृति का विकास होता है। इससे मूर्छा एवं भ्रम की स्थिति दूर होती है।

अप्रमाद केन्द्र की असक्रियता अथवा अतिसक्रियता व्यक्ति को सुस्त, आलसी एवं प्रमादी बनाती है।

10. दर्शन केन्द्र

दर्शन केन्द्र का स्थान हमारी दोनों भृकुटियों के बीच है। यह अति महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। शरीर शास्त्रियों के अनुसार यह वीतराग प्राप्ति का सूचक केन्द्र है। इसे आज्ञा चक्र एवं तृतीय नेत्र भी कहा जाता है।

इस केन्द्र की सक्रियता से चैतन्य जागरण का मार्ग प्रशस्त होता है। चंचल वृत्तियाँ समाप्त होती हैं। मानसिक, वाचिक एवं भावनात्मक स्थिरता और एकाग्रता का विकास होता है। पूर्णाभास, अन्तर्दृष्टि एवं अतिन्द्रिय क्षमताओं का वर्धन होता है। विचार सकारात्मक, उच्च एवं आध्यात्मिक बनते हैं।

दर्शन केन्द्र का असंतुलन व्यक्ति को मानसिक एवं बौद्धिक रूप से विक्षिप्त और असंतुलित कर मस्तिष्क सम्बन्धी विकारों एवं रोगों को उत्पन्न करता है तथा पीयूष ग्रन्थि के कार्यों को भी प्रभावित करता है।

11. ज्योति केन्द्र

ज्योति केन्द्र ललाट के मध्य भाग में स्थित है। इस केन्द्र का सम्बन्ध पिनीयल ग्रन्थि से है। यह केन्द्र कषाय, नोकषाय, काम वासना, असंयम, आसक्ति आदि संज्ञाओं के उपशमन में विशेष सहायक बनता है।

ज्योति केन्द्र को नियंत्रित करने से क्रोधादि आवेश एवं आवेग शांत हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य की साधना ऊर्ध्वता को प्राप्त करती है। पिच्युटरी एवं पिनीयल ग्रन्थि की सक्रियता बढ़ जाती है। एड्रीनल एवं गोनाड्स ग्रन्थियों पर नियंत्रण प्राप्त होता है। कामवृत्तियाँ अनुशासित होने से आन्तरिक आनंद की अनुभूति होती है।

इस केन्द्र के सुप्त रहने पर अपराधी मनोवृत्तियों को बल मिलता है। इससे काम, क्रोध, भय आदि संज्ञाएँ उत्पन्न होती हैं तथा मानसिक एवं भावनात्मक विकृतियाँ बढ़ती है।

इस केन्द्र की साधना करने वाला शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त कर कामी से अकामी बन जाता है।

12. शांति केन्द्र

शांति केन्द्र का स्थान मस्तिष्क का अग्रभाग माना गया है। यह चित्त शक्ति का भी एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इसका सम्बन्ध भावधारा से है। सूक्ष्म शरीर से प्रवाहमान भावधारा मस्तिष्क के इसी भाग में आकर जुड़ती है।

आयुर्वेदाचार्यों ने इसे अधिपति मर्म स्थान कहा है। हठयोग के अनुसार यह ब्रह्मरन्ध्र या सहस्रार चक्र का स्थान है। इसके जागृत होने से परमोच्च अवस्था एवं आत्मानंद की प्राप्ति होती है तथा चैतन्य केन्द्रों का जागरण एवं हृदय परिवर्तन होता है।

शांति केन्द्र की असक्रियता अवचेतन मन में एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में विकार उत्पन्न करती है। इससे नाड़ी संस्थान के कार्यों में भी बाधा पहुँचती है।

13. ज्ञान केन्द्र

सिर का ऊपरी भाग (चोटी का स्थान) ज्ञान केन्द्र माना गया है। यह मानसिक ज्ञान का चैतन्य केन्द्र है। मन की सारी मनोवृत्तियाँ इसके विभिन्न कोष्ठों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। यही स्थान बुद्धि, स्मृति, चिन्तनशक्ति आदि का मुख्य केन्द्र है।

ज्ञान केन्द्र के जागरण से मस्तिष्क विकसित होता है। चैतन्य शक्ति प्रबल बनती है। दिव्य ज्ञान का जागरण होता है। अतिन्द्रिय क्षमता का विकास होता है। पूर्वजन्म स्मृति, प्राण-अवबोध (Pre-cognition) आदि विशेष शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

पाँच तत्त्वों पर मुद्रा के प्रभाव

हमारा शरीर मुख्य रूप से पंच महाभूतों का पिण्ड है। ये पाँच तत्त्व मिलकर हमारी समस्त क्रियाओं का संयोजन करते हैं। इनका भिन्न-भिन्न संयोजन शरीर की प्रकृति को निश्चित करता है। जब पाँच तत्त्व उचित मात्रा में बने रहते हैं तो शरीर की चयापचय क्रियाएँ भी सम्यक् प्रकार से होती है तथा शरीर स्वस्थ एवं तंदूरूस्त रहता है।

पारिवारिक संस्कारों, वंशानुगत परम्परा, आहारचर्या, जीवनशैली, वातावरण आदि के कारण तत्त्वों की मूल अवस्था में परिवर्तन होता रहता है। इससे शारीरिक क्रियाओं में विक्षेप एवं विकृति आ जाती है और तत्त्वों की स्वभाव च्युति शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक गतिविधियों को प्रभावित करती है। इन तत्त्वों के मूलस्थिति में रहने पर शरीर विशिष्ट शक्ति प्राप्त करता है एवं मस्तिष्क व्यवस्थित रूप में कार्य करता है।

मुद्रा प्रयोग के द्वारा शरीरस्थ पाँचों तत्त्वों का संतुलन किया जा सकता है। शरीरशास्त्रियों एवं आयुर्वेदाचार्यों ने पाँच अंगुलियों में पाँचों तत्त्वों का प्रतिपादन किया है। जिसके शरीर में जिस तत्त्व की कमी या असंतुलन हो वह उस तत्त्व से सम्बन्धित मुद्रा का प्रयोग करके उस कमी की परिपूर्ति कर सकता है।

पृथ्वी आदि पाँचों तत्त्व हमारे शरीर की विद्युत शक्ति का नियंत्रण करते हैं। पश्चिमी वैज्ञानिकों ने भी इस विद्युत को जीव विद्युत् (Bioelectricity) अथवा जीवन शक्ति (Bioenergy) के रूप में स्वीकृत किया है। यह प्राण शक्ति जीवन बैटरी के रूप में हमारे शरीर में गर्भाधान के समय स्थापित हो जाती है जो चैतन्य रूपी विद्युत् प्रवाह को उत्पन्न करती है। मुद्रा आदि यौगिक साधनाओं के द्वारा यह विद्युत् प्रवाह सक्रिय रहता है।

मनुष्य की शारीरिक क्रियाओं में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश ये पाँचों तत्त्व निम्न प्रकार से सहायक बनते हैं–

1. पृथ्वी तत्त्व

शरीर का स्थूल ढांचा, अस्थि, मांसपिण्ड आदि पृथ्वी तत्त्व का रूप है। इस तत्त्व की कमी से शरीर के सभी जैविक बल निष्क्रिय हो जाते हैं। उन सभी को सक्रिय रखने के लिए अधिक शक्ति की जरूरत पड़ती है जो कि पृथ्वी तत्त्व से प्राप्त होती है। अधिक वजन वाले, मांसल, चरबीयुक्त व्यक्ति इस तत्त्व के आधिपत्य के उदाहरण हैं। ऐसे लोग निश्चिन्त स्वभाव वाले होते हैं। कुछ हासिल करने की उत्सुकता उनमें नहीं रहती, वे संघर्ष से दूर भागते हैं तथा सुस्त एवं आलसी प्रवृत्ति वाले होते हैं।

इस तत्त्व के त्रुटिपूर्ण रहने से व्यक्ति स्वार्थी बनता है तथा उसके विचारों आदि में शुष्कता एवं आग्रह बढ़ जाता है।

पृथ्वी एक तटस्थ तत्त्व है। इसके संतुलित रहने से व्यक्ति तटस्थ विचारों वाला होता है और उसकी विचलित अवस्था दूर होती है। इस तत्त्व के नियमन से शरीर की स्थूलता, हड्डी, मांस, आदि नियंत्रित रहते हैं।

2. जल तत्त्व

जल जीवन तत्त्व है। हमारे शरीर में 70% से अधिक जल तत्त्व का परिमाण है। यह तत्त्व अपने स्वभाव के अनुसार ही शीतलता प्रदान करता है तथा जीवन प्रवाह को सुरक्षित रखता है। शरीर के तापमान को नियंत्रित एवं रूधिर आदि की कार्य पद्धति को संतुलित रखने में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

इस तत्त्व के संतुलित रहने से मूत्रपिंड, प्रजनन अंग, लसिका ग्रन्थियों आदि का स्राव संतुलित रहता है। यह प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करता है। यौन ग्रन्थियों, चेताकोषों, रजवीर्य, अस्थिमज्जा आदि को उत्पन्न करता है तथा शरीर को स्वस्थ रखने में मुख्य सहयोगी बनता है। इस तत्त्व के असंतुलन से शरीर में जल तत्त्व की कमी आदि हो जाती है जिससे रक्त वाहिनियों, मूत्राशय आदि में विकार उत्पन्न हो सकते हैं। भावों के प्रवाह में भी यह रूकावट उत्पन्न करता है।

3. अग्नि तत्त्व

यह तत्त्व शरीर में उत्पन्न अग्नि द्वारा आहार का पाचन कर शरीर को शक्ति प्रदान करता है। इसके जठर, तिल्ली, यकृत, स्वादुपिंड, एड्रीनल आदि

मुख्य केन्द्र हैं। अग्नि तत्त्व संतुलित एवं सक्रिय रहने पर शरीर में अग्निरस, पित्तरस, पाचकरस आदि की उत्पत्ति होती है। यह शरीर के तापमान को बनाए रखते हुए सभी अंगों को सक्रिय रखता है। इससे रूधिर, मांस, चर्बी, अस्थि आदि के निर्माण में सहायता प्राप्त होती है। यह स्नायुतंत्र को स्वस्थ एवं चेहरे को सुंदरता प्रदान करता हुआ रोग प्रतिरोधक तत्त्वों को उत्पन्न करने में भी सहायता प्रदान करता है।

इस तत्त्व का असंतुलन पाचन सम्बन्धी विकारों का मूलभूत कारण है। इससे एनीमिया, पीलिया, बेहोशी, मस्तिष्क सम्बन्धी अव्यवस्था, दृष्टि विकार, मोतिया बिंद, एसिडिटी आदि शारीरिक समस्याएँ उत्पन्न होती है और आन्तरिक बल घटता है।

यह तत्त्व विचार शक्ति में सहायक एवं मस्तिष्क शक्ति को विकसित करता है। इससे शारीरिक तेज एवं कांति में वृद्धि होती है तथा यह ऊर्जा के जागरण एवं ऊर्ध्वीकरण में सहायक बनता है।

4. वायु तत्त्व

वायु तत्त्व को जीवन कहा गया है। यह एक ऐसी शक्ति है जो शरीर के प्रत्येक भाग का संचालन करती है। इसके छाती, फेफड़े, हृदय, थायमस ग्रन्थि आदि मुख्य केन्द्र हैं।

वायु तत्त्व शरीर के प्रमुख सहकारी एवं संरक्षक बल को उत्पन्न करने में सहयोगी बनता है। यह हृदय एवं रूधिर अभिसरण की क्रिया को नियंत्रित और शरीर को संतुलित बनाए रखता है। इससे श्वसन एवं मलमूत्र की गति में भी मदद मिलती है।

इस तत्त्व के समस्थिति में रहने पर वचन शक्ति, मानसिक शक्ति एवं स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है। इससे स्व नियंत्रण में भी विशेष सहयोग प्राप्त होता है।

इसके असंतुलन से हृदय रोग, वायु विकार, फेफड़ें आदि के विकार उत्पन्न होते हैं तथा विचारों में संकीर्णता एवं असहकारिता आदि भावों का जन्म होता है।

5. आकाश तत्त्व

यह तत्त्व सम्पूर्ण शरीर में हवा, रक्त, जल आदि तत्त्वों के वहन या

संचरण में सहयोग करता है। इस तत्त्व के संतुलित रहने से शरीरस्थ विष द्रव्यों का निष्कासन सहजतया हो जाता है जिससे शरीर स्वस्थ एवं तंदुरुस्त रहने के साथ-साथ थाइरॉईड, पेराथाइरॉईड, टान्सिल, लार रस आदि पर नियंत्रण रहता है। इससे मस्तिष्क सम्बन्धी विकार भी दूर होते हैं।

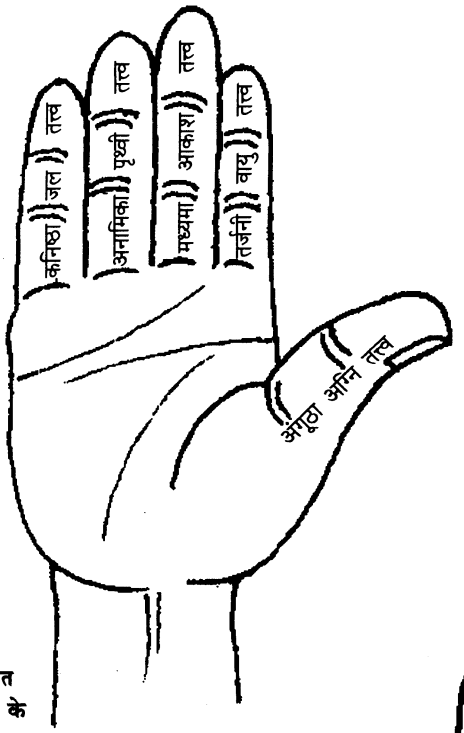
इस तत्त्व के असंतुलन से हार्टअटैक, लकवा, मूर्च्छा आदि अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होती है। पीयूष ग्रन्थि एवं पीनियल ग्रन्थि के विकारों का मुख्य कारण इसी तत्त्व का असंतुलन है। यह तत्त्व सम्यक् दिशा में गतिशील हो तो मानसिक शक्तियों का पोषण होता है तथा अध्यात्म मार्ग की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से यह सुस्पष्ट है कि प्रत्येक मुद्रा शरीर के किसी न किसी शक्तिमान चक्रों एवं केन्द्रों आदि को निश्चित रूप से प्रभावित कर उन्हें संतुलित करती है। इससे तद्स्थानीय रोगों का शमन एवं तज्जनित गुणों का प्रगटन होता है।

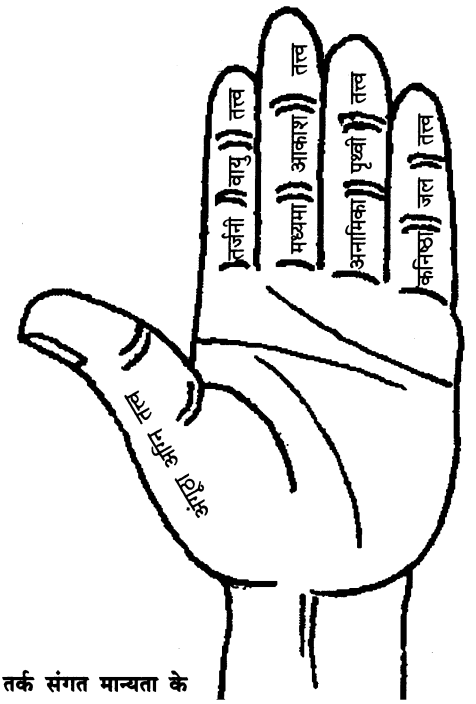
मुद्रा प्रयोग के नियम-उपनियम

यहाँ मुद्रा का तात्पर्य हाथ की विभिन्न आकृतियों से है क्योंकि प्राय: मुद्राएँ हाथों द्वारा ही की जाती है। कहा जाता है जैसे ब्रह्माण्ड पाँच तत्त्वों से निर्मित है वैसे ही प्राणवान शरीर भी पाँच तत्त्वों से बना हुआ है। इन पाँच महाभूत तत्त्वों में अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी और जल की गणना होती है। यौगिक पुरुषों के अनुसार हमारी पाँचों अंगुलियाँ इन तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

स्पष्ट है कि हाथ की अंगुलियों से की जाने वाली मुद्राओं के माध्यम से शरीर के आवश्यक तत्त्वों का प्रभाव घटा-बढ़ा सकते हैं। जिससे शरीर में इन तत्त्वों का संतुलन बना रहता है तथा शरीर के साथ-साथ बुद्धि, मन एवं चेतना के दोषों का परिहार और गुणों का उत्सर्जन होता है।



प्रचलित
मान्यता के
अनुसार



तर्क संगत मान्यता के
अनुसार

अंगुलियों के नाम	तत्त्वों के नाम
अंगूठा (Thumb)	अग्नि तत्त्व (Fire-sun)
तर्जनी (Index)	वायु तत्त्व (Air-wind)
मध्यमा (Middle)	आकाश तत्त्व (Ether-space)
अनामिका (Ring)	पृथ्वी तत्त्व (Earth)
कनिष्ठिका (Little)	जल तत्त्व (Water)

मुद्रा की आवश्यक जानकारी

1. सामान्यतया मनुष्य पाँच तत्त्वों के संतुलन से स्वस्थ रह सकता है। ऋषि-महर्षियों द्वारा निर्दिष्ट एवं अनुभवियों द्वारा उपदर्शित मुद्राएँ बौद्धिक, मानसिक एवं दैहिक संतुलन की अपेक्षा से है अत: इन मुद्राओं का प्रयोग करने से पूर्व उसके प्रति दृढ़ विश्वास एवं अटूट श्रद्धा अवश्य होनी चाहिए।
2. शारीरिक संरचना के अनुसार अंगूठे के अग्रभाग पर दूसरी अंगुली के अग्रभाग को दबाने से, उस अंगुली का जो तत्त्व है वह बढ़ जाता है तथा अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के मूल पर लगाने/दबाने से उस अंगुली का जो तत्त्व है उसमें कमी आ जाती है।
3. मुद्रा करते समय अंगुली और अंगूठे का स्पर्श सहज होना चाहिए। अंगूठे से अंगुली को सहज दबाव देना चाहिए और शेष अंगुलियाँ अमुक-अमुक मुद्रा के नियमानुसार सीधी या एक-दूसरे से सटी रहनी चाहिए। हथेली का भाग मुद्रा नियम के अनुरूप रहना चाहिए। यदि अंगुलियाँ पहली बार में सही रूप से सीधी-टेढ़ी या सटी हुई न रह पायें तो आरामपूर्वक जितना बन सके, मुद्रा को यथारूप बनाने की कोशिश करें। तदनन्तर अभ्यास द्वारा धीरे-धीरे सही मुद्रा भी बन जाती है।
4. मुद्रा प्रयोग दोनों हाथों से करें, क्योंकि दायें हाथ की मुद्रा करने से शरीर के बाएँ भाग पर असर होता है और बाएँ हाथ की मुद्रा करने से शरीर के दायें भाग पर असर होता है। इस तरह शरीर और मन हर तरह से संतुलित रहता है।
5. हर कोई स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, रोगी-निरोगी मुद्राओं का प्रयोग कर सकता है।

6. प्रत्येक व्यक्ति के स्वयं के लिए जो भी मुद्रा उपयोगी हो, उस मुद्रा का प्रयोग नियमत: 48 मिनट तक करना चाहिए। अभ्यास के द्वारा समय मर्यादा बढ़ाई जा सकती है। यदि कोई मुद्रा लंबे समय तक एक साथ न हो सके तो सुबह-शाम 15-15 मिनट करके 30 मिनट तक तो अवश्य करनी चाहिए।
7. भोजन के तुरन्त बाद 30 मिनट तक किसी भी मुद्रा को नहीं करें। केवल गैस या अफरा दूर करने के लिए वायु मुद्रा की जा सकती है।
8. प्राण मुद्रा, अपान मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा और ज्ञान मुद्रा को साधक इच्छानुसार दीर्घ समय तक कर सकते हैं, किन्तु वायु मुद्रा, शून्य मुद्रा, लिंग मुद्रा वगैरह अन्य मुद्राएँ व्याधि दूर न हों तब तक ही करनी चाहिए।
9. कोई अन्य चिकित्सा या औषधि का सेवन कर रहे हों, तो उस समय भी मुद्रा चिकित्सा का प्रयोग कर सकते हैं।
10. मुद्राओं में अपानवायु रोग मुक्ति के लिए श्रेष्ठकारी है। इस मुद्रा को हृदय पर स्पर्शित करते ही किसी भी रोग में तत्काल फायदा होता है इसलिए डाक्टरों/वैद्यों के पास जाने से पूर्व रोगी को यह मुद्रा अवश्य कर लेनी चाहिए। उसे तात्कालिक राहत का अहसास होता है।
11. शरीर, मन और चेतना को स्वस्थ रखने के लिए प्राणवायु एवं अपानवायु को संतुलित रखना अत्यन्त जरूरी है। यह संतुलन प्राण मुद्रा एवं अपानमुद्रा के प्रयोग से ही संभव है। इन मुद्राओं के प्रयोग से नाड़ी शुद्धि और शरीर रोग रहित बनता है इसलिए ये मुद्राएँ निश्चित करनी चाहिए।
12. अनेकों मुद्राएँ चैतसिक, मानसिक, आध्यात्मिक और भावनात्मक विकास के उद्देश्य से की जाती हैं। इन मुद्राओं को निर्धारित दिशा, आसन, मंत्र एवं समयानुसार करने पर अधिक लाभदायी होती हैं।
13. मुद्रा प्रयोग से पंच तत्त्वों में परिवर्तन, विघटन, प्रत्यावर्तन, अभिवर्धन होता रहता है परिणामत: तत्त्वों में सामंजस्य बना रहता है।
14. कुछ मुद्राएँ निश्चित यौगिक आसन में बैठकर की जाती हैं। इनमें हठयोग सम्बन्धी मुद्राएँ एवं पूजोपासना सम्बन्धी मुद्राएँ मुख्य हैं।
    रोग शमन में उपयोगी योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की बहुत सी मुद्राएँ चलते-फिरते, सोते-जागते किसी भी स्थिति में की जा सकती हैं।

अधिकांश मुद्राओं का प्रयोग आवश्यक होने पर 45 से 48 मिनट करना चाहिए। यदि किसी मुद्रा को एक साथ न कर पायें तो 15-15 मिनट या 16-16 मिनट में विभाजित कर तीन बार में पूर्ण कर सकते हैं।

15. मुद्राएँ भिन्न-भिन्न हेतुओं से विभिन्न आसनों में की जाती है। हठयोग की मुद्राएँ बैठकर की जाती हैं किन्तु कुछ मुद्राओं में लेटना भी पड़ता है। हठयोग की मुद्राओं को नियमित रूप में कम से कम एक मिनिट से तीस मिनिट तक कर सकते हैं।

नाट्य परम्परा की मुद्राएँ अधिकांशत: भाव प्रदर्शन के उद्देश्य से प्रयुक्त होती हैं अत: विधि नियम के अनुसार बैठकर या खड़े होकर की जाती है। इनमें समय की कोई निश्चित अवधि नहीं है।

योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की मुद्राएँ अनन्त हैं। इस श्रेणि की मुद्राएँ प्राय: हाथ की पाँच अंगुलियों से ही बनती हैं किन्तु कुछ मुद्राओं में दोनों हाथों के साथ-साथ सम्पूर्ण शरीर का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे ज्ञान मुद्रा, वैराग्य मुद्रा, अभय मुद्रा, ध्यान मुद्रा आदि में समग्र शरीर का उपयोग होता है। साधारण ज्ञान मुद्रा चलते-फिरते, उठते-बैठते अथवा विभिन्न कार्य करते हुए एक हाथ से या दोनों हाथों से भी की जा सकती है किन्तु मुख्य ज्ञान मुद्रा किसी आसन में बैठकर ही की जाती है।

रोग निवारक मुद्राएँ एक साथ दो, तीन, चार भी लगातर की जा सकती है। चाहें तो हर सैकेण्ड के बाद मुद्रा परिवर्तित कर सकते हैं। आवश्यकता होने पर बार-बार बदलते हुए कुछ अधिक समय भी मुद्राएँ कर सकते हैं।

रोग दूर करने वाली साधारण मुद्राओं में किसी मुद्रा को पहले तथा बाद में करने का कोई नियम नहीं है। जिस मुद्रा की आवश्यकता पहले समझें उसे इच्छानुसार कर सकते हैं।

हिन्दु उपासना में गायत्री मुद्राओं का प्रमुख स्थान माना गया है। इन मुद्राओं को त्रिकाल सन्ध्या में करने का प्रावधान है। इन्हें धीरे-धीरे भी कर सकते हैं और शीघ्रता के साथ भी इनका प्रयोग किया जा सकता है।

मुद्रा अभ्यासी साधकों के लिए आवश्यक है कि वे साधना काल के दौरान आत्मा, मन और शरीर से पूरी तरह शान्त और पवित्र हों। ऐसी स्थिति में मुद्राओं का पूर्ण लाभ प्राप्त होता है।

मुद्राएँ करते समय अतिरिक्त अन्य अंगुलियों को सीधा रखना चाहिए। मुद्राएँ उचित प्रकार से करने पर ही अपना प्रभाव दिखाती हैं।

मुद्रा चिकित्सा को अन्य चिकित्सा प्रणालियों जैसे ऐलोपैथी या होम्योपैथी के साथ भी किया जा सकता है। इससे अन्य चिकित्सा प्रणालियों में किसी भी प्रकार से बाधा नहीं पहुँचती वरन् लाभ ही होता है।

प्राय: मुद्राओं का प्रभाव अतिशीघ्र होता है परन्तु पुराने रोगों के निवारण हेतु मुद्राएँ लम्बे समय तक करनी चाहिए।

किसी भी क्रिया को करने से पूर्व उसके लाभ-हानि, विधि-अविधि के विषय में सम्यक जानकारी हो तो उसका प्रयोग शीघ्र परिणामी होता है। मुद्रा साधना यद्यपि एक शारीरिक क्रिया है परन्तु इसका प्रभाव साधक मनुष्य की सूक्ष्म तन्त्र प्रणालियों पर भी देखा जाता है। यही तन्त्र मनुष्य के स्वभाव, आचरण एवं भावजगत को संतुलित रखते हैं। इस अध्याय के माध्यम से साधक को मुद्रा साधना के उन्हीं पक्षों से परिचित करवाते हुए मुद्रा प्रयोग में अधिक जागरूक एवं सक्रिय बनाने का प्रयास किया है। इससे साधक स्वयं अपने रोगों के लक्षण जानकर किस चक्र या ग्रन्थि को नियंत्रित करना है यह जान सकेगा एवं तत्सम्बन्धी मुद्राओं सम्यक विधिपूर्वक उपयोग करके उनके सुपरिणाम प्राप्त कर सकेगा।

●

अध्याय-2

भरतमुनि रचित नाट्य शास्त्र की मुद्राओं का स्वरूप, प्रयोजन एवं उनके लाभ

विविध कलाओं में नाट्यकला का अप्रतिम स्थान है। आदि काल से इस कला ने प्राचीनतम धरोहर के रूप में अपना स्थान पाया है। नाट्यकला के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों के अन्तर्गत विकसित हुई है। शरीर द्वारा की जाने वाली क्रियाएँ मुख्यतया तीन प्रकार की मालूम होती है- 1. खड़े रहकर अथवा चलते-चलते पैरों से हो सकने वाली क्रियाएँ 2. बैठकर अथवा लेटकर हो सकने वाली क्रियाएँ और 3. हाथों से की जाने वाली क्रियाएँ।

नाट्य अभिनय में भावों को प्रदर्शित करने हेतु हस्त क्रियाओं (मुद्राओं) का विशेष स्थान है। अभिनय की दृष्टि से ऐसा कोई नाट्यार्थ नहीं है जिसे रूप देने में हस्ताभिनय का प्रयोग न होता हो। हस्ताभिनय के माध्यम से मानव हृदय के सूक्ष्मतम भावों की अभिव्यक्ति भी सहज रूप से हो सकती है। हाथ की प्रत्येक मुद्रा के मूल में अन्तर्भावों की प्रेरणा अवश्य रहती है। नाट्य में वाचिक एवं कायिक अभिनय के साथ-साथ हस्त मुद्राओं के द्वारा रहस्यमय अर्थों को भी अभिव्यक्त किया जाता है।

मुद्रा का यथार्थ एवं मूलस्वरूप नाट्यकला में ही उपलब्ध होता है। इस सम्बन्ध में कई तरह के शिक्षण आज भी दिये जाते हैं। भारतीय विद्वानों ने इस कला को अक्षुण्ण बनाये रखने एवं इसके महत्त्व को दिग्दर्शित करने के प्रयोजन से अनेक नाट्य शास्त्र रचे हैं।

ऐतिहासिक प्रमाणों से अवगत होता है कि नाट्य शास्त्र के आदिकर्त्ता भरतमुनि ईसा पूर्व प्रथम/द्वितीय शताब्दी के थे। उनके द्वारा विरचित यह ग्रन्थ 'नाट्य शास्त्र' के नाम से प्रसिद्ध है। नाट्य मुद्राओं की पुरातनता को चिरस्थायी

बनाये रखने की दृष्टि से यहाँ सर्वप्रथम भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में वर्णित मुद्राओं का विवेचन किया जा रहा है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भरत नाट्य की मुद्राओं का उल्लेख 'द मिरर ऑफ गेश्चर' में भी प्राप्त होता है, किन्तु उसमें इन मुद्राओं का आशय समान होने पर भी स्वरूपत: किंचित भिन्न हैं।

इस युग के प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ द्वारा उपदिष्ट नाट्यकला की गरिमा को दिगन्त व्यापी बनाने एवं आदिम युग की इस धरोहर को स्थायित्व प्रदान करने हेतु प्रस्तुत अध्याय में उपरोक्त दोनों प्रकार की मुद्राओं का उल्लेख करेंगे। इस तरह भरत नाट्य सम्बन्धी हस्त मुद्राओं की दो विधियाँ कही जाएँगी। इनमें प्रथम विधि 'द मिरर ऑफ गेश्चर' पर आधारित है और द्वितीय विधि भरत मुनि रचित नाट्य शास्त्र के अनुसार समझिएगा।

भरत के नाट्य शास्त्र में हस्त मुद्राओं के तीन प्रकार पाये जाते हैं–

1. असंयुक्त हस्त मुद्रा 2. संयुक्त हस्त मुद्रा 3. नृत्तहस्त मुद्रा।

1. असंयुक्त हस्त मुद्राएँ

नाट्य में एक हाथ के अभिनय से जिन भावों को प्रदर्शित किया जाता है उसे असंयुक्त हस्त मुद्रा कहते हैं। भरतमुनि ने असंयुक्त हस्त मुद्रा चौबीस प्रकार की बतलाई है[1]–

1. पताका मुद्रा 2. त्रिपताका मुद्रा 3. कर्तरीमुख मुद्रा 4. अर्धचन्द्र मुद्रा 5. अराल मुद्रा 6. शुक्रतुण्ड मुद्रा 7. मुष्टि मुद्रा 8. शिखर मुद्रा 9. कपित्थ मुद्रा 10. कटका मुख मुद्रा 11. सूच्यास्य (सूचीमुख) मुद्रा 12. पद्मकोश मुद्रा 13. सर्पशीर्ष मुद्रा 14. मृगशीर्ष मुद्रा 15. काङ्गूल मुद्रा 16. अलपद्म मुद्रा 17. चतुर मुद्रा 18. भ्रमर मुद्रा 19. हंसास्य (हंसमुख) मुद्रा 20. हंसपक्ष मुद्रा 21. सन्दंश मुद्रा 22. मुकुल मुद्रा 23. ऊर्णनाम मुद्रा 24. ताम्रचूड़ मुद्रा।

संयुक्तहस्त मुद्राएँ

नाट्य में दोनों हाथों को परस्पर मिलाकर जो भावाभिनय प्रस्तुत किया जाता है उन्हें संयुक्त मुद्रा कहते हैं। भरतमुनि ने संयुक्त हस्त मुद्रा तेरह प्रकार की निर्दिष्ट की है [2]–

1. अंजलि मुद्रा 2. कपोत मुद्रा 3. कर्कट मुद्रा 4. स्वस्तिक मुद्रा 5. खटका वर्धमान या कटका वर्धमान मुद्रा 6. उत्संग मुद्रा 7. निषध मुद्रा 8.

डोल मुद्रा 9. पुष्पपुट मुद्रा 10. मकर मुद्रा 11. गजदन्त मुद्रा 12. अवहित्थ मुद्रा 13. वर्धमान मुद्रा।

नृत्तहस्त मुद्राएँ

नाट्य में अंग-प्रत्यंग का सौन्दर्य अभिव्यक्त करने में नृत्तहस्तों की विशेष भूमिका होती है, क्योंकि नृत्तहस्तों द्वारा अभिनय करने से नृत्य सौदर्न्य में अभिवृद्धि होती है इसलिए नृत्यहस्त मुद्राओं को नृत्य का अलंकार माना गया है। नाट्य शास्त्र में नृत्तहस्त मुद्राएँ तीस प्रकार की वर्णित है [3]–

1. चतुरस्र मुद्रा 2. उद्वृत्त मुद्रा 3. तलमुख मुद्रा 4. स्वस्तिक मुद्रा 5. विप्रकीर्ण मुद्रा 6. अराल मुद्रा 7. खटकामुख मुद्रा 8. आविद्धवक्र मुद्रा 9. सूचीमुख मुद्रा 10 रेचित मुद्रा 11. अर्धरेचित् मुद्रा 12. उत्तानवंचित मुद्रा 13. पल्लव मुद्रा 14. नितम्ब मुद्रा 15. केशबन्ध मुद्रा 16. लताहस्त मुद्रा 17. करिहस्त मुद्रा 18. पक्षवंचित मुद्रा 19. पक्षप्रद्योतक मुद्रा 20. गरूड़पक्ष मुद्रा 21. दण्डपक्ष मुद्रा 22. उर्ध्वमण्डलिन् मुद्रा 23. पार्श्वमण्डलिन् 24. उरोमण्डली मुद्रा 25. मुष्टिस्वस्तिक मुद्रा 26. नलिनी पद्मकोश मुद्रा 27. अलपल्लव मुद्रा 28. उल्वण मुद्रा 29. ललित मुद्रा 30. वलित मुद्रा

इस तरह नाट्य शास्त्र में 24 असंयुक्त हस्त मुद्राएँ, 13 संयुक्त हस्त मुद्राएँ और 30 नृत्तहस्त मुद्राएँ ऐसे कुल 67 हस्तमुद्राओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

नाट्य शास्त्र से सम्बन्धित उपरोक्त मुद्राओं का सामान्य परिचय निम्नलिखित है–

असंयुक्त हस्त की 24 मुद्राएँ

1. पताका मुद्रा

पताका शब्द के कई अर्थ हैं जैसे कि ध्वजा, झंडा, लकड़ी आदि। डंडे के एक सिरे पर पहनाया हुआ तिकोना या चौकोना कपड़ा, जिस पर किसी राजा, संस्था या देश का खास चिह्न होता है आदि।

साधारणतया पताका मंगल या शोभा की प्रतीक मानी गई है। युद्धयात्रा, मंगल यात्रा आदि में भी इसका प्रयोग होता है। मंदिरों के शिखर पर भी पताकाएँ फहराई जाती है जो कि अधर्म पर धर्म के विजय की प्रतीक हैं।[4]

नाट्यकला में यह मुद्रा किसी पात्र के चिंतागत भाव, विषय का समर्थन या पोषण आगंतुक भाव से हो सके, उस सन्दर्भ में की जाती है।

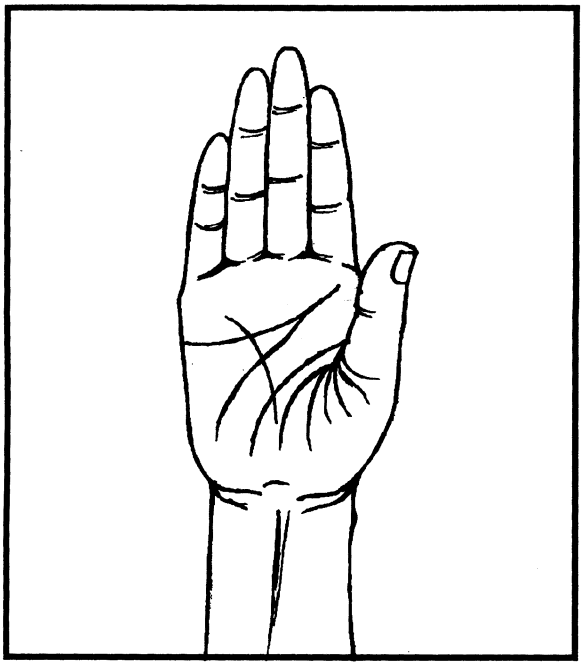
एक हाथ से की जाने वाली यह मुद्रा अधिकतर सीधे हाथ से दिखाई जाती है। यह ध्वजा किसी को पराजित करने की, विघ्न निवारण की अथवा विवाद समाप्ति की सूचक है तथा इस मुद्रा का आकार अभय मुद्रा के समान है।

प्रथम विधि

दायें हाथ की अंगुलियों और अंगूठे को ऊपर की ओर उठाते हुए फैलायें, तत्पश्चात अंगुलियों को समान रूप से स्थिर रखते हुए किंचित झुकायें तथा हाथ को ढ़ीला एवं हथेली को सामने की ओर रखने से पताका मुद्रा बनती है।

लाभ

नाट्यकला में अभिनय दर्शाने हेतु जिन मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है वे व्यक्ति के मनोजगत एवं सूक्ष्म शरीर को स्वाभाविक रूप से प्रभावित करती हैं। हमारे जीवन विकास में उनके सुपरिणाम क्या हो सकते हैं और भावनात्मक स्तर को ऊँचा उठाने में उनका योगदान किस तरह है? अध्याय-1 में इस सम्बन्धी सम्यक निरूपण किया गया है। तदनुसार प्रत्येक नाट्य मुद्रा से जो चक्र या केन्द्र आदि प्रभावित होते हैं उनके सुप्रभाव समझ लेने चाहिए। यहाँ प्रभावित होने वाले चक्र आदि का नामोल्लेख मात्र किया जायेगा।



पताका मुद्रा-1

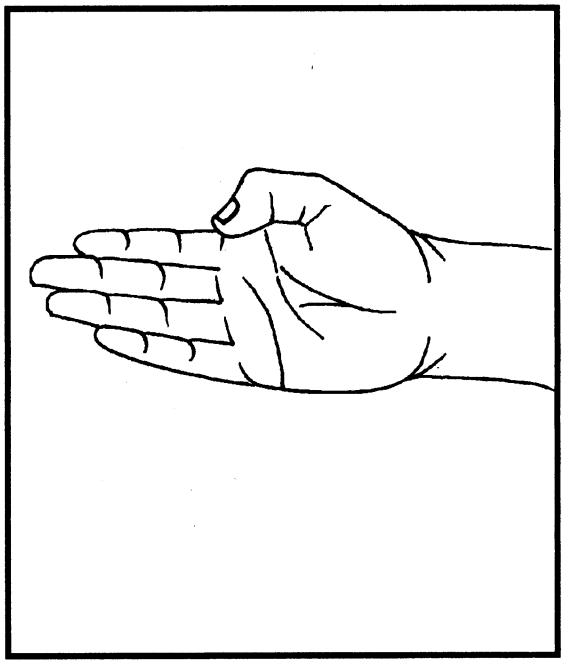
यह मुद्रा छाती के स्तर पर धारण की जाती है।[5]

चक्र– मूलाधार एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–**

प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरुदण्ड, गुर्दे, पैर, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाडीतंत्र एवं आँतें।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में हाथ की सभी अंगुलियाँ समान रूप से फैली हुई हो और अंगूठा (तर्जनी के मूल में) कुंचित अर्थात टेढ़ा हो, वह पताका हस्त मुद्रा है।[6]



पताका मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरुदण्ड, गुर्दे, पाँव, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाडी तंत्र आदि।

2. त्रिपताका मुद्रा

त्रिपताका का दूसरा नाम त्रिपिटक, त्रिपिताका भी है। इस मुद्रा में तीन अंगुलियाँ ऊपर की ओर फैली हुई रहती है इसलिए इसे त्रिपताका मुद्रा कहा गया है।

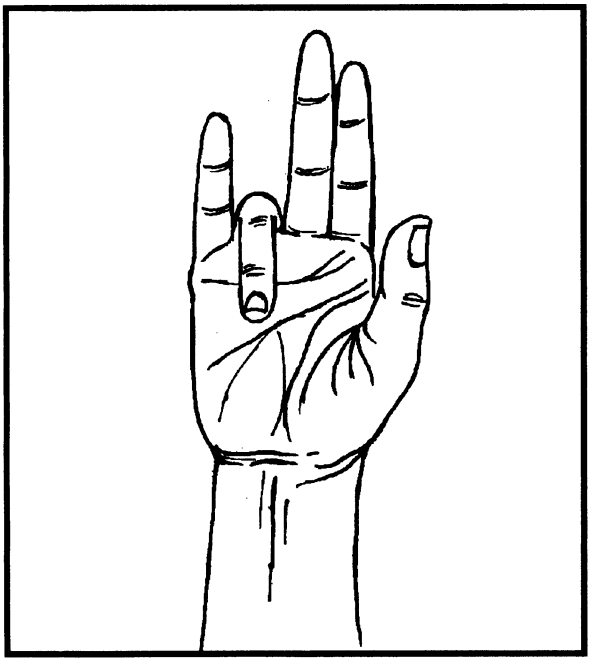
इस मुद्रा में फैली हुई तीन अंगुलियाँ ध्वजा के तीन भागों की सूचक है।

यह हस्त मुद्रा नाटक आदि में कलाकारों के द्वारा धारण की जाती है। एक हाथ से प्रयुक्त यह मुद्रा ताज, वज्र, प्रकाश आदि की भी सूचक है।

प्रथम विधि

दायें हाथ की कनिष्ठिका, मध्यमा, तर्जनी और अंगूठा को ऊपर की ओर उठाते हुए फैलायें, अनामिका अंगुली को हथेली की तरफ मोड़ें तथा हथेली को सामने की ओर रखने से त्रिपताका मुद्रा बनती है।[7]

यह मुद्रा सामान्यतया छाती के स्तर पर धारण की जाती है, किन्तु शिव-नटराज के द्वारा कटिसम स्तर पर धारण की जाती है।



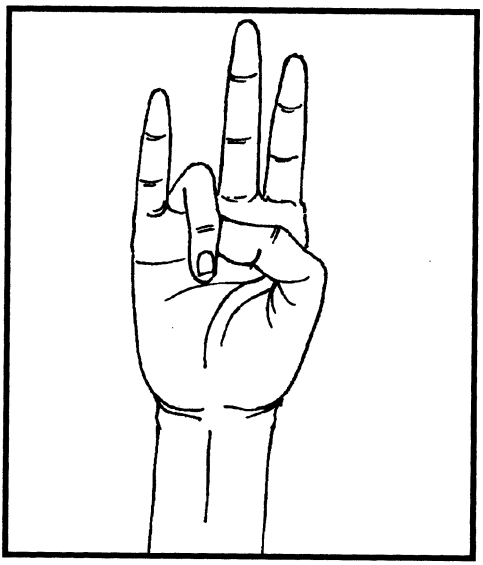
त्रिपताका मुद्रा-1

लाभ

चक्र– आज्ञा, विशुद्धि एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** आकाश, वायु एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष, थायरॉइड, पेराथायरॉइड, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन, विशुद्धि एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** निचला मस्तिष्क, स्नायुतंत्र, नाक, कान, गला, मुँह, स्वर तंत्र।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में अनामिका झुकी हुई, अंगूठा तर्जनी के मूल में कुंचित और शेष अंगुलियाँ ऊपर की ओर फैली हुई हो वह त्रिपताका मुद्रा है।[8]



त्रिपताका मुद्रा-2

लाभ

चक्र– आज्ञा, विशुद्धि एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** आकाश, वायु एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष, थायरॉइड, पेराथायरॉइड, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन, विशुद्धि एवं तैजस केन्द्र।

3. कर्तरीमुख मुद्रा

कर्तरी के सामान्य अर्थ हैं कैंची, कतरनी, छोटी तलवार, फलित ज्योतिष का एक योग जिसमें कन्या की मृत्यु और अपना बंधन होता है।[9] यहाँ कर्तरी का तात्पर्य कैंची से है। तदनुसार कर्तरीमुख अर्थात कैंची का मुख।

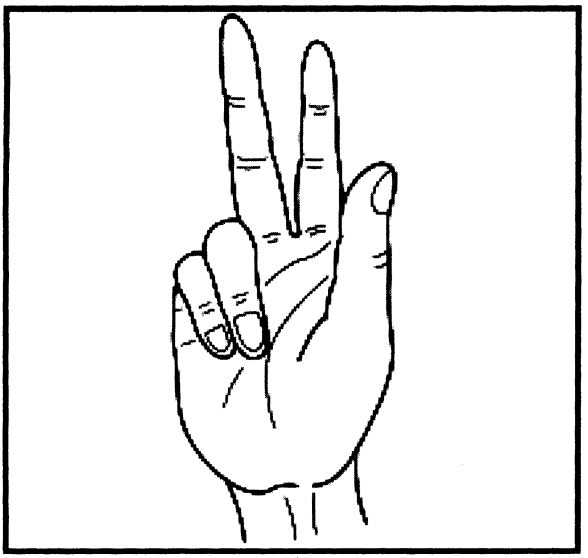
प्रयोग करते समय कैंची का मुख खुला रहता है तथा उसका एक भाग ऊपर और एक भाग नीचे रहता है। दर्शाये चित्र में हाथ की आकृति उसी तरह की है अत: इसे कर्तरीमुख मुद्रा कहते हैं।

यह मुद्रा विरोध, असहमति, मृत्यु आदि की सूचक है।

प्रथम विधि

इस मुद्रा को बनाने के लिए सर्वप्रथम तर्जनी, मध्यमा और अंगूठा को ऊपर की ओर उठायें, तत्पश्चात तर्जनी और मध्यमा को किंचित अलग-अलग करें, तदनन्तर अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली की तरफ मोड़ें तथा हथेली को बाहर की ओर अभिमुख करने से कर्तरीमुख मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा छाती के स्तर पर धारण की जाती है।[10]



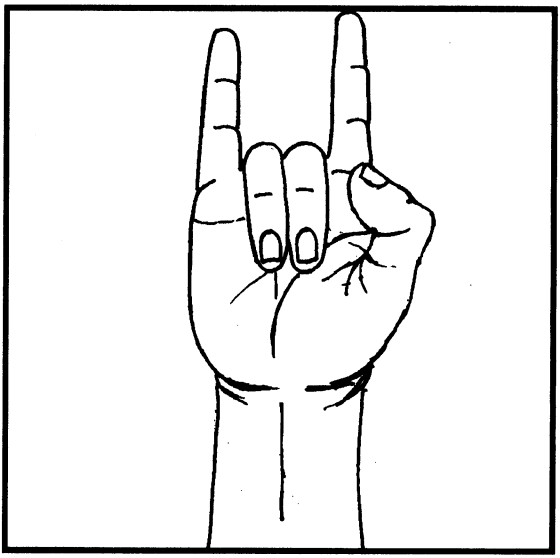
कर्तरीमुख मुद्रा-1

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग, नाक, कान, गला, मुँह, स्वर तंत्र।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में अनामिका-मध्यमा झुकी हुई, अंगूठा तर्जनी के मूल में कुंचित और शेष अंगुलियाँ ऊर्ध्व में प्रसरित हो वह कर्तरी मुख मुद्रा है।[11]



कर्तरीमुख मुद्रा-2

लाभ

चक्र– आज्ञा एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष एवं प्रजनन ग्रंथि **केन्द्र–** दर्शन एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग।

4. अर्धचन्द्र मुद्रा

अर्धचन्द्र अर्थात आधा चाँद, अष्टमी का चन्द्रमाँ। इस मुद्रा के द्वारा अर्धचन्द्र की आकृति दर्शायी जाती है इसलिए इसका नाम अर्धचन्द्र मुद्रा है।

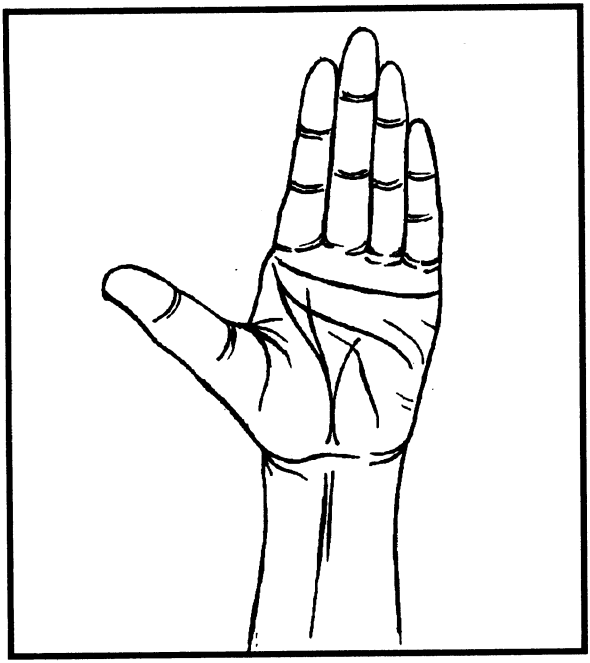
यहाँ पर अर्धचन्द्र से चन्द्रमा की घटती-बढ़ती कलाएँ भी अभिप्रेत हो सकती है। हिन्दी शब्दसागर के अनुसार यह मुद्रा किसी को बाहर निकालने के लिए गले में हाथ डालने के रूप में भी प्रयुक्त होती है।[12]

यह मुद्रा नाटकों आदि में भाव दर्शाने के उद्देश्य से की जाती है। यह एक हाथ से प्रयुक्त मुद्रा चन्द्रमा, प्रार्थना या चित्र को समर्पित करने का भाव दर्शाती है।

प्रथम विधि

दायीं हथेली को सामने की ओर करते हुए अंगुलियों को ऊपर की ओर उठायें, सभी अंगुलियों को समभाग में रखें तथा अंगूठे को अंगुलियों से दूर रखने पर अर्धचन्द्र मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा छाती के स्तर पर धारण की जाती है।[13]



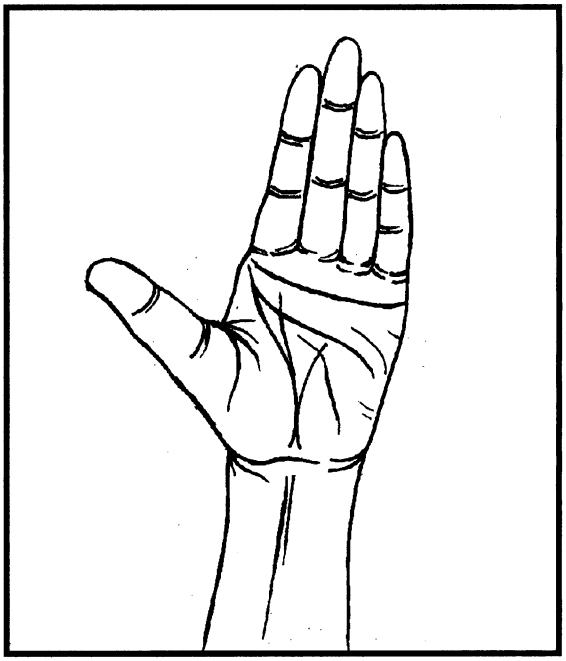
अर्धचन्द्र मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मणिपुर चक्र **तत्त्व–** अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, आँतें।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में हाथ की सभी अंगुलियाँ अंगूठे के साथ धनुषवत झुकाकर फैला दी जाये, वह अर्धचन्द्र मुद्रा है।[14]



अर्धचन्द्र मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं सहस्त्रार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र मस्तिष्क एवं आंख।

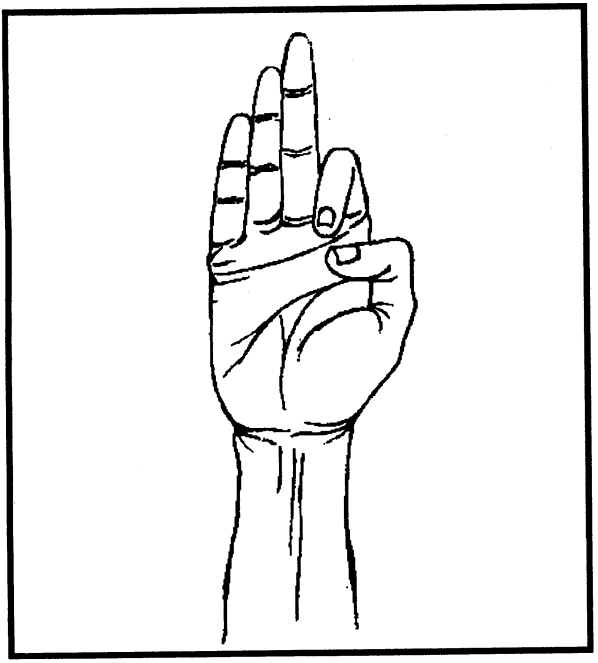
5. अराल मुद्रा (प्रथम)

अराल शब्द के अनेक अर्थ हैं। यहाँ संभावित अर्थ टेढ़ापन होना चाहिए।[15] इस मुद्रा में अंगूठा और तर्जनी अंगुली को बलपूर्वक टेढ़ा किया जाता है अत: इसका नाम अराल मुद्रा है।

यह नाटकीय मुद्रा नृतकों एवं कलाकारों द्वारा सम्पन्न की जाती है। यह मुद्रा विष ग्रहण को दर्शाती है और पताका मुद्रा के समान है।

प्रथम विधि

दायीं अथवा बायीं हथेली को शरीर से कुछ दूर रखते हुए सामने की ओर अभिमुख करें, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को ऊपर की ओर सीधी रखें तथा अंगूठा और तर्जनी को हथेली की तरफ शक्ति पूर्वक मोड़ने से अराल मुद्रा बनती है।[16]



अराल मुद्रा-1

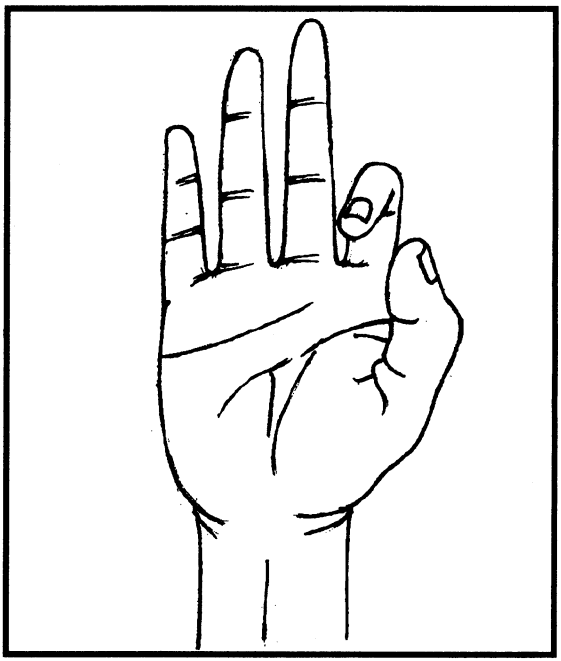
लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व

ग्रन्थि– प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** प्रजनन तंत्र, मल-मूत्र अंग, गुर्दे, स्नायुतंत्र, निचला मस्तिष्क।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में तर्जनी धनुष की भाँति झुकी हुई, अंगूठा कुंचित और शेष अंगुलियाँ पृथक् एवं ऊर्ध्व दिशा में वलित हो वह अराल मुद्रा है।[17]



अराल मुद्रा-2

लाभ

चक्र– आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, आंख।

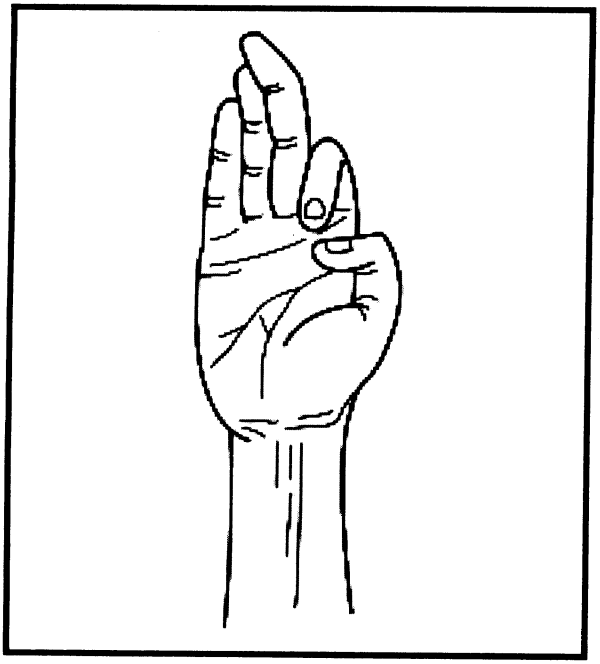
5. अराल मुद्रा (द्वितीय)

अराल मुद्रा का एक अन्य प्रकार भी है जिसका अन्तर्भाव नृत्तहस्त मुद्राओं में होता है। यहाँ अराल शब्द का अभिप्राय उन्मत्त हाथी या कुटिलता से होना चाहिए।

नाटक आदि में किसी की कुटिलता दर्शाने के लिए अथवा उन्मत्त हाथी एवं व्यक्ति की उन्मत्तता दर्शाने के लिए यह मुद्रा की जाती होगी।

प्रथम विधि

इस मुद्रा की रचना पूर्व मुद्रा के समान ही की जाती है। विशेष इतना है कि मध्यमा अंगुली थोड़ी सी हथेली की तरफ झुकी हुई रहती है।[18]



अराल मुद्रा (द्वितीय)

6. शुकतुण्ड मुद्रा

शुकतुण्ड का शाब्दिक अर्थ है तोतें की चोंच।

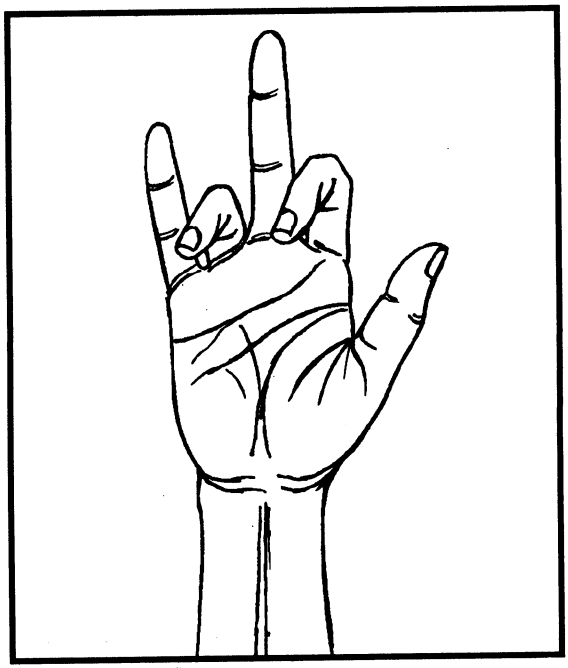
यह हस्ताकृति शुकतुण्ड के समान प्रतिभासित होती है इसलिए इसे शुकतुण्ड कहते हैं।

यह एक नाटकीय मुद्रा तो है ही, साथ ही तांत्रिक पूजन के समय और हिन्दू परम्परा में देवी-देवताओं के सम्बन्ध में भी धारण की जाती है।

एक हाथ से की जाने वाली यह मुद्रा निर्दयता, क्रूरता या बाण द्वारा शिकार करने की सूचक है।

प्रथम विधि

दायीं अथवा बायीं हथेली को बाहर की ओर अभिमुख करें, फिर अंगूठा, मध्यमा और कनिष्ठिका को ऊपर की ओर सीधा रखें तथा तर्जनी और अनामिका को हथेली की तरफ मोड़ने से शुकतुण्ड मुद्रा बनती है।[19]



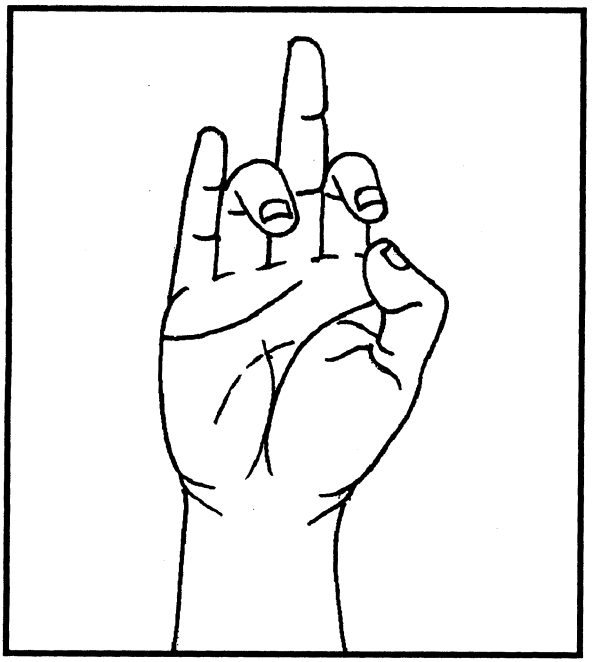
शुकतुण्ड मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति केन्द्र, ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरुदण्ड, गुर्दे, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में तर्जनी और अनामिका किंचित झुकी हुई, अंगूठा कुंचित तथा शेष अंगुलियाँ ऊर्ध्वाभिमुख हो वह शुकतुण्ड हस्त मुद्रा है।[20]



शुकतुण्ड मुद्रा-2

लाभ

चक्र– विशुद्धि चक्र एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** वायु एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाक, कान, गला, मुँह, स्वर तंत्र, मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग।

7. मुष्टि मुद्रा

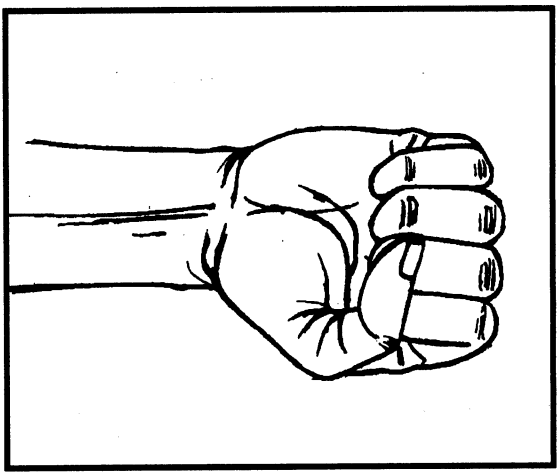
मुष्टि का सीधा सा अर्थ है मुट्ठी अथवा घूंसा। इस मुद्रा में हाथ को मुट्ठी रूप में बनाया जाता है इसलिए इसका नाम मुष्टि मुद्रा है।

इस मुद्रा का प्रयोग किसी को डराने, प्रहार का भय दिखाने अथवा शक्ति, ताकत, एकता आदि के भाव अभिव्यक्त करने के ध्येय से किया जाता है। यह नाटकीय मुद्रा योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की यौगिक परम्परा में भी श्रद्धालुओं द्वारा धारण की जाती है। इसे शक्ति, सामर्थ्य एवं स्थिरता की सूचक माना गया है। यह भाला आदि पकड़ने में प्रयुक्त होती है।

प्रथम विधि

बायीं हथेली को शरीर के मध्यभाग की तरफ लायें, फिर अंगुलियों को मुट्ठी रूप में बांधकर, अंगूठे को अंगुलियों के प्रथम पोर पर स्थिर करने से मुष्टि मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा कटक मुद्रा के समान है।[21]



मुष्टि मुद्रा-1

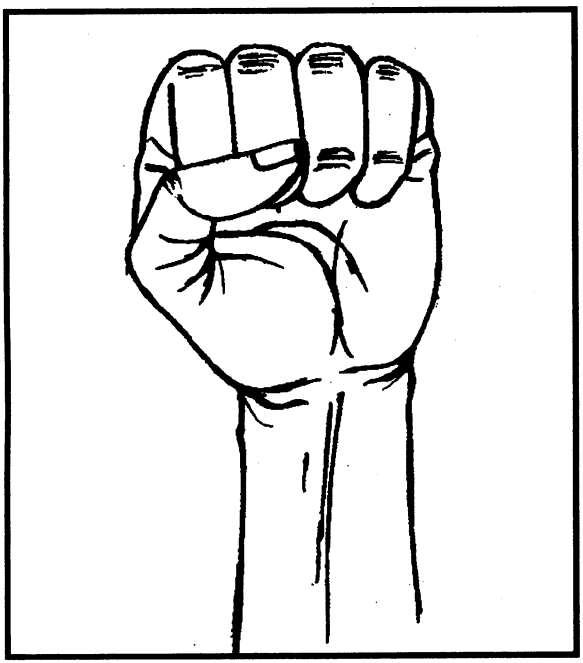
लाभ

चक्र– मणिपुर, मूलाधार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि, पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–**

तैजस, शक्ति एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, प्रजनन तंत्र, यकृत, तिल्ली, गुर्दे, आँतें, निचला मस्तिष्क, आँखें।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार भी जिस मुद्रा में हाथ की अंगुलियाँ हथेली के मध्य तक झुकी हुई हो और उनके ऊपर अंगूठा हो तो वह मुष्टि मुद्रा है।[22]



मुष्टि मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मूलाधार, मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, प्रजनन एवं पीयूष ग्रंथि **केन्द्र–** शक्ति, तैजस एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ी तंत्र, आँतें, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

8. शिखर मुद्रा

शिखर शब्द से अनेक अर्थों का बोध होता है। सबसे ऊपर का भाग, चोटी, पर्वत श्रृंग, मंदिर का कलश आदि को शिखर नाम से भी कहा जाता है।[23]

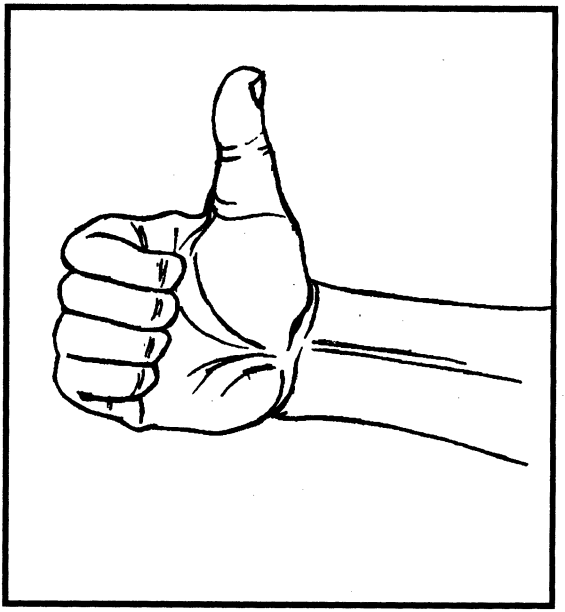
इस मुद्रा में अंगूठे को ऊपर की ओर करके उसे शिखर की प्रतिकृति के रूप में दर्शाया जाता है अत: इसे शिखर मुद्रा कहते हैं।

सामान्य व्यवहार में यह मुद्रा किसी को ठगने, अंगूठा दिखाने एवं परीक्षा काल में शुभकामनाएँ देने के लिए प्रयोग की जाती है।

यह नाट्य मुद्रा हिन्दु और बौद्ध परम्परा में देवताओं के द्वारा अथवा उनके लिए धारण की जाती है। यह एक हाथ से की जाने वाली मुद्रा शांत चित्तता और स्थिरता की सूचक है।

प्रथम विधि

बायीं हथेली को शरीर के मध्य भाग की ओर लायें, तदनन्तर अंगुलियों को मुट्ठी रूप में बांधकर, अंगूठे को ऊपर की ओर सीधा रखने से शिखर मुद्रा बनती है।[24]



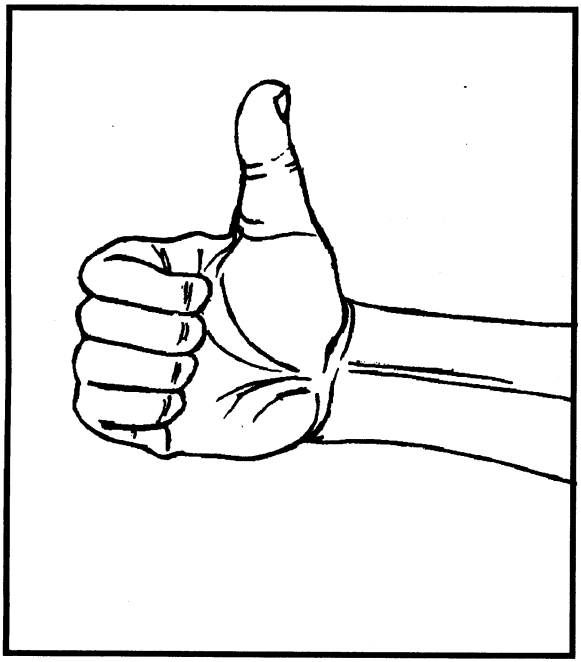
शिखर मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस केन्द्र एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, आँतें, मेरुदण्ड, गुर्दे, पैर।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार भी जिस मुद्रा में अंगुलियाँ मुट्ठी रूप में और अंगूठा ऊर्ध्वदिशा में प्रसरित हो वह शिखर मुद्रा है।[25]



शिखर मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरुदण्ड, गुर्दे, पैर, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत तिल्ली, आँतें।

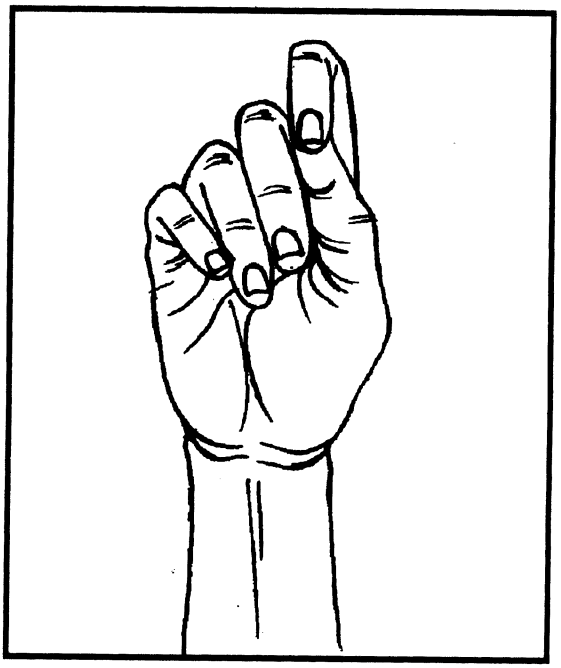
9. कपित्थ मुद्रा

कैथे का पेड़, कैथे का फल कपित्थ कहलाता है। इस मुद्रा के द्वारा कपित्थ पेड़ जैसी आकृति दिखायी जाती है अत: इसे कपित्थ मुद्रा कहा गया है।

यह एक हाथ से की जाने वाली नाट्य मुद्रा है। इस मुद्रा चित्र को ध्यान से देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि गाय को दोहते समय एवं धूप आदि खेने के समय भी हाथ की मुद्रा इसी भाँति बनती है इसलिए यह गाय दोहने तथा धूप (अगरबत्ती) आदि चढ़ाने की सूचक है।

प्रथम विधि

दायीं हथेली को शरीर के मध्यभाग की तरफ लायें। फिर अंगुलियों को मुट्ठी के रूप में बांधकर अंगूठे को तर्जनी अंगुली के नीचे के पोर पर स्थित करें तथा तर्जनी अंगुली को अंगूठे के अग्रभाग के ऊपर मोड़कर रखने से कपित्थ मुद्रा बनती है।[26]



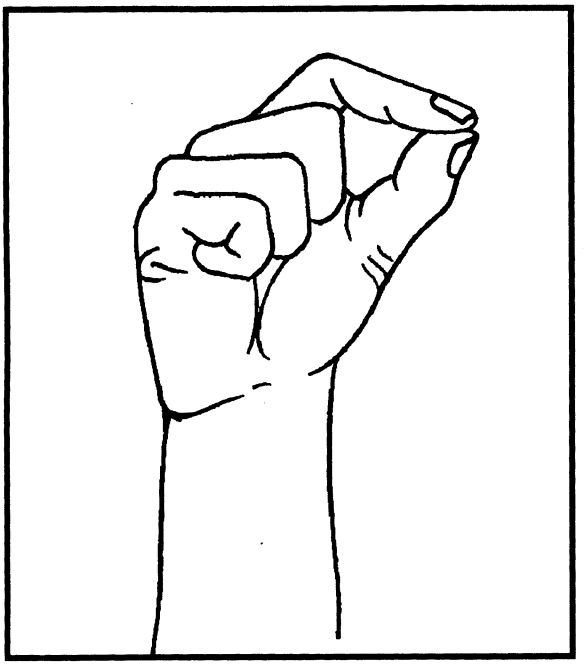
कपित्थ मुद्रा-1

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में तर्जनी और अंगूठे के अग्रभाग परस्पर में मिले हुए तथा शेष अंगुलियाँ मुट्ठी रूप में झुकी हुई हो वह कपित्थ मुद्रा है।[27]



कपित्थ मुद्रा-2

चक्र– मूलाधार, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, पीयूष एवं पिनियल ग्रंथि **केन्द्र–** शक्ति, दर्शन, एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** गुर्दा, मेरूदण्ड, पाँव, मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, आंखें।

10. कटकामुख / खटका मुख मुद्रा

कटक शब्द के निम्न अर्थ प्राप्त होते हैं– सेना, दल, राजशिविर, चूड़ा, पर्वत का मध्यभाग आदि।[28]

अभिप्रायत: चूड़ा आदि का मुख अथवा सैन्य आदि के आगे का भाग कटकमुख कहा जा सकता है।

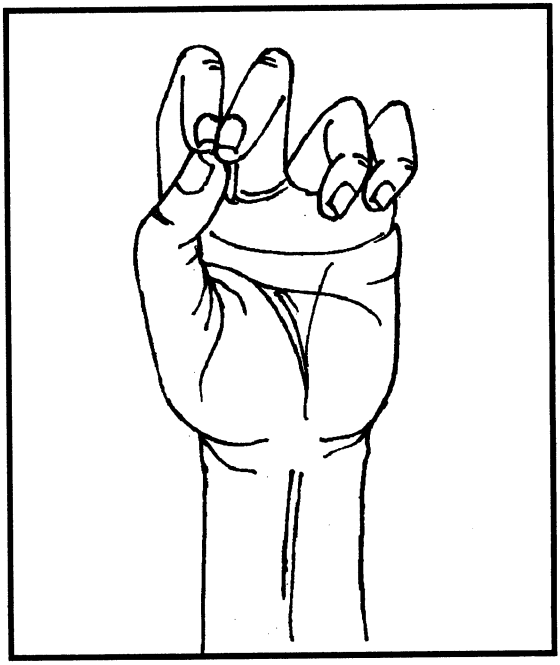
हिन्दी शब्दसागर के अनुसार नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा, तीर चलाने का आसन अथवा बाण चलाने की मुद्रा विशेष को खटकामुख मुद्रा कहते हैं।[29]

इस मुद्रा में बाण चढ़ाने की आकृति दिखती है अत: खटकामुख नाम भी सार्थक है।

दर्शाये चित्र के अनुसार यह मुद्रा पुष्प आदि पकड़ने के लिए भी उपयोगी है।

प्रथम विधि

दायीं हथेली को कपित्थ मुद्रा की भाँति शरीर के मध्यभाग की तरफ लायें,



कटकामुख मुद्रा-1

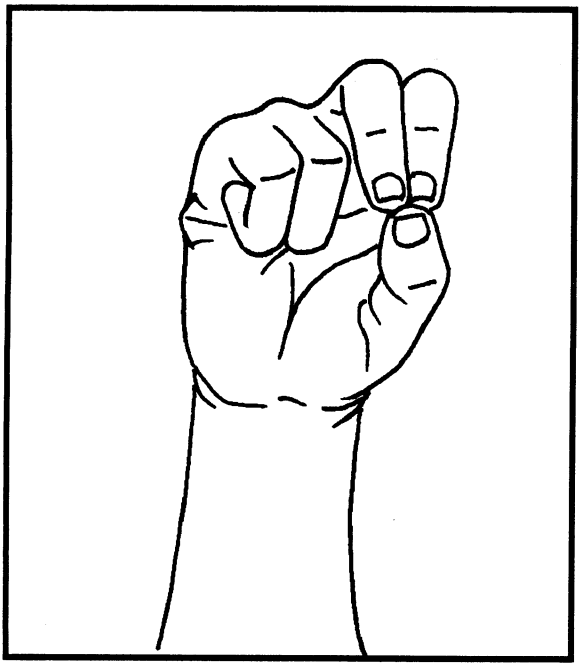
तत्पश्चात तर्जनी और मध्यमा को किंचित झुकाते हुए इन दोनों के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से संस्पर्शित करें तथा अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली की तरफ मोड़ देने से कटकामुख मुद्रा बनती है।[30]

लाभ

चक्र– अनाहत एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस, थायरॉइड, पेराथायरॉइड **केन्द्र–** आनंद एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाक, कान, गला, मुँह, स्वर तंत्र, हृदय, फेफड़े, भुजाएँ, रक्त संचरण प्रणाली।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार भी जिस मुद्रा में तर्जनी और मध्यमा के अग्रभाग अंगुष्ठ के अग्रभाग से मिले हुए तथा अनामिका और कनिष्ठिका हथेली के भीतर झुकी हुई हो, वह कटकामुख मुद्रा है।[31]



कटकामुख मुद्रा-2

लाभ

चक्र– आज्ञा, सहस्त्रार एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष, पिनियल, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रंथि **केन्द्र–** दर्शन, ज्योति एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, स्नायुतंत्र, आंख, नाक, कान, गला, मुख, स्वर तंत्र।

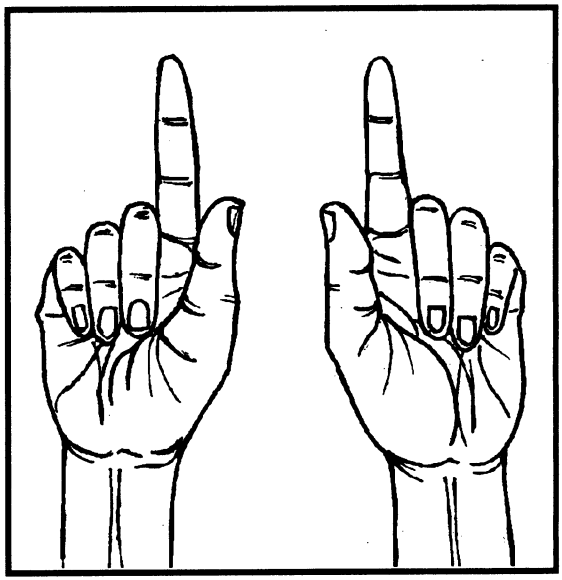
11. सूच्यास्य (सूचीमुख) मुद्रा

इस मुद्रा नाम के अनुसार सुई का मुख, सूचीमुख कहलाता है। हिन्दी शब्द कोश के अनुसार चूहे का मुँह सुई की तरह पतला और नुकीला होता है उसे सूची मुख वाला कहते हैं।[32]

मुद्रा स्वरूप के अनुसार यह मुद्रा लंबे तथा पतले मुख वाले प्राणी अथवा वस्तु की सूचक होनी चाहिए। किसी को अपने समीप बुलाने के लिए अथवा किसी की तरफ इशारा करने के लिए भी इस मुद्रा का उपयोग होता है। इस मुद्रा में तर्जनी अंगुली की गति होती है जो आमन्त्रित करने का संकेत करती है।

यह मुद्रा किसी परम प्रिय व्यक्ति से मिलने की उत्कंठा को भी अभिव्यक्त करती है। नाट्य में उपरोक्त भावों को दर्शाने के उद्देश्य से यह मुद्रा की जाती हो।

यह असंयुक्त मुद्रा, संयुक्त मुद्रा के रूप में भी की जा सकती है।



सूच्यास्य मुद्रा-1

प्रथम विधि

दायीं अथवा बायीं हथेली को, प्रकारान्तर से दोनों हथेलियों को सामने की ओर अभिमुख करें, तर्जनी और अंगूठे को ऊपर की ओर सीधा रखें तथा मध्यमा, अनामिका

और कनिष्ठिका को हथेली की तरफ मोड़ने से सूचीमुख मुद्रा बनती है।

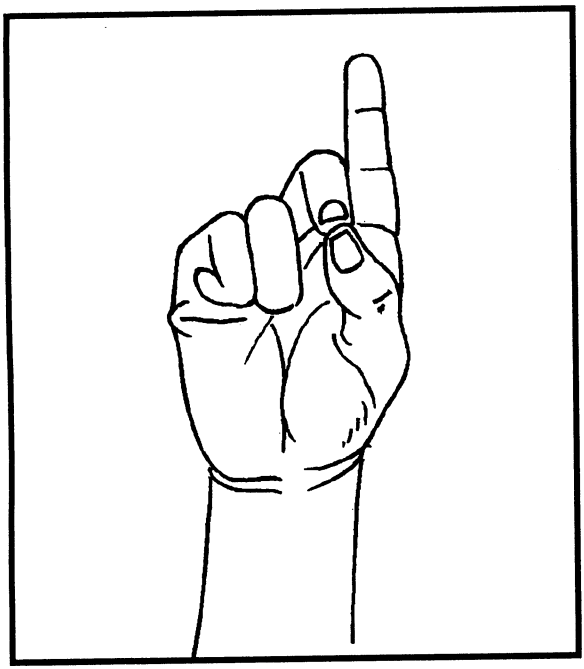
यह मुद्रा छाती के स्तर पर धारण की जाती है।[33]

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ी तंत्र, आँतें, मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार कटकामुख मुद्रा में से तर्जनी को ऊपर कर दी जाये तो वह सूच्यास्य मुद्रा कहलाती है।[34]



सूच्यास्य मुद्रा-2

लाभ

चक्र– आज्ञा एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज **केन्द्र–** दर्शन एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित**

अंग– निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें।

12. पद्मकोश मुद्रा

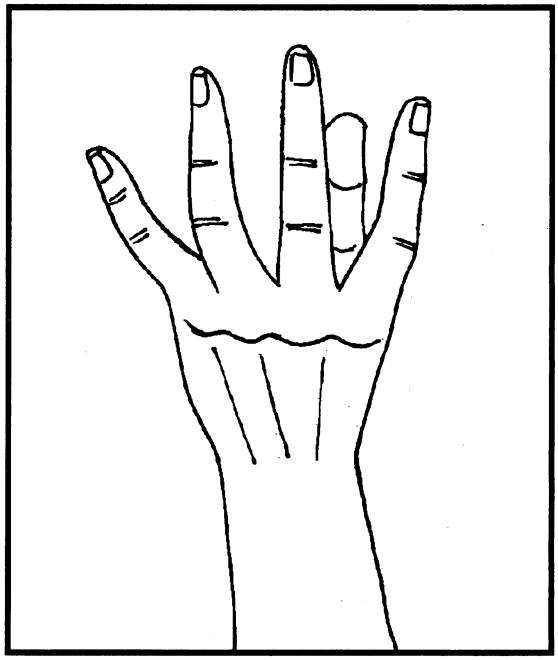
संपुटित कमल के आकार की मुद्रा को पद्मकोश मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा में हाथ के अंगुलियों की बनावट संपुटमय कमल की भाँति होती है इसलिए इसे पद्मकोश मुद्रा कहा गया है। पद्मकोश को कमल की कली भी कह सकते हैं।

यह मुद्रा चमक या प्रभा तथा खिलते हुए कमल की सूचक है। नाट्यकला में इस मुद्रा के द्वारा हर्ष की अभिव्यक्ति भाव या विकसित होने के भाव दर्शाये जा सकते हैं।

यह नाट्य मुद्रा हिन्दू परम्परा में भी प्रचलित है जो कि देवताओं के द्वारा धारण की जाती है।

प्रथम विधि

दायीं हथेली को ऊपर की ओर उठाते हुए अंगुलियों और अंगूठे को हल्के से अलग-अलग करें, फिर हथेली की तरफ किंचित मोड़ने से पद्मकोश मुद्रा बनती है।[35]



पद्मकोश मुद्रा-1

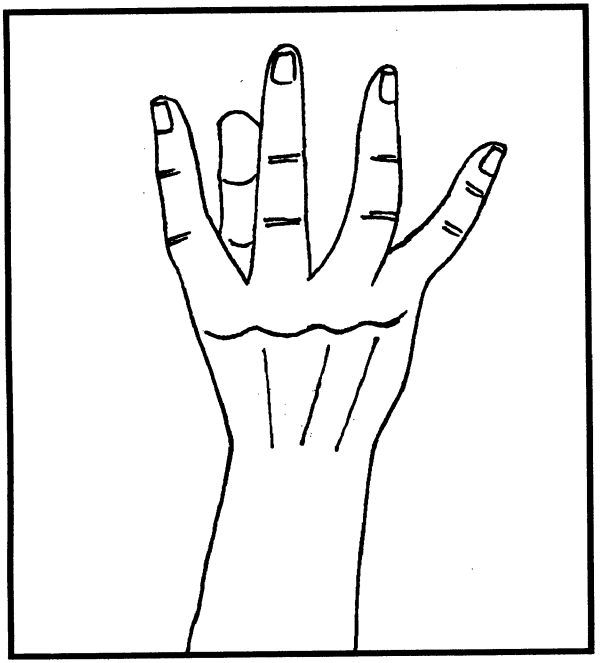
लाभ

चक्र– मणिपुर एवं आज्ञा चक्र
तत्त्व– अग्नि एवं आकाश तत्त्व
ग्रन्थि– एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष

ग्रन्थि **केन्द्र**– तैजस एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, आँतें, मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार भी जिस मुद्रा में सभी अंगुलियाँ ऊपर उठी हुई, अलग-अलग फैली हुई और किंचित झुकी हुई हो वह पद्मकोश मुद्रा है।[36]



पद्मकोश मुद्रा-2

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व**–जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन, थायरॉइड, पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र**– स्वास्थ्य एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन तंत्र, नाक, कान, गला, मुँह, स्वर तंत्र।

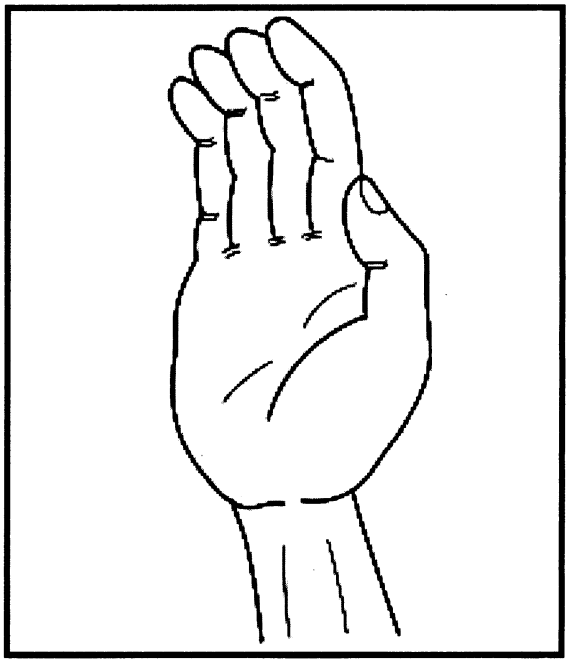
13. सर्पशीर्ष मुद्रा

यह मुद्रा साँप के सिर के समान होती है अत: इसे सर्पशीर्ष मुद्रा कहते हैं। भारतीय कला में नागिन आदि के नृत्य प्रसिद्ध हैं।

नाटक आदि में उपयोगी यह मुद्रा साँप के धीरेपन की और प्रसन्नभावों के अभिव्यक्ति की सूचक है।

प्रथम विधि

दायीं हथेली को सामने की तरफ करें, फिर अंगूठे के प्रथम पोर के हिस्से को तर्जनी अंगुली के निचले पोर के समभाग में सटाकर रखें तथा सभी अंगुलियों को हथेली की तरफ किंचित झुकाने से सर्पशीर्ष मुद्रा बनती है।[37]



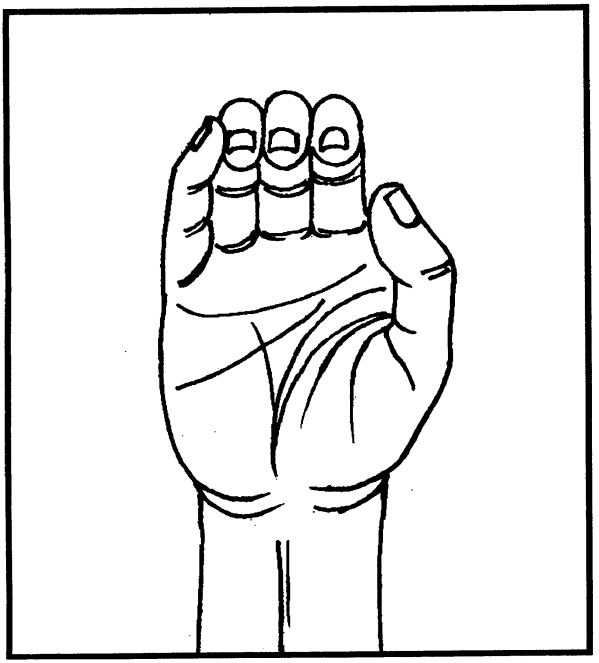
सर्पशीर्ष मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मणिपुर चक्र **तत्त्व–** अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज **केन्द्र–** तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ी तंत्र, आँतें।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार भी जिस मुद्रा में अंगूठे के साथ सभी अंगुलियाँ मिली हुई और हथेली झुकी हुई हो वह सर्पशीर्ष मुद्रा है।[38]



सर्पशीर्ष मुद्रा-2

चक्र– सहस्रार, विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** पिनियल, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** ज्योति केन्द्र एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** ऊपरी मस्तिष्क, आंख, नाक, कान, गला, मुँह, स्वरयंत्र।

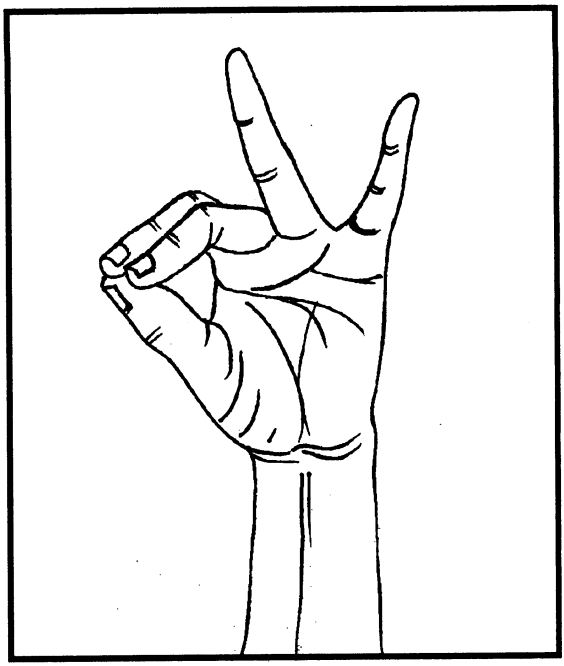
14. मृगशीर्ष मुद्रा

यहाँ मृगशीर्ष शब्द का अभिप्रेत मृग (हिरन) के मुख से है। इस मुद्रा में हिरन के मुख जैसी आकृति दिखायी देती है अतः इसे मृगशीर्ष मुद्रा कहते हैं।

मुद्रा स्वरूप के अनुसार यह मुद्रा हिरण के मुखभाग की सूचक है। नाट्य या नृत्य में मृग की विशेषताओं को बताने अथवा उपमा अलंकार के प्रयोजन से यह मुद्रा की जाती होगी।

प्रथम विधि

दायीं अथवा बायीं हथेली को बाहर की ओर अभिमुख करें, तदनन्तर तर्जनी और मध्यमा को सीधी रखते हुए हथेली की तरफ मोड़ें। फिर अंगूठे के अग्रभाग को इन दोनों से स्पर्श करवायें तथा अनामिका और कनिष्ठिका को ऊपर की ओर सीधा रखने से मृगशीर्ष मुद्रा बनती है।[39]



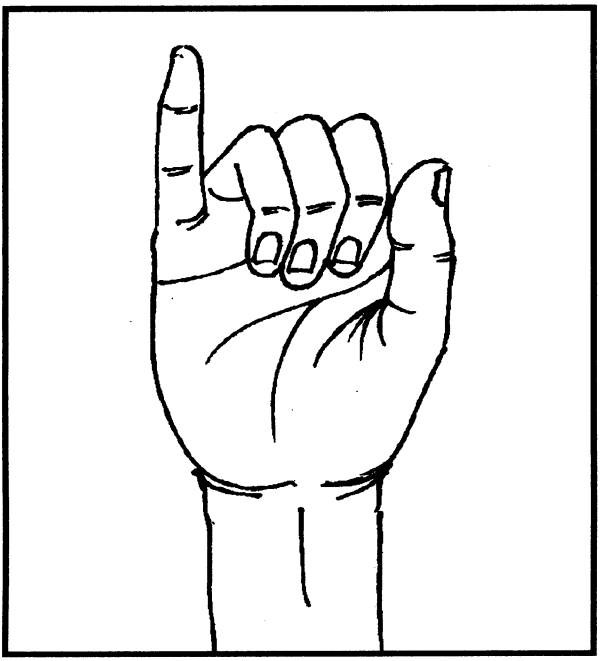
मृगशीर्ष मुद्रा-1

लाभ

चक्र– अनाहत एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** पिनियल एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण प्रणाली, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में तर्जनी, मध्यमा एवं अनामिका किंचित झुकी हुई तथा कनिष्ठिका और अंगूठा ऊर्ध्वाभिमुख हो वह मृगशीर्ष मुद्रा है।[40]



मृगशीर्ष मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मणिपुर, अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस और आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, आँतें, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण प्रणाली।

15. लांगुल/कांगुल मुद्रा

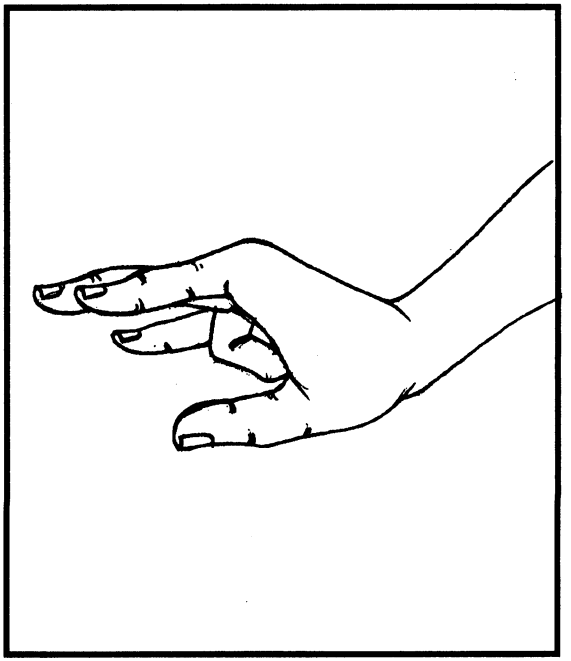
लांगुल शब्द के अनेक अर्थ हैं पूंछ, लिंग, हल, पुरुष का उपस्थेन्द्रिय लिंग आदि।[41]

दर्शाये चित्र के अनुसार यहाँ लांगुल का तात्पर्य पुरुष लिंग से होना चाहिए। यह मुद्राकृति पुरुष लिंग जैसी प्रतीत होती है।

जिस प्रकार लिंग गुप्त होता है वैसे ही यह मुद्रा गुप्त रहस्यों की सूचक है। विद्वानों के मतानुसार यह सुपारी, तीतर एवं किसी भी छोटी वस्तु का प्रतिनिधित्व करती है। यह नाट्यमुद्रा हिन्दू परम्परा में देवी-देवताओं के निमित्त भी की जाती है।

प्रथम विधि

दायीं हथेली को ऊपर की ओर उठायें, तत्पश्चात अनामिका को छोड़कर शेष अंगुलियों को हल्के से चषकाकार रूप में करें तथा अनामिका को झुकाकर शिथिल कर देने से लांगुल मुद्रा बनती है।[42]



लांगुल मुद्रा-1

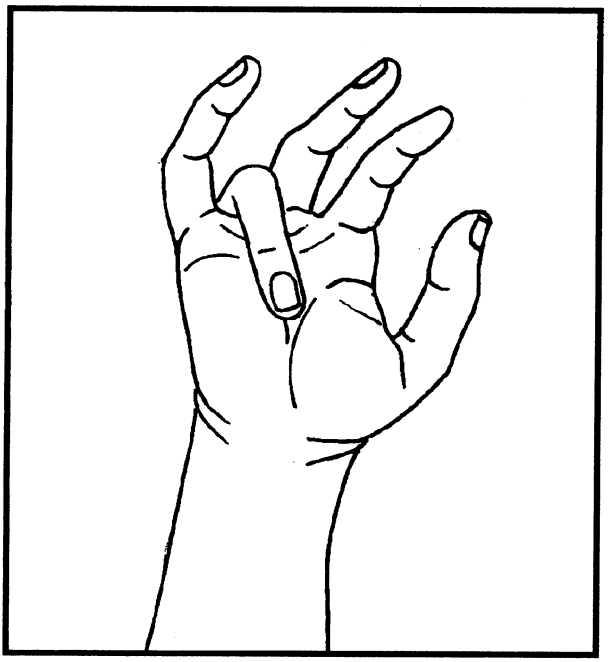
लाभ

चक्र– मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस केन्द्र

एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी संस्थान, पाचन संस्थान, स्वर तंत्र, नाक, कान, गला, मुँह।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में मध्यमा, तर्जनी एवं अंगूठा त्रेताग्नि की तरह अलग-अलग, अनामिका झुकी हुई और कनिष्ठिका ऊर्ध्व प्रसरित हो वह लांगुल/कांगुल मुद्रा है।[43]



लांगुल मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मणिपुर, स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, गुर्दे, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग।

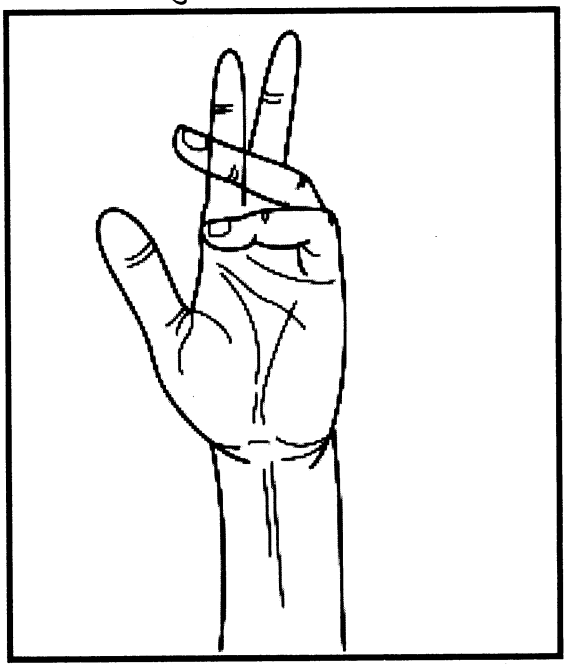
16. अलपद्म मुद्रा

इस मुद्रा को सोलपद्म मुद्रा भी कहते हैं। पूर्णत: खिला हुआ, विकसित हुआ कमल अलपद्म/सोलपद्म कहलाता है।

यह मुद्रा नाटक-नृत्य आदि में एक हाथ से की जाती है। विद्वानों ने इसे उत्कंठ, ललक, घुमाव, ताज आदि की सूचक कहा है। यह मुद्रा स्वयं के गुणों के अनुसार सद्भाग्य की प्रतीक भी हो सकती है।

प्रथम विधि

दायीं हथेली को घुमाते हुए ऊपर की ओर ले जायें, अंगुलियों और अंगूठे को थोड़ा सा कड़क, खींचा हुआ और दूर-दूर रखें, कनिष्ठिका अंगुली को हथेली से 90^0 कोण की दूरी पर रखें तथा अनामिका अंगुली को हथेली से 45^0 कोण पर रखने से अलपद्म मुद्रा बनती है।[44]



अलपद्म मुद्रा-1

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्रकार के अनुसार जिस मुद्रा में हाथ की सभी अंगुलियों हथेली पर वृत्ताकार रूप से मुड़ी हुई और पार्श्व में आकर बिखरी हुई हो, वह

अलपल्लव मुद्रा है।[45]

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन ग्रंथि **केन्द्र–** शक्ति केन्द्र एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** प्रजनन अंग, मल-मूत्र अंग, गुर्दे, मेरूदण्ड, पाँव।

17. चतुर मुद्रा

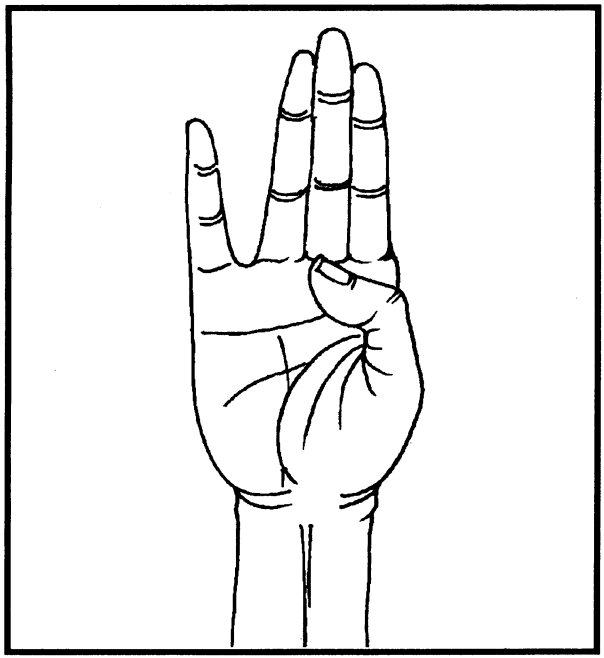
नृत्य में की जाने वाली एक प्रकार की चेष्टा को चतुर मुद्रा कह सकते हैं।

संभवतः इस मुद्रा के माध्यम से कलाकार अपनी चतुरता दिखलाता है अथवा चतुराई जैसी क्रियाएँ करता है इसलिये इसे चतुर मुद्रा नाम दिया गया है।

यह मुद्रा एक हाथ से की जाती है। विद्वानों के अनुसार यह दुःख, जाति भेद आदि को दर्शाती है।

प्रथम विधि

दायीं हथेली को सामने की ओर अभिमुख करते हुए अंगुलियों को ऊपर की तरफ करें, कनिष्ठिका अंगुली को शेष अंगुलियों से पृथक करें तथा अंगूठे से मध्यमा अंगुली के नीचे के भाग का स्पर्श करने पर चतुर मुद्रा बनती है।[46]



चतुर मुद्रा-1

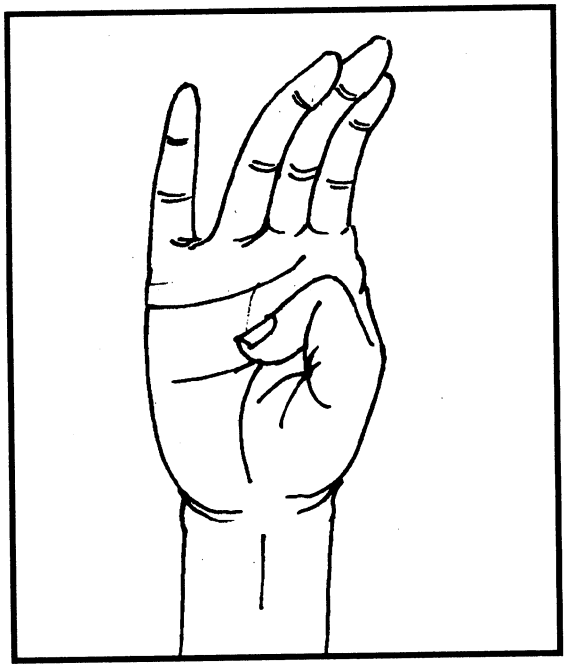
लाभ

चक्र– मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं जल

तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल एवं प्रजनन **केन्द्र–** तैजस केन्द्र एवं प्रजनन **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग, मेरूदण्ड, पाँव।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के कर्त्तानुसार जिस मुद्रा में हाथ की तीन अंगुलियाँ हथेली पर वृत्ताकार रूप में मुड़ी हुई, कनिष्ठिका ऊर्ध्वमुख और अंगूठा मध्य में स्थित हो, वह चतुर मुद्रा है।[47]



चतुर मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रिनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

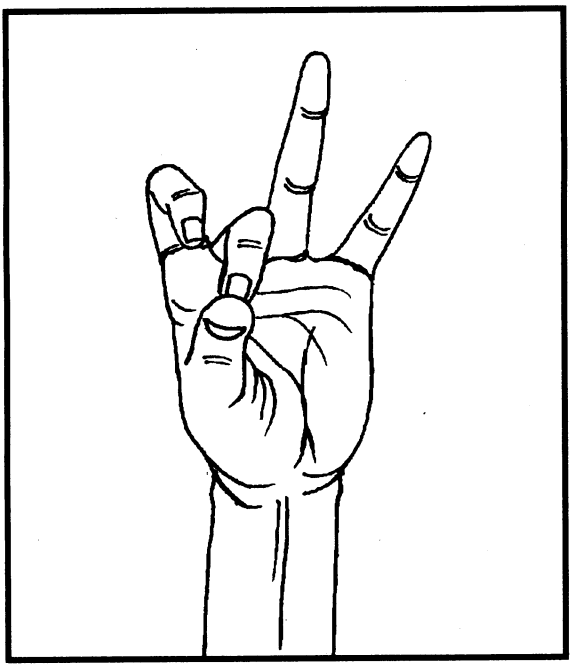
18. भ्रमर मुद्रा

भ्रमर मुद्रा भौंरा नामक जन्तु से सम्बन्धित मालूम होती है क्योंकि निम्न मुद्रा चित्र में भौंरा जैसी प्रतिकृति का आभास होता है।

यह नाट्य मुद्रा हिन्दू परम्परा में देवी-देवताओं के द्वारा या उन्हें दिखाने के लिए भी धारण की जाती है। विद्वानों के मतानुसार इस मुद्रा के निम्न चार में से कोई एक अभिप्राय हो सकता है– 1. चुप रहने का आह्वान 2. भ्रमर 3. सारस और 4. योनि एकता।

प्रथम विधि

इस मुद्रा को बनाते समय मध्यमा अंगुली को अंगूठे के प्रथम और द्वितीय पौर के मध्यभाग पर रखें, तर्जनी अंगुली को हथेली की ओर झुकायें, अनामिका और कनिष्ठिका को ऊपर की तरफ उठाकर उन्हें पृथक्-पृथक् फैली हुई रखने पर भ्रमर मुद्रा बनती है।[48]



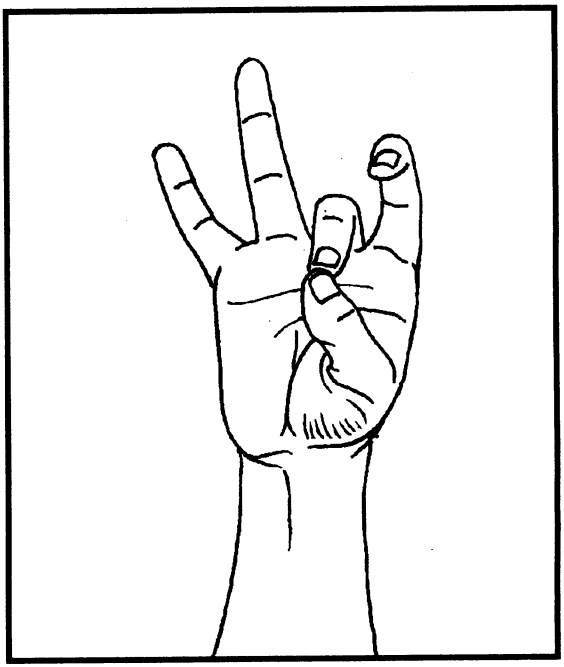
भ्रमर मुद्रा-1

लाभ

इसके सुपरिणाम हंसास्य मुद्रा के समान जानने चाहिए।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के मतानुसार जिस मुद्रा में मध्यमा एवं अंगूठा संडासी जैसी स्थिति में संयुक्त हो, तर्जनी किंचित वक्र तथा अनामिका और कनिष्ठिका ऊर्ध्व प्रसरित हो वह भ्रमर मुद्रा है।[49]



भ्रमर मुद्रा-2

लाभ

चक्र– सहस्रार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** पिनियल एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** ज्योति एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** ऊपरी मस्तिष्क, आंख, हृदय, फेफड़े, भुजाएं, रक्त संचरण प्रणाली।

19. हंसास्य (हंसमुख) मुद्रा

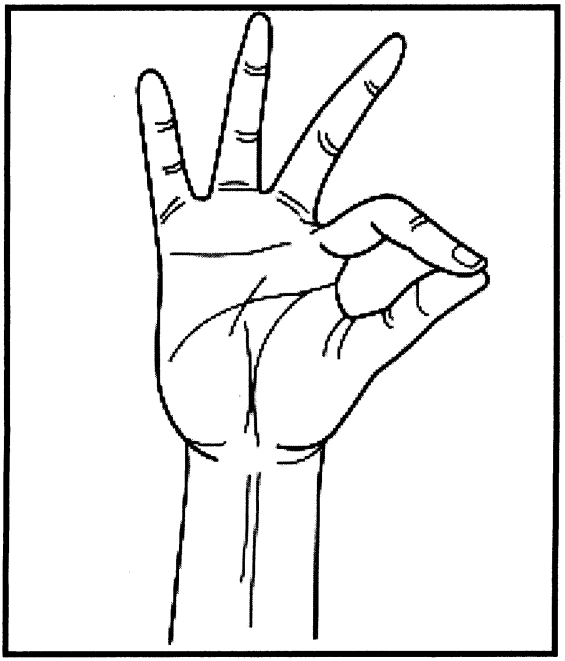
हंसमुख नाम की यह मुद्रा हंस पक्षी के मुख भाग को सूचित करती है। हंस की परिगणना उत्तम पक्षियों में की जाती है। यह पक्षी बड़ी-बड़ी झीलों में रहता है, इसके मुँह में एक विशेष प्रकार का द्रव्य होता है जिससे दूध-दूध और पानी-

पानी अलग हो जाता है। हंस मोती चुनने का काम भी करता है। हंसमुख एक उपमा भी है जो सुन्दर मुख वालों को दी जाती है।

नाटक आदि में की जाने वाली यह मुद्रा विवाह, जीवन प्रवर्त्तन आदि की सूचक है।

प्रथम विधि

इस मुद्रा में दायें हाथ के अंगूठे को तर्जनी के प्रथम पोर से स्पर्शित करते हुए रखें तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को थोड़ी सी अलग कर ऊपर की तरफ सीधा रखने से हंसास्य मुद्रा बनती है।[50]



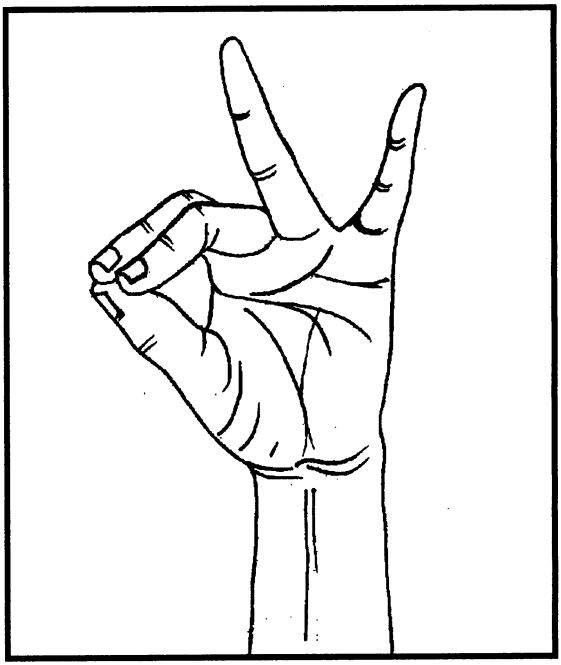
हंसास्य मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मणिपुर, सहस्रार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, स्नायु तंत्र, यकृत तिल्ली, आँतें एवं निचला मस्तिष्क।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में तर्जनी, मध्यमा एवं अंगूठा तीनों ही त्रेताग्नि की तरह परस्पर मिले हुए और शेष दोनों अंगुलियाँ ऊपर की ओर विप्रकीर्ण हो वह हंसास्य मुद्रा है।[51]



हंसास्य मुद्रा-2

लाभ

चक्र– सहस्रार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** ज्योति केन्द्र एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, आंख एवं स्नायु तंत्र।

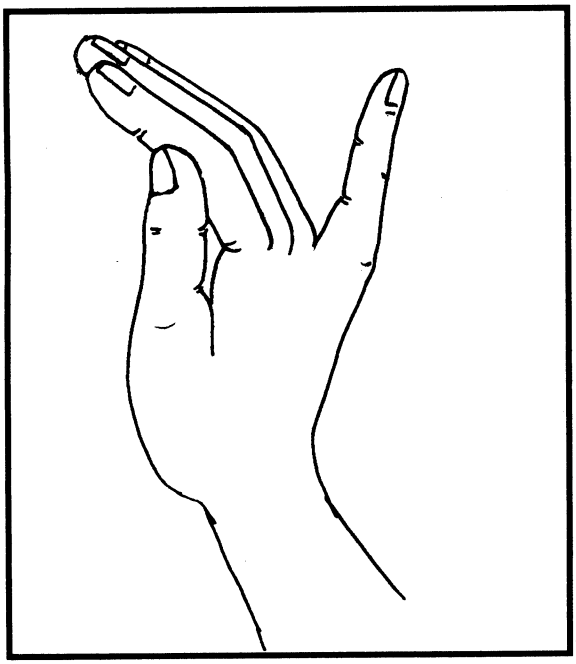
20. हंसपक्ष मुद्रा (प्रथम)

यहाँ नृत्य के एक प्रकार को हंसपक्ष कहा गया है।

यह मुद्रा नाटकों आदि में एक हाथ से धारण की जाती है। दर्शाये चित्र के अनुसार यह मुद्रा रोकने और इकट्ठा करने का संकेत करती है।

प्रथम विधि

दायीं हथेली को सामने की ओर स्थिर करें, फिर तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को किंचित हथेली की ओर झुकायें, अंगूठे को झुकी हुई तर्जनी के समीप रखें तथा कनिष्ठिका अंगुली को ऊपर की ओर सीधा रखने से हंसपक्ष मुद्रा बनती है।[52]



हंसपक्ष मुद्रा-1

लाभ

चक्र– विशुद्धि एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाक, कान, गला, मुँह, स्वर यंत्र, मेरूदण्ड, गर्दे।

द्वितीय विधि

भरत मुनि के अनुसार जिस मुद्रा में तर्जनी, मध्यमा एवं अनामिका समान रूप से फैली हुई, कनिष्ठिका ऊर्ध्वमुख और अंगुष्ठ कुंचित हो वह हंसपक्ष मुद्रा है।[53]

लाभ

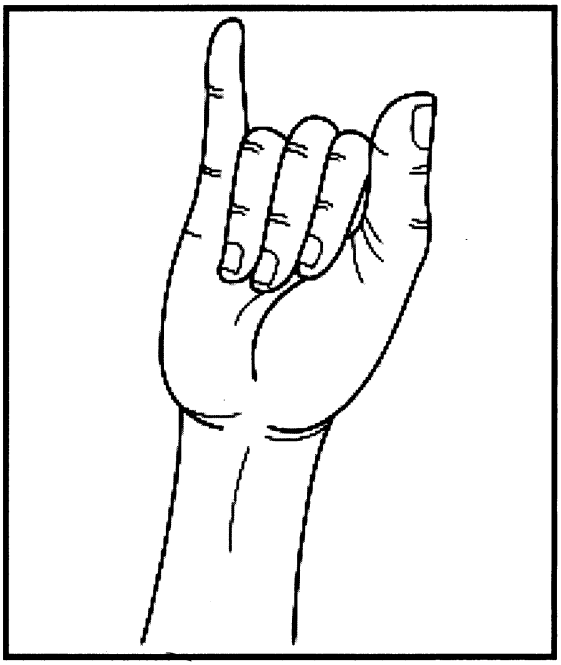
चक्र– सहस्रार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** ज्योति केन्द्र एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, आँख एवं स्नायु तंत्र।

20. हंसपक्ष मुद्रा (द्वितीय)

प्रकारान्तर से हंसपक्ष मुद्रा की रचना निम्न प्रकार से होती है–

प्रथम विधि

दायें हाथ की तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को हथेली की तरफ झुकायें, अंगूठे को मुड़ी हुई अंगुलियों के बिल्कुल समीप रखें तथा कनिष्ठिका को सीधी रखने पर दूसरी प्रकार की हंसपक्ष मुद्रा बनती है।[54]



हंसपक्ष मुद्रा-2

चक्र– मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, स्नायु तंत्र एवं

निचला मस्तिष्क।

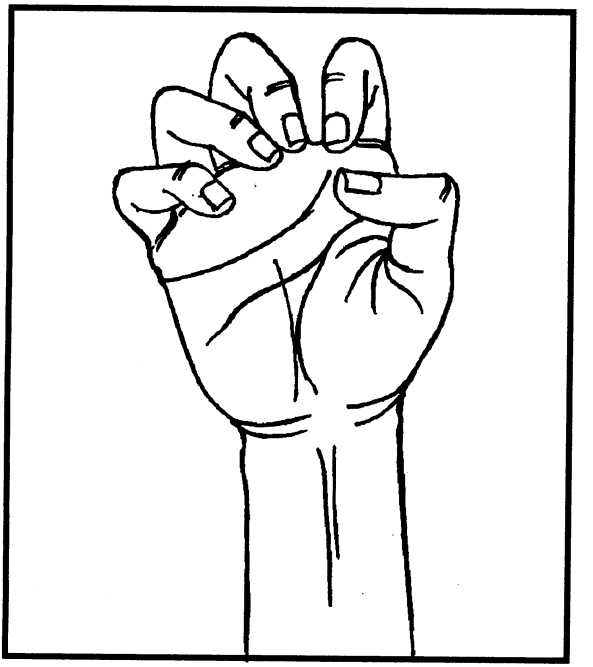
21. सन्दंश मुद्रा (प्रथम)

सन्दंश का शाब्दिक अर्थ है संडासी। यह लोहे का बना एक औजार है जो किसी वस्तु को पकड़ने के काम आता है। जिस प्रकार न्याय या तर्क सिद्धान्त में अपने प्रतिपक्षी को दोनों ओर से जकड़ या बांध देते हैं उसी प्रकार संडासी से बर्तन आदि को पकड़ते हैं।[55]

निम्न चित्र के अनुसार यह मुद्रा आशंका, भय और उदारता के भावों को प्रकट करती है। विद्वानों ने इसे उक्त गुणों की सूचक बतलाई है। इस मुद्रा में अंगुलियों की गति होती है।

प्रथम विधि

दायीं हथेली को थोड़ी सी ऊपर की ओर करें, अंगुलियों और अंगूठे को अलग-अलग करते हुए उन्हें किंचित हथेली की तरफ मोड़ें तथा अंगुलियों का संकोच-विकोच करते रहने से सन्दंश मुद्रा बनती है।[56]



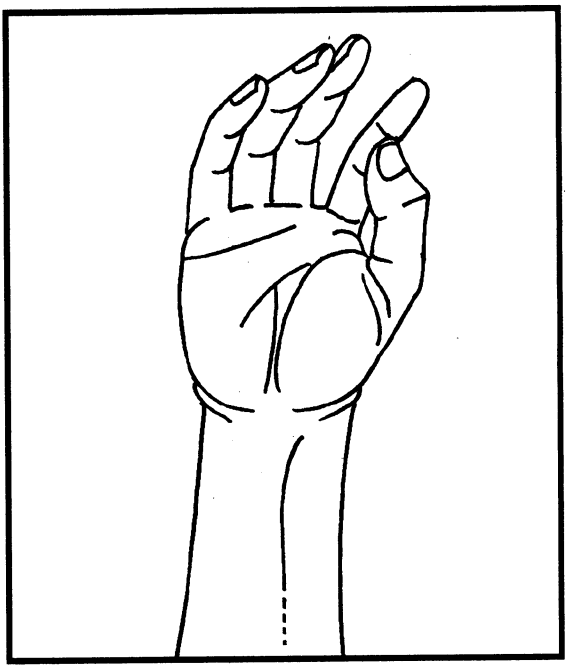
सन्दंश मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज **केन्द्र–** शक्ति एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, पाचन संस्थान, यकृत, नाड़ी तंत्र, आँतें।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के मतानुसार तर्जनी अंगूठे से सन्दष्ट (स्पर्शित) हो, शेष अंगुलियाँ ऊपर की ओर किंचित झुकी हुई हो तथा हथेली थोड़ी-सी नत हो वह सन्दंश मुद्रा है।[57]



सन्दंश मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति केन्द्र एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र।

21. सन्दंश मुद्रा (द्वितीय)

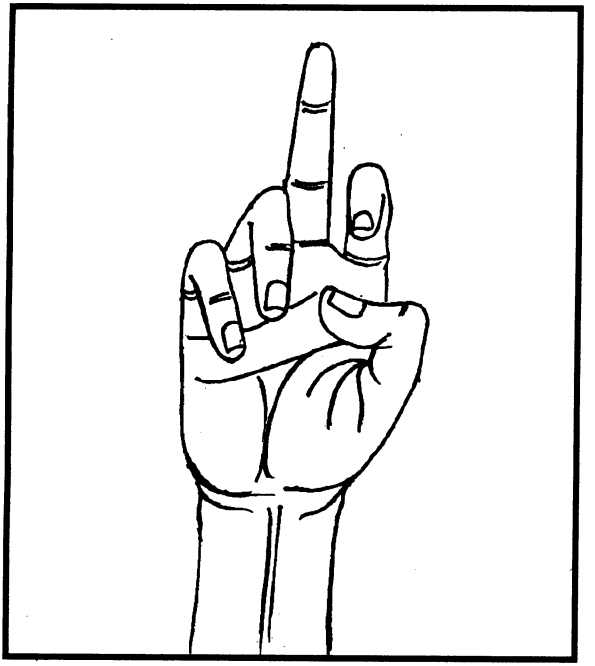
सन्दंश मुद्रा के तीन प्रकारान्तर हैं।

इस मुद्रा के तीनों ही प्रकार नाटक आदि में धारण किये जाते हैं। दर्शाये चित्र के अनुसार यह मुद्रा सत्य, संगीत एवं अकेलेपन का सूचक है।

द्वितीय प्रकार की सन्दंश मुद्रा निम्न प्रकार से बनती है।

प्रथम विधि

सामान्यतया दायीं हथेली को ऊपर की तरफ करें, अंगुलियों और अंगूठे को परस्पर में अलग-अलग करते हुए हल्के से हथेली के अंदर भाग की ओर मोड़ें तथा मध्यमा अंगुली को बाहर की तरफ सीधी रखने से द्वितीय प्रकार की सन्दंश मुद्रा बनती है।[58]



सन्दंश मुद्रा-1

लाभ

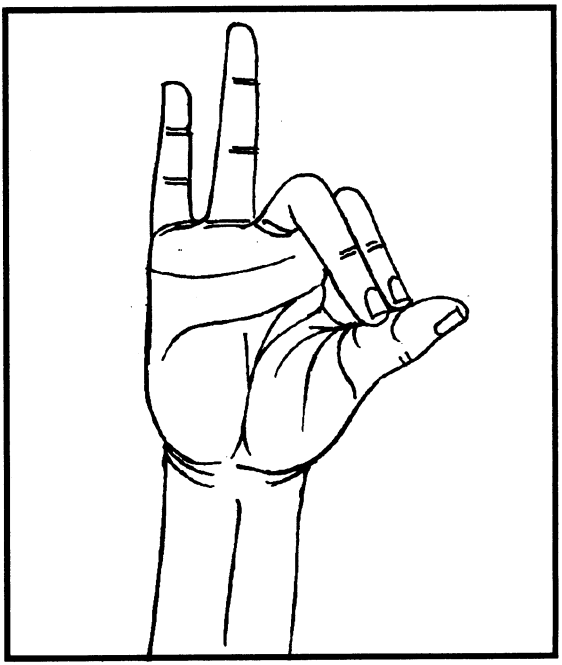
चक्र– सहस्रार, आज्ञा एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** पिनियल, पीयूष एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन, ज्योति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, आंख, मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग।

21. सन्दंश- मुकुल मुद्रा (तृतीय प्रकार)

नाटक आदि में उपयोगी यह मुद्रा चित्र स्वरूप के अनुसार कौंए की सूचक है। निम्न मुद्रा चित्र में हाथों की अंगुलियाँ कुछ खिली हुई और कुछ अविकसित अवस्था में है इसलिए इसका नाम सन्दंश- मुकुल मुद्रा है।

प्रथम विधि

सामान्य विधि के अनुसार दायीं हथेली को किंचित ऊपर की ओर करें, तर्जनी और मध्यमा के अग्रभाग को अंगूठे के प्रथम पोर और दूसरे पोर के जोड़ पर रखें, फिर अनामिका और कनिष्ठिका को ऊपर की तरफ फैलाई हुई रखने पर सन्दंश-मुकुल मुद्रा बनती है।[59]



सन्दंश मुद्रा-1

लाभ

चक्र– सहस्रार, अनाहत एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व**– आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि**– पिनियल, थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं थायमस **केन्द्र**– ज्ञान, ज्योति, विशुद्धि एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– ऊपरी मस्तिष्क, आँख, नाक, कान, गला, मुख, स्वर तंत्र, हृदय, फेफड़े, भुजाएँ, रक्त संचरण तंत्र।

22. मुकुल मुद्रा

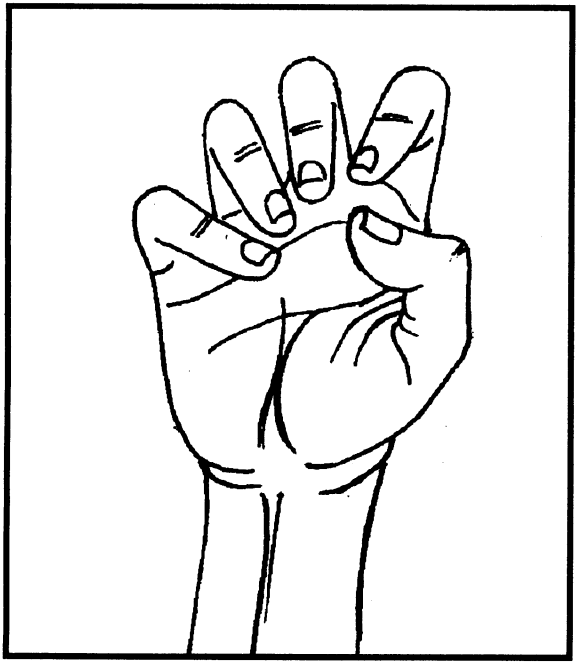
मुकुल शब्द विभिन्न अर्थों का द्योतक है। यहाँ मुकुल का अर्थ कली है।

सामान्यत: अर्ध विकसित कमल को मुकुल कहते हैं। इस मुद्रा में हाथ की अंगुलियाँ आधे खिले हुए कमल के समान दिखती है अत: इसे मुकुल मुद्रा कहा गया हैं।

यह मुद्रा अपने गुण के अनुसार अर्ध विकसित कमल, कुँवारेपन तथा शुद्धता की प्रतीक है।

प्रथम विधि

दायीं हथेली को किंचित ऊपर की ओर अभिमुख करें, फिर अंगुलियों और अंगूठे के अग्रभाग को हथेली की तरफ मोड़ते हुए एक-दूसरे के निकट लाने पर मुकुल मुद्रा बनती है। इसमें अंगुलियों के अग्रभाग ऊपर की तरफ अथवा परस्पर में अभिमुख रहें।[60]



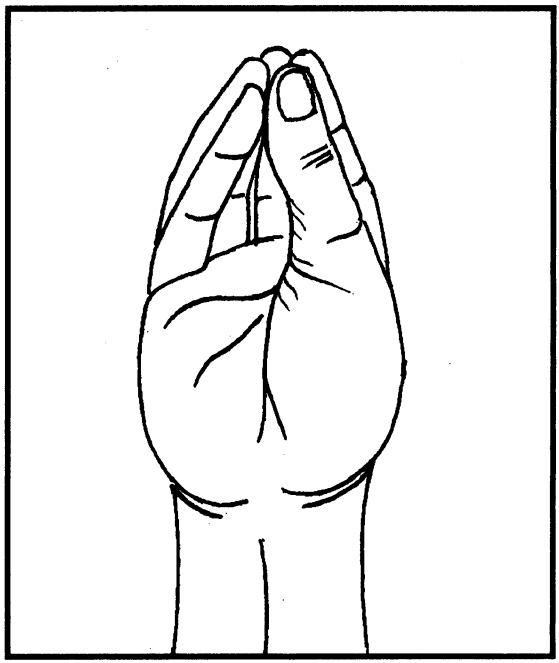
मुकुल मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मूलाधार, मणिपुर एवं सहस्त्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, तैजस, ज्ञान केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ी तंत्र, आँतें, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में हाथ की सभी अंगुलियाँ समान रूप से मिली हुई और अग्रभाग से झुकी हुई हो वह मुकुल मुद्रा है।[61]



मुकुल मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मूलाधार, मणिपुर एवं सहस्त्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, तैजस एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, पाचन संस्थान, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, ऊपरी मस्तिष्क, आँख।

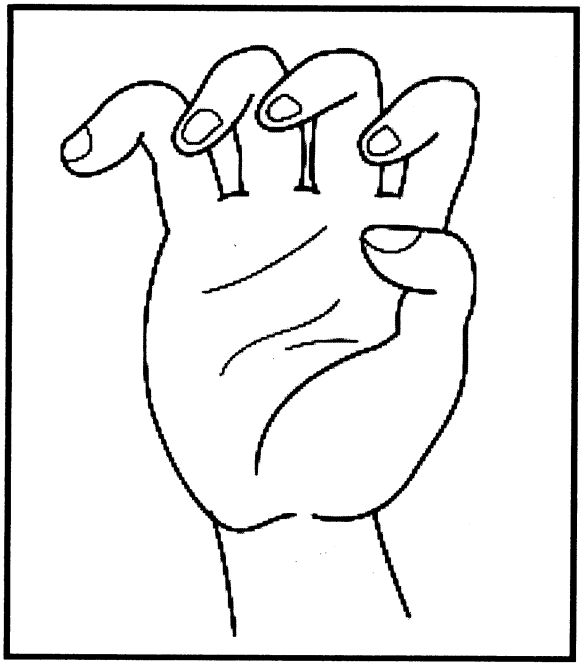
23. ऊर्णनाभ मुद्रा

यहाँ ऊर्णनाभ मुद्रा से अभिप्रेत मकड़ी है। मकड़ी एक प्रकार का कीड़ा है जो लगभग सभी जगह पाया जाता है। इस कीड़े के मुँह से एक तरल पदार्थ निकलता है जो प्राय: विषैला होता है। मकड़ी के लिए यह उक्ति प्रसिद्ध है कि वह स्वयं अपना जाल बुनती है और स्वयं ही उसमें फंस जाती है। मकड़ी स्वभावत: फुर्तीली होती है।

यह नाट्य मुद्रा जापानी और चीनी बौद्ध के वज्रयान एवं मंत्रयान परम्परा की तांत्रिक मुद्रा है। इस मुद्रा को कलाकार, नर्त्तक, उपासक या पुजारी; डर, खूंखारापन, चोरी आदि भावों को दर्शाने के लिए धारण करते हैं।

प्रथम विधि

दायें हाथ की सभी अंगुलियों एवं अंगूठे को हथेली का स्पर्श किये बिना आधा मुड़ा हुआ रखने पर ऊर्णनाभ मुद्रा बनती है।[62]



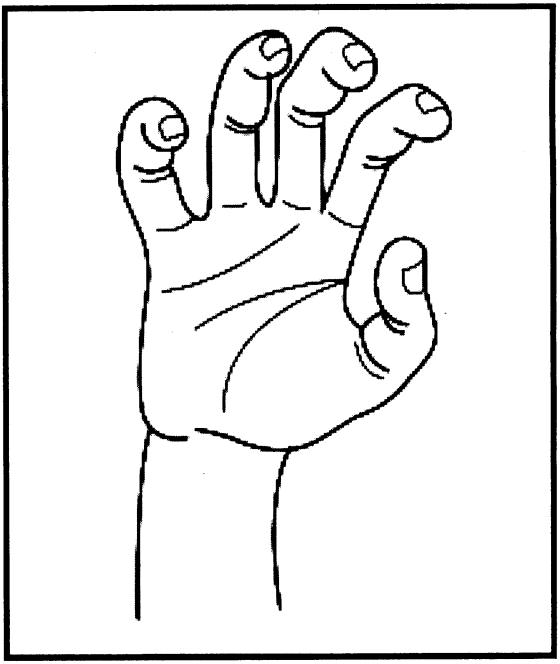
ऊर्णनाभ मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मणिपुर, अनाहत एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** अग्नि, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं थायमस **केन्द्र–** तैजस, आनंद, विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाक, कान, गला, मुख, स्वर यंत्र, हृदय, फेफड़े, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ी तंत्र।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में पद्मकोश रूप में स्थित अंगुलियों को वक्र कर दिया जाये तो वह ऊर्णनाभ मुद्रा कहलाती है।[63]



ऊर्णनाभ मुद्रा-2

लाभ

चक्र– अनाहत, मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** वायु, अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस, एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड **केन्द्र–** आनंद, तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–**

हृदय, फेफड़ें, भुजा, रक्त संचरण तंत्र, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, स्वर तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाक, कान, गला, मुँह।

24. ताम्रचूड़ मुद्रा (प्रथम)

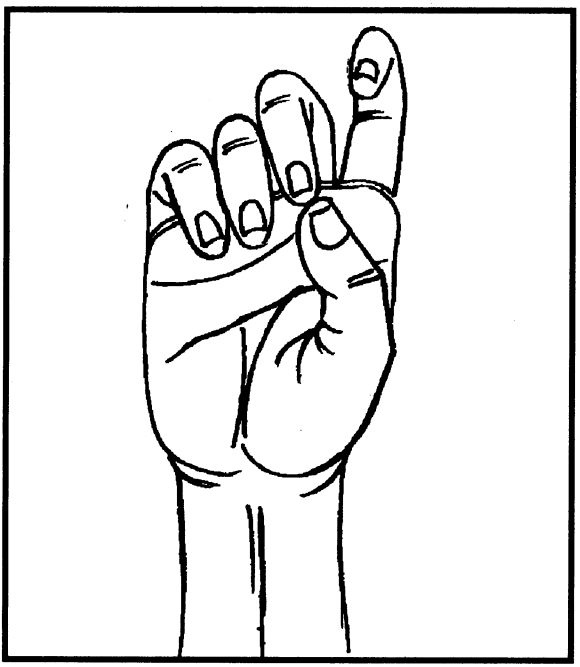
ताम्रचूड़ का एक अर्थ मुर्गा होता है। यहाँ इस मुद्रा का अभिप्राय मुर्गे से है। मुर्गा एक ऐसा पक्षी है जो प्रभात काल होने की पूर्व सूचना देता है।

यह पक्षी सफेद, पीला और लाल आदि कई रंगों का तथा खड़ा होने पर प्राय: एक हाथ से कुछ कम ऊँचा होता है। यह अपनी शानदार चाल और प्रभात के समय 'कूकडू कूं' बोलने के लिए प्रसिद्ध है।

इस मुद्रा को नाटकों में कलाकारों के द्वारा एवं हिन्दु परम्परा में देवी-देवताओं के द्वारा अथवा उनके लिए धारण की जाती है। यह मुद्रा चित्र के अनुसार सारस, मूर्गा या लिखने की सूचक है।

प्रथम विधि

दायीं हथेली को आगे की तरफ करें, तर्जनी अंगुली को हल्की सी हथेली को ओर झुकायें, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली के भीतर मोड़ें तथा अंगूठे के अग्रभाग को मध्यमा अंगुली के अग्रभाग से योजित करने पर ताम्रचूड़ मुद्रा बनती है।[64]



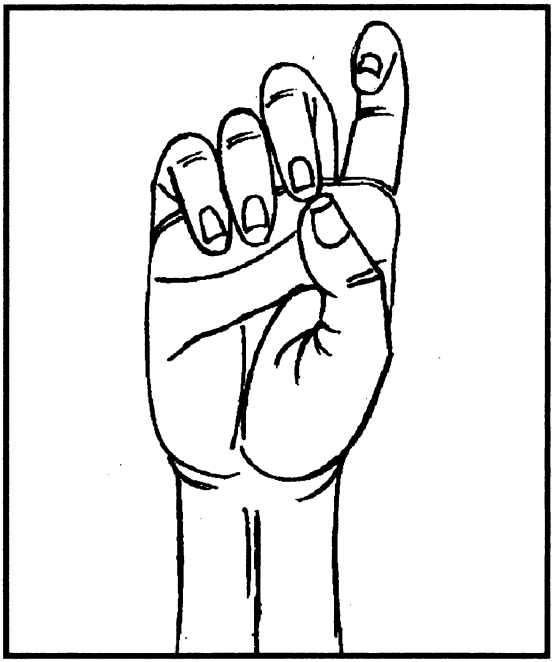
ताम्रचूड़ मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मणिपुर, अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, आँतें।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में मध्यमा अंगूठे से संयुक्त, तर्जनी झुकी हुई और शेष अंगुलियाँ हथेली पर स्थित हों वह ताम्रचूड़ मुद्रा है।[65]



ताम्रचूड़ मुद्रा-2

लाभ

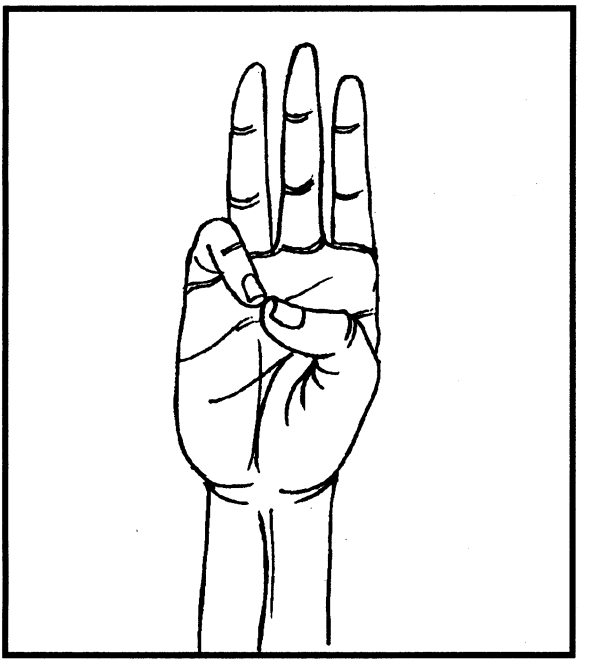
चक्र– अनाहत एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** वायु एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज **केन्द्र–** आनंद एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़े, भुजाएं, रक्त संचार प्रणाली, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें।

24. ताम्रचूड़ मुद्रा (द्वितीय)

ताम्रचूड़ मुद्रा का एक अन्य प्रकार भी प्रचलित है। यहाँ ताम्रचूड़ का तात्पर्य लाल शिखा अर्थात चोटी से है। यह मुद्रा भी एक हाथ द्वारा नाटक आदि में धारण की जाती है। मुद्रा स्वरूप के अनुसार यह त्रिशूल, तीन लोक और वेदों की सूचक है।

प्रथम विधि

दायीं हथेली को सामने की तरफ स्थिर करें, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को ऊपर की ओर सीधा रखें तथा अंगूठे के अग्रभाग और कनिष्ठिका के अग्रभाग को परस्पर संयुक्त करने पर ताम्रचूड़ मुद्रा का दूसरा प्रकार बनता है।[66]



ताम्रचूड़ मुद्रा-1

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान, विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** जल, वायु, तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रंथि **केन्द्र–** स्वास्थ एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग, नाक, कान, गला, मुँह, स्वर तंत्र।

संयुक्त हस्त की 13 मुद्राएँ

1. अंजलि मुद्रा

दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ संपुट अंजलि कहलाता है। किसी भी पदार्थ को अर्पित करने की विधिवत प्रक्रिया अंजलि कही जाती है।

इस मुद्रा के लिए अंजलि कर्म, सर्व राजेन्द्र, वज्रअंजली करणा, पद्मांजली, संपुतांजली आदि नाम भी प्रसिद्ध है। चीन देश में यह मुद्रा "कांग-हो-चेंग" के नाम से तथा जापान देश में "कोंगो गस्सहो" "ने बिना गस्सहो" के नाम से जानी जाती है।

यह नाटकों आदि में नृतकों द्वारा तो प्रयुक्त होती ही है, किन्तु हिन्दु और बौद्ध परम्पराओं में भी देवताओं आदि के लिए धारण की जाती है।

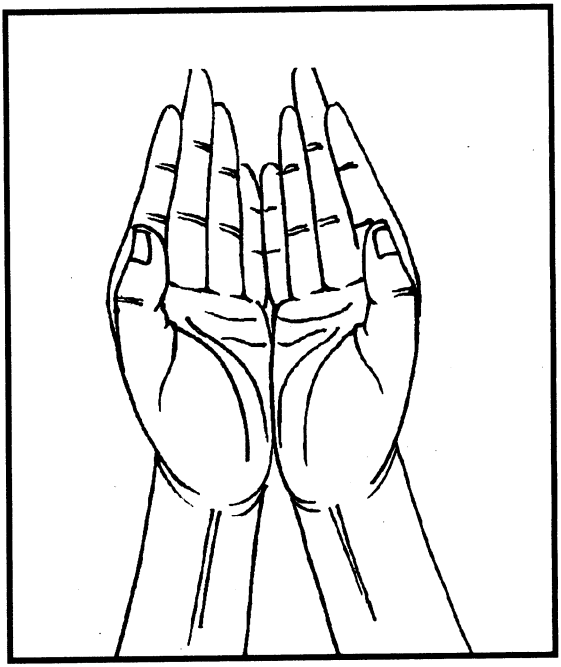
इस मुद्रा के द्वारा किसी को आमंत्रित करने एवं वंदन करने के भाव भी दर्शाते हैं। यह आराधना और पूजा की मुद्रा भी है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को एक-दूसरे के अभिमुख करते हुए परस्पर में संयुक्त कर देने पर अंजलि मुद्रा बनती है।

इसमें अंगुलियाँ ऊपर की ओर उठी हुई, हल्की सी मुड़ी हुई एवं उनके अग्रभाग एक-दूसरे से स्पर्श किये रहते हैं।

यह ठुड्डी के स्तर पर धारण की जाती है।[67]



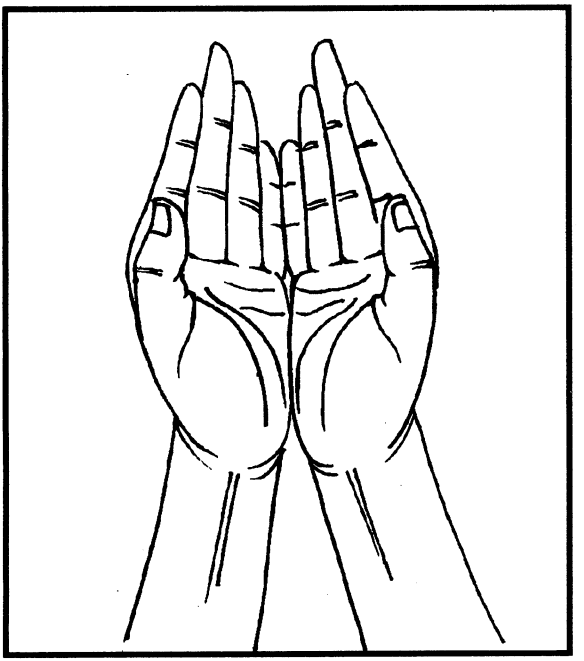
अंजली मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मूलाधार, मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रिनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड, पेराथायरॉइड **केन्द्र–** शक्ति, तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरुदण्ड, गुर्दे, पैर, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, स्वर तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाक, कान, गला, मुँह।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जब दोनों हाथों को पताका मुद्रावत बनाकर परस्पर संयुक्त कर दिया जाये तो वह अंजली मुद्रा कहलाती है।[68]



अंजली मुद्रा-2

लाभ

चक्र– सहस्रार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** पिनियल एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** ज्योति एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** ऊपरी मस्तिष्क, आंख, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली।

2. कपोत मुद्रा

यहाँ कपोत शब्द का अर्थ पण्डुक नामक एक प्रकार का पक्षी है जो चित्तकबरा और पिंजरें में बंद रहता है।

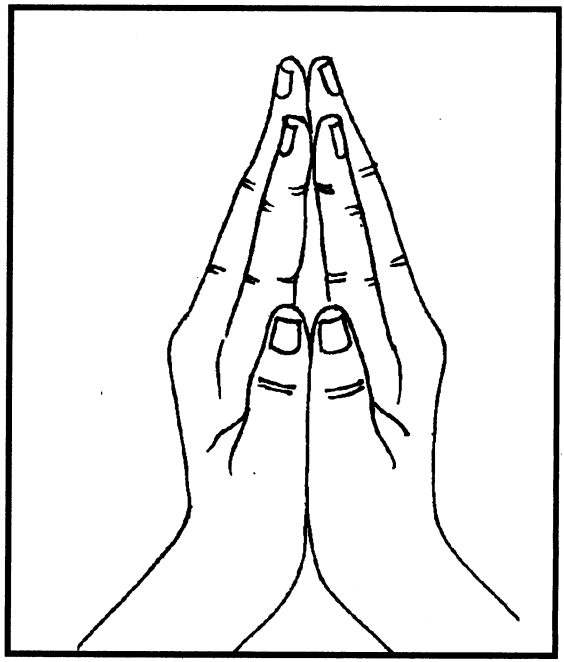
यह मुद्रा मुख्यत: नाटक अभिनय के समय धारण की जाती है। दर्शाये चित्र के अनुसार यह शपथ अथवा मौन सम्मति के भावों को सूचित करती है।

प्रथम विधि

दोनों हाथों को नमस्कार मुद्रा की भाँति ऊपर की ओर उठायें, दोनों कनिष्ठिकाओं की बाह्य किनारियों को संयुक्त कर दें तथा दोनों हाथों को किंचित सम्पुटाकार में बनाते हुए हथेलियों के मध्य भाग को खाली रखने पर कपोत मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा पत्र मुद्रा के समान है।

इस मुद्रा में दोनों अंगूठे अलग-अलग और अपनी अंगुलियों के साथ जुड़े रहते हैं।[69]



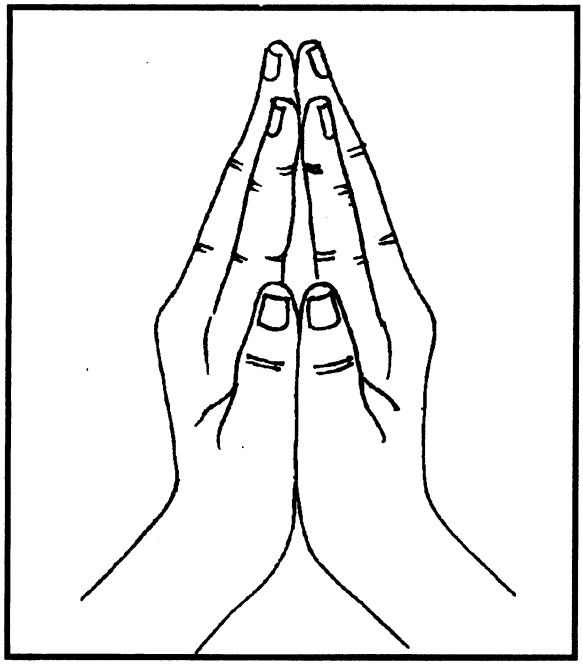
कपोत मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रंथि। **केन्द्र**– तैजस एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान, रक्त संचरण संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ।

द्वितीय विधि

कपोत मुद्रा एक अन्य प्रकार से भी बनती है। इसमें मुद्रा बनाने का तरीका पूर्ववत ही है। विशेष इतना है कि इस मुद्रा को हिलाया जाता है जो पण्डुक पक्षी के चहचहाने-बोलने की सूचना देती है।[70]



कपोत मुद्रा-2

लाभ

चक्र– आज्ञा एवं अनाहत चक्र **तत्त्व**– आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि**– पीयूष एवं थायमस ग्रंथि **केन्द्र**– दर्शन एवं आनन्द केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

3. कर्कट मुद्रा

कर्कट शब्द केकड़ा, एक प्रकार का सारस, कर्क राशि आदि अर्थों से सम्बन्धित है।

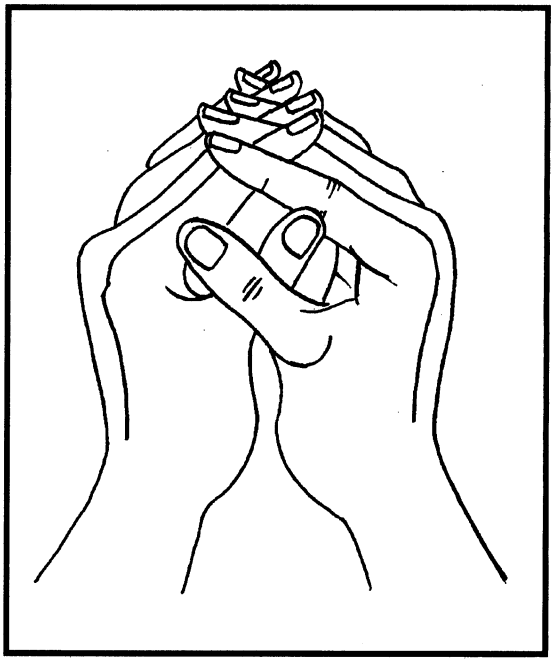
इस मुद्रा में दोनों हाथों की अंगुलियों को बाहर-भीतर मिलाकर कड़काते हैं। यह क्रिया आलस्य या शंख बजाने का भाव दिखाने के लिए की जाती है।

दर्शाये चित्र के अनुसार यहाँ कर्कट मुद्रा शंख बजाने के भाव को प्रदर्शित करती है।

शंख बजाते समय दोनों हाथ जिस स्थिति में रहते हैं इस मुद्रा में वही आकार दृष्टिगत होता है अत: इसे कर्कट मुद्रा कहते हैं।

द्वितीय विधि

भरतमुनि के अनुसार दोनों हाथों की अंगुलियों के अग्रभागों को परस्पर में अन्तर रखते हुए मिलाने पर कर्कट मुद्रा बनती है।[71]



कर्कट मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–**

प्रजनन एवं पीयूष ग्रंथि **केन्द्र–** शक्ति एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरुदण्ड, पाँव, गुर्दे, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

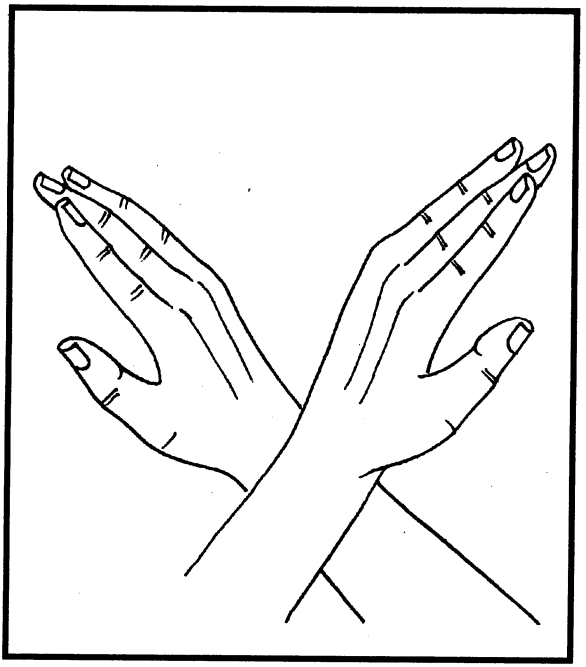
4. स्वस्तिक मुद्रा (प्रथम)

स्वस्तिक शब्द मंगल, आनन्द, अभिवृद्धि आदि का सूचक है। शुभ अवसरों पर यह मंगल चिह्न दीवार आदि पर बनाया जाता है। धार्मिक कार्यों में चार गति सूचक स्वस्तिक का सर्वाधिक प्रयोग होता है।

एक अज्ञातकृति के अनुसार यह मुद्रा डरते हुए बोलने एवं विवाद को प्रकट करती है।

प्रथम विधि

दोनों हाथों को ऊपर की ओर उठायें, अंगुलियों और अंगूठों को एक साथ आकाश की तरफ फैले हुए रखे, फिर एक हाथ के कलाई भाग को दूसरे हाथ के कलाई स्थान पर रखें तथा अंगुलियों को शिथिल करते हुए हल्के से मोड़ने पर स्वस्तिक मुद्रा बनती है।[72]



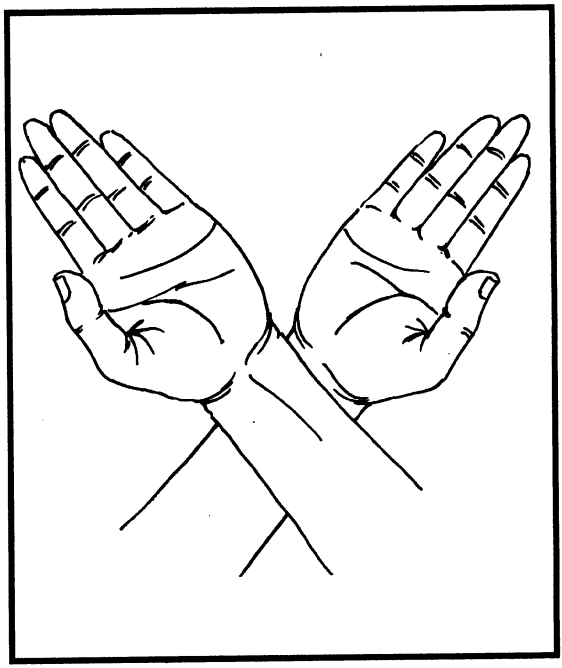
स्वस्तिक मुद्रा-1.1

लाभ

चक्र– आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, आँखें।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में दोनों हथेलियाँ उत्तानित, अंगुलियाँ ऊर्ध्वाभिमुख और हाथ एक-दूसरे की कलाई पर विन्यस्त हो उसे स्वस्तिक मुद्रा कहते हैं।[73]



स्वस्तिक मुद्रा-1.2

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

4. स्वस्तिक मुद्रा (द्वितीय)

प्रकारान्तर से स्वस्तिक मुद्रा का एक और प्रकार है जो नृत्तहस्त नाट्य मुद्राओं में उपयोगी बनता है।

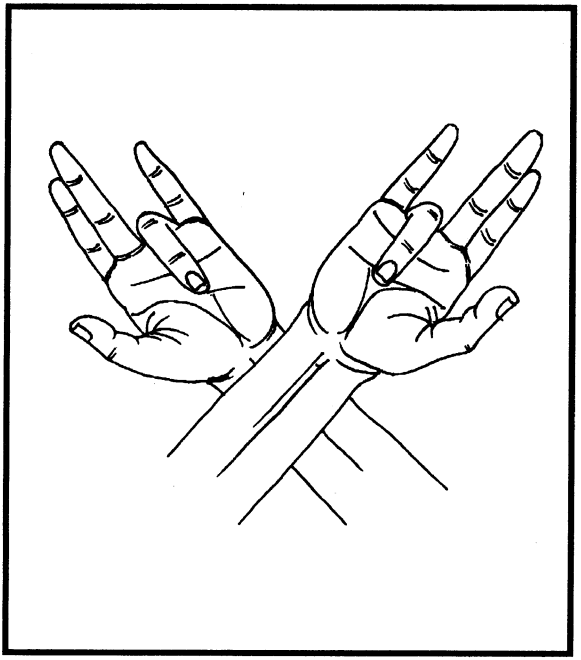
यह स्वस्तिक मुद्रा कल्पवृक्ष और पहाड़ की अवस्था को सूचित करती है ऐसा विद्वानों का मानना है।

इस मुद्रा की रचना विधि निम्न प्रकार है-

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को सामने की तरफ करें, फिर तर्जनी, मध्यमा, कनिष्ठिका और अंगूठे को ऊपर की ओर फैलायें, अनामिका अंगुलियों को हथेली की तरफ मोड़ें तथा एक हाथ की कलाई को दूसरे हाथ की कलाई पर Cross करते हुए रखना स्वस्तिक मुद्रा का दूसरा प्रकार है।

यह मुद्रा छाती के बायीं तरफ धारण की जाती है।[74]



स्वस्तिक मुद्रा-2.1

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान, आज्ञा एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** जल, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, पीयूष एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य, दर्शन एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण प्रणाली।

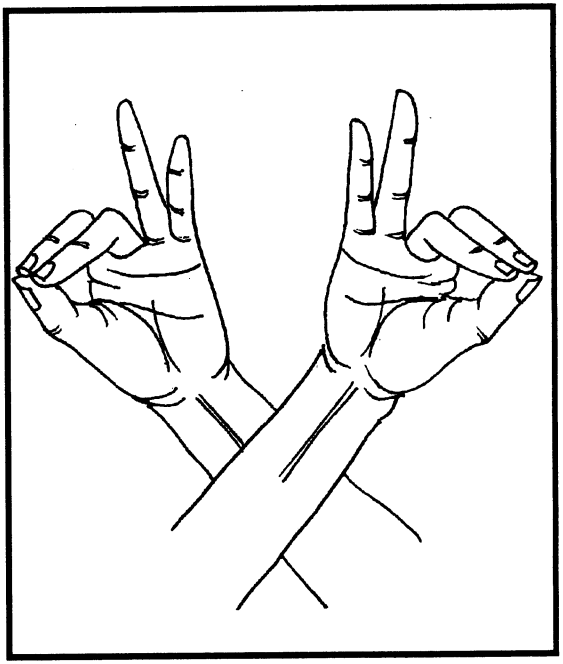
5. खटका वर्धमान मुद्रा

खटक शब्द भय, आशंका, चिन्ता, फिक्र अर्थ में प्रयुक्त होता है। यहाँ इस मुद्रा नाम का अभिप्राय बढ़ती हुई चिन्ता या भय आदि से होना चाहिए।[75]

इस मुद्रा को कटका वर्धमान और कटकवर्धन भी कहते हैं।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को सामने की ओर करें, फिर तर्जनी और मध्यमा के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से संयुक्त करें, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को ऊपर की तरफ सीधा रखें, तदनन्तर दोनों हाथों को Cross में



खटका वर्धमान मुद्रा-1

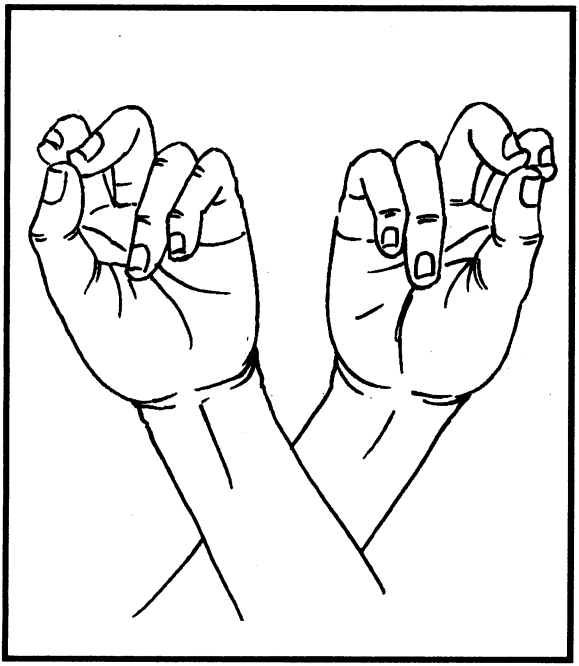
करने पर खटका वर्धमान मुद्रा बनती है।[76]

लाभ

चक्र– विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाक, कान, गला, मुँह, स्वर तंत्र, मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथों को खटका हस्त में रचित कर एक हाथ को दूसरे खटका हस्त पर रखते हैं तब खटका वर्धमान मुद्रा बनती है।[77]



खटका वर्धमान मुद्रा-2

लाभ

चक्र– आज्ञा, मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** वायु, पृथ्वी एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन **केन्द्र–** दर्शन, तैजस

एवं स्वास्थ्य केन्द्र, **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

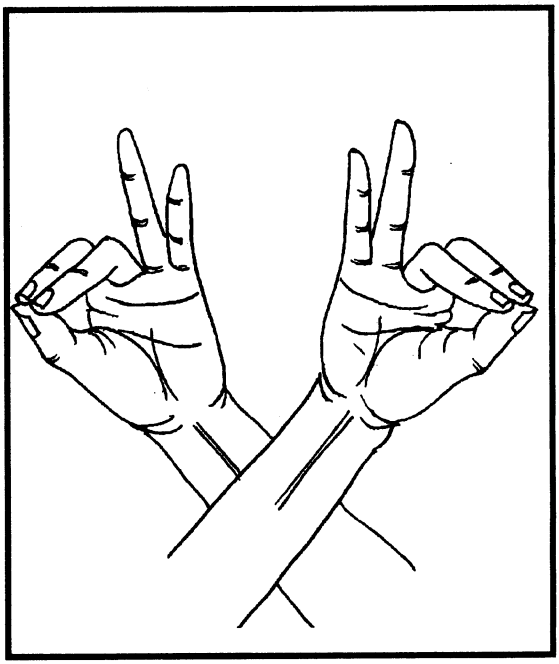
6. उत्संग मुद्रा

सामान्यतया गोद या अंक को उत्संग कहा जाता है इस मुद्रा का अभिप्राय हमें स्पष्ट नहीं है।

प्राप्त जानकारी के अनुसार यह नाट्य मुद्रा नर्तक या कलाकार ठंड आदि भावों को दर्शाने के लिए धारण करते हैं।

प्रथम विधि

दोनों हाथों को सामने की ओर Cross करते हुए रखें, जिससे हथेलियाँ विरुद्ध दिशाओं में रह सकें, तदनन्तर अंगूठा, तर्जनी और मध्यमा के अग्रभागों को एक-दूसरे से स्पर्श करते हुए रखें तथा अनामिका और कनिष्ठिका को ऊपर की दिशा में सीधा रखने पर उत्संग मुद्रा बनती है।[78]



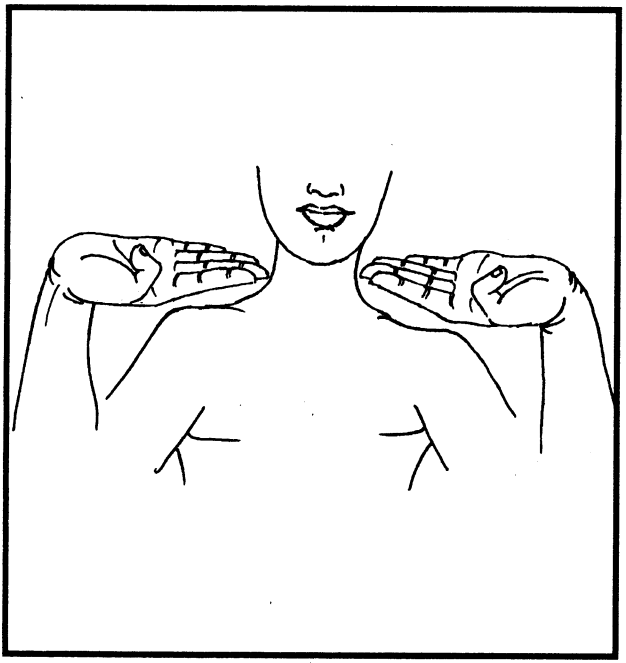
उत्संग मुद्रा-1

लाभ

इसके प्रभाव खटका वर्धमान मुद्रा के समान जानने चाहिए।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के कर्त्ता भरत मुनि के अनुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथ अपने कंधों के ऊपर तक उठे हुए, अंगुलियाँ फैली हुई और अंगुठा हथेली मध्य में स्थित हो वह उत्संग मुद्रा है।[79]



उत्संग मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रंथि **केन्द्र**– तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान, यकृत, तिल्ली, आंतें, नाक, कान, गला, मुँह, स्वर तंत्र।

7. निषेध मुद्रा

इस मुद्रा का अपर नाम निषध भी है।

निषध और निषेध दोनों भिन्न-भिन्न अर्थ के वाचक हैं इसलिए स्पष्ट अर्थ कह पाना मुश्किल है।

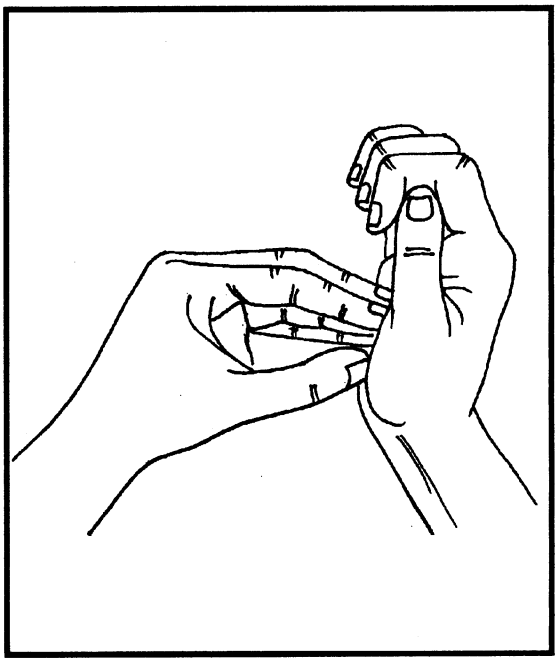
संभवतया यहाँ 'निषध' शब्द कठिनता को इंगित करता है क्योंकि यह मुद्रा कुछ कठिनाई से बनती है तथा 'निषेध' शब्द वर्जन अर्थ को द्योतित करता है कारण कि दर्शाये चित्र में यह भाव प्रकट होता है।

अज्ञात नाम की कृति के अनुसार यह नाट्य मुद्रा यथार्थता और सत्य आदि की सूचक है।

प्रथम विधि

बायीं हथेली को हृदय के मध्य भाग की ओर लायें, तत्पश्चात अंगुलियों और अंगूठे को हल्के से उठाते हुए उनके अग्रभागों को एक साथ दायीं हथेली से स्पर्शित करवायें।

दायीं हथेली को भी मध्यभाग में स्थिर कर अंगूठे को ऊपर की ओर करें, तर्जनी को अंगूठे के अग्रभाग पर मोड़ें तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली की तरफ झुकाने से निषेध मुद्रा बनती है।



निषेध मुद्रा-1

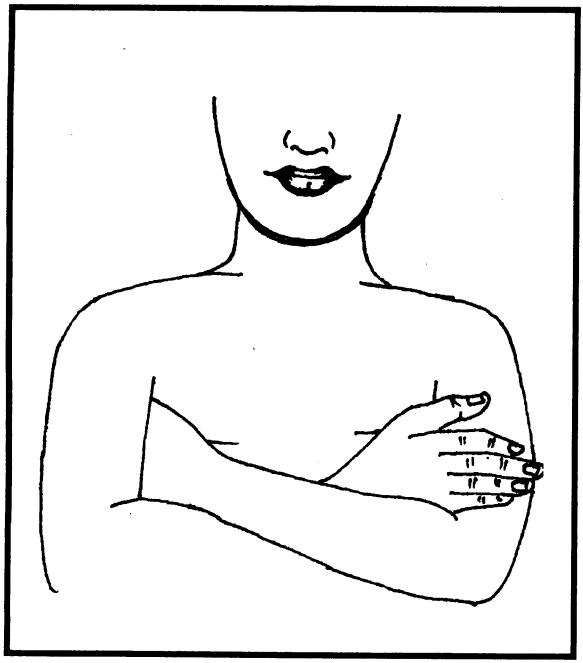
इसमें दायीं हाथ की अंगुलियाँ बायें हाथ की अंगुलियों एवं अंगूठे को आवृत्त किये रहती हैं।[80]

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, मेरुदण्ड, गुर्दे, पाँव।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में मुकुल मुद्रावत बायें हाथ को कपित्थ मुद्रा द्वारा परिवेष्टित कर दिया जाता है वह निषध मुद्रा कहलाती है।[81]



निषेध मुद्रा-2

लाभ

चक्र– सहस्रार चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क एवं आँख।

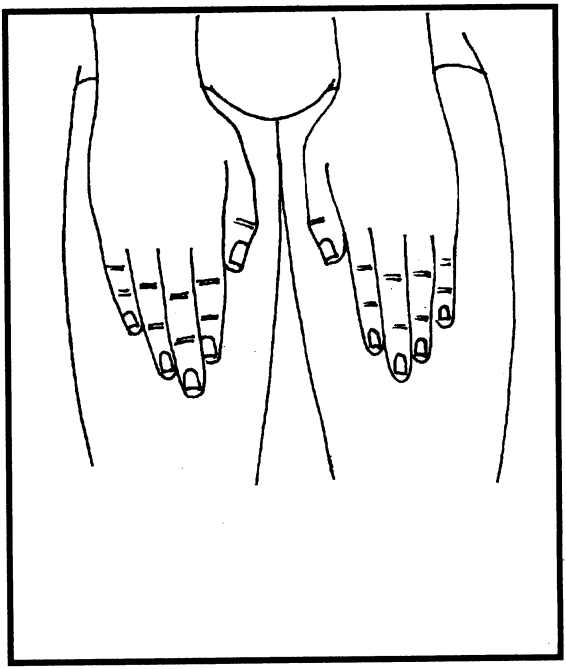
8. डोल मुद्रा

यहाँ ढोल एवं डोल दोनों शब्दों का प्रयोग मिलता है। डोल अर्थात हिंडोला, झूला। संभवत: यह मुद्रा नाटकों में झूलने की सूचक है।

मुद्रा स्वरूप के अनुसार इसमें दोनों हाथ प्रलम्बित रूप से हिलते रहते हैं अत: इसे डोल मुद्रा नाम दिया गया है।

प्रथम विधि

दोनों कंधों को शिथिल करें, दोनों हाथों को प्रलम्बित कर हथेलियों को पार्श्व में या जंघाओं पर रखें, अंगुलियों और अंगूठों को नीचे की तरफ फैलाने तथा हिलाते रहने से डोल मुद्रा बनती है।[82]



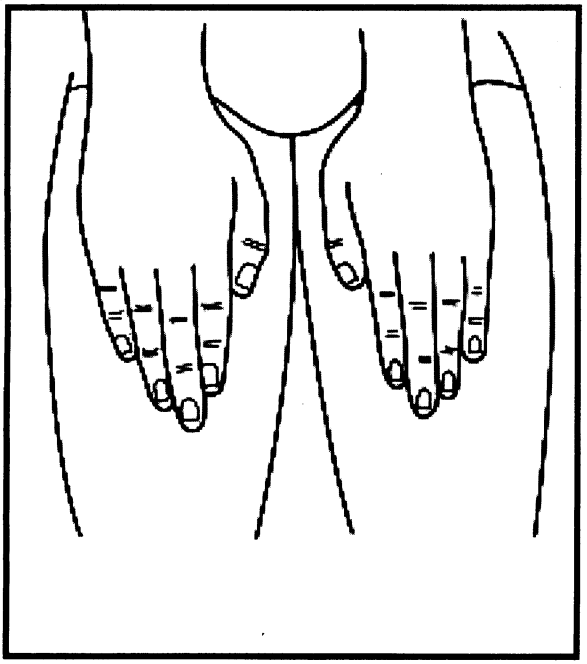
डोल मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रंथि **केन्द्र–** तैजस एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी संस्थान, हृदय, भुजाएं, फेफड़ें, रक्त संचरण प्रणाली।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में दोनों कन्धे शिथिल और दोनों हाथ पताका मुद्रावत प्रलम्बित हिलते हों वह डोल मुद्रा है।[83]



डोल मुद्रा-2

लाभ

चक्र– विशुद्धि, मूलाचार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** वायु, पृथ्वी एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि, शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** कान, नाक, गला, मुख, गुर्दे, स्वर तंत्र, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, मेरुदण्ड, पाँव।

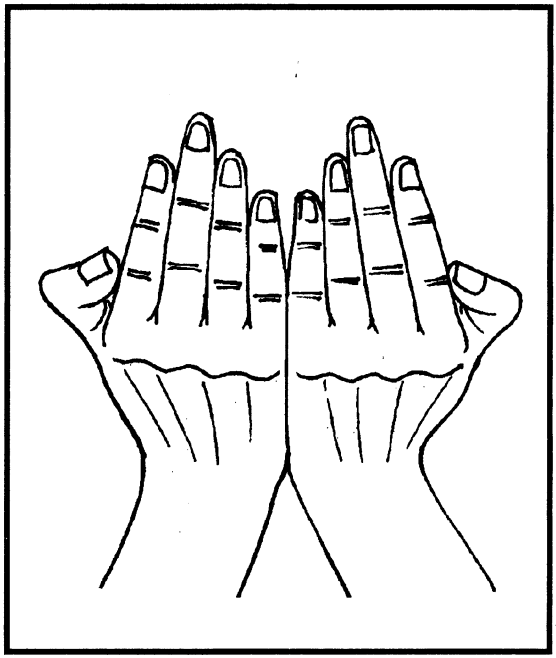
9. पुष्पपुट मुद्रा

पुष्प रखने के लिए बनाया गया हाथों का पुट अथवा संपुट पुष्पपुट कहलाता है। इस मुद्रा में दोनों हथेलियों को पुष्पपुट की भाँति आकार दिया जाता है इसलिए इसे पुष्पपुट मुद्रा कहते हैं।

यह मुद्रा हिन्दु परंपरा में भी धारण की जाती है। इस मुद्रा को पुष्प, जल आदि अर्पित करने का सूचक माना गया है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को ऊपर की दिशा में रखें। फिर अंगुलियों और अंगूठों को सामने की ओर फैलायें एवं किंचित झुकायें। उसके बाद दोनों हाथों को समीप लाते हुए कनिष्ठिका की बाह्य किनारियों को मिला देने पर पुष्पपुट मुद्रा बनती है।[84]



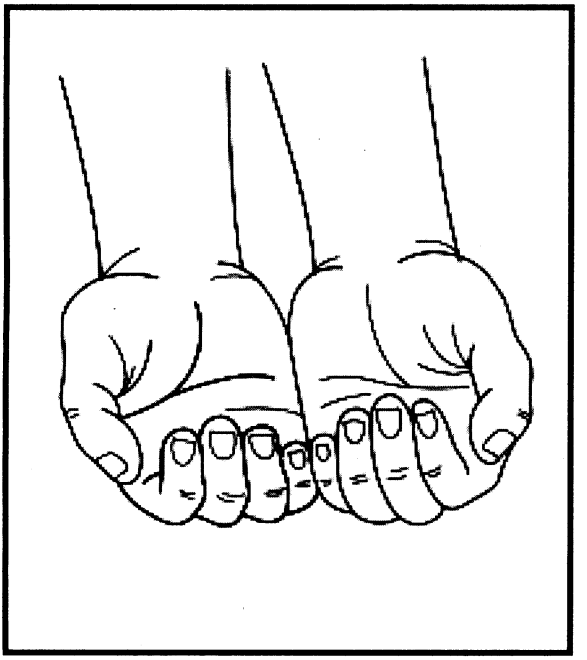
पुष्पपुट मुद्रा-1

लाभ

चक्र– विशुद्धि, सहस्रार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड, पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि, ज्योति एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाक, कान, गला, मुख, स्वरतंत्र, मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, आँख।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में एक हाथ सर्पशीर्ष मुद्रा में संहत अंगुलियों सहित और दूसरा हाथ पार्श्व में अच्छी तरह संश्लिष्ट हो वह पुष्पपुट मुद्रा है।[85]



पुष्पपुट मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, जल एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज **केन्द्र–** शक्ति, स्वास्थ्य एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरुदण्ड, गुर्दे, पाँव, प्रजनन अंग, मल-मूत्र अंग, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें।

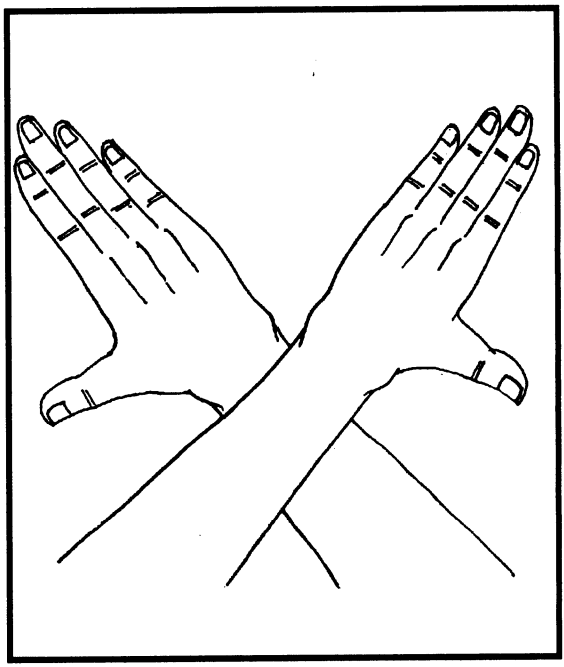
10. मकर मुद्रा

मकर अर्थात मगरमच्छ। यह मुद्रा मगर नामक जलजन्तु से सम्बन्धित तथा नाटक आदि में दोनों हाथों से की जाती है।

यह गूढ़ रहस्यों से युक्त तथा समुद्र आदि का ऊपर से बहना और ठोसपने का सूचक है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को नीचे की तरफ अभिमुख करते हुए अंगुलियों को सामने की ओर फैलायें, अंगूठों को अंगुलियों से 90^0 कोण पर रखें, दाहिना हाथ बायें हाथ के पीछे से Cross करता हुआ 90^0 कोण पर रहें तथा अंगूठों में गति करते रहने पर मकर मुद्रा बनती है।[86]



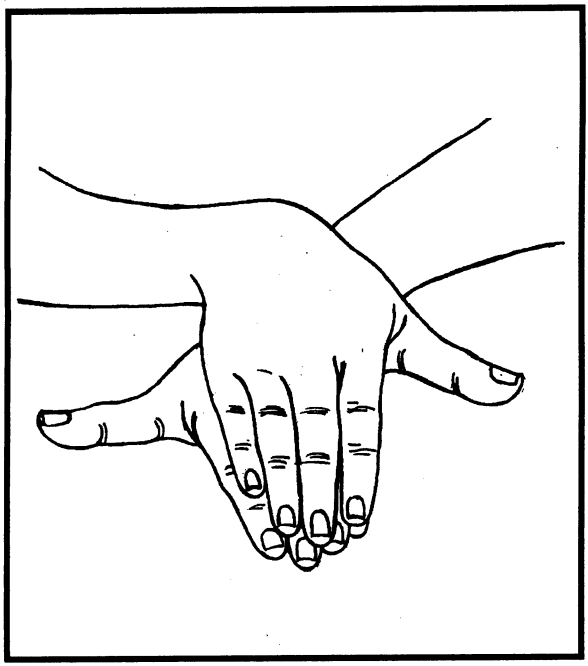
मकर मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रंथि **केन्द्र–** तैजस एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, हृदय, फेफड़े, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र।

द्वितीय विधि

भरत मुनि के अनुसार जब दोनों हाथ पताकावत ऊपर की ओर उठे हुए, अंगूठा अधोमुख और दोनों हाथ एक-दूसरे के ऊपर संस्थित हो तब मकर मुद्रा बनती है।[87]



मकर मुद्रा-2

लाभ

चक्र– सहस्रार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** पिनियल एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** ज्योति केन्द्र एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, आँख, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

11. गजदन्त मुद्रा

हाथी के दाँत को गजदन्त कहते हैं। हाथी के दाँत जिस तरह बाह्य भाग में निकले हुए रहते हैं इस मुद्रा में हाथों की वही स्थिति बनती है अतः इसे गजदन्त मुद्रा कहा गया है।

हिन्दी शब्द सागर के अनुसार प्राचीन काल में नृत्य के दरम्यान इस मुद्रा

के भाव उस समय दिखलाए जाते थे जब विवाहोपरान्त कन्या को वर ले जाता था।

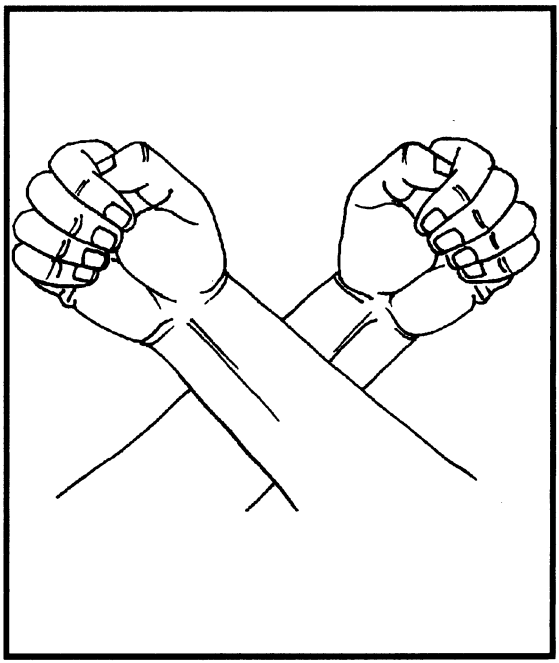
इसके अतिरिक्त झूलने अथवा वृक्ष आदि उखाड़ने के भाव दर्शाते समय भी इसका व्यवहार होता था।

इसे खम्भे आदि को उखाड़ने एवं किसी वस्तु को उठाने की सूचक भी कहा गया है।

यह नाट्य मुद्रा कलाकारों द्वारा दोनों हाथों से की जाती है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को सामने की ओर करें, अंगूठे को तर्जनी के निचले हिस्से पर विपरीत स्थिति में रखें, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को आधी हथेली के समभाग में झुकायें तथा दोनों हाथों को कोहनी के समीप Cross करते हुए रखने पर गजदन्त मुद्रा बनती है।[88]



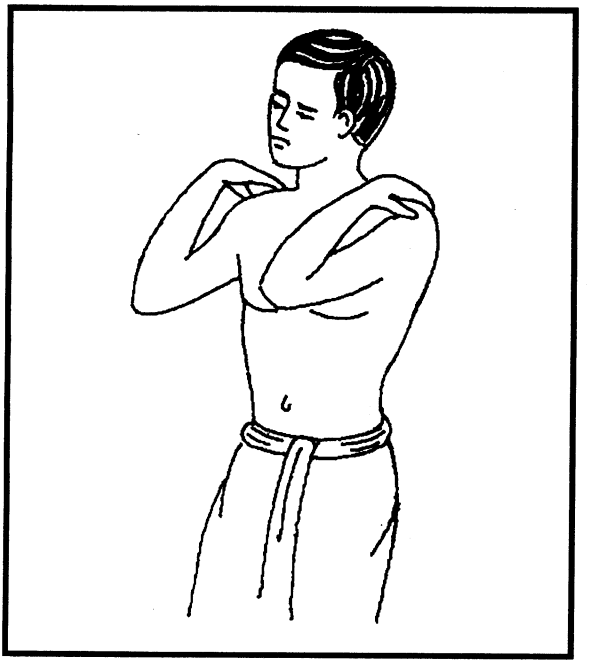
गजदन्त मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मूलाधार, विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, वायु एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, विशुद्धि एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, कान, नाक, गला, मुख स्वरतंत्र, मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

द्वितीय विधि

भरत मुनि के अनुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथ कोहनी से कन्धों तक उठे हुये हों वह गजदन्त मुद्रा है।[89]



गजदन्त मुद्रा-2

लाभ

चक्र– सहस्रार, अनाहत एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** आकाश, वायु एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** पिनियल, थायमस, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** ज्योति, आनन्द एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** ऊपरी मस्तिष्क, आँख, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण तंत्र, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें।

12. अवहित्त-अवहित्थ मुद्रा

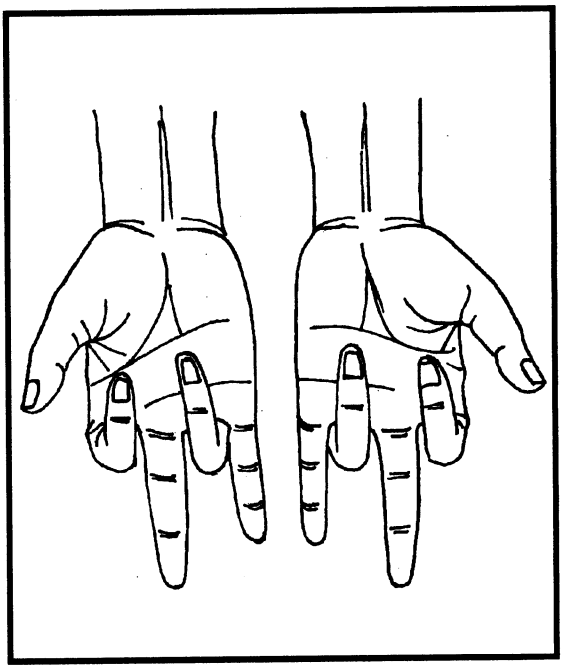
यह नाटकीय मुद्रा भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त की जाती है। हिन्दी शब्द सागर के अनुसार जिस मुद्रा के द्वारा भय, गौरव, लज्जा आदि के कारण चतुराई पूर्वक हर्षादि भावों को छुपाया जाता है उसे अवहित्थ मुद्रा कहते हैं। अवहित्थ का एक अर्थ आकार गुप्ति है। इसका तात्पर्य है कि इस मुद्रा के द्वारा अन्तर्भावों को पूर्णत: व्यक्त न करते हुए गुप्त रखा जाता है।

विद्वज्ञों के अनुसार यह संयुक्त मुद्रा शारीरिक दुर्बलता को दर्शाती है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को सामने की ओर अभिमुख करें, अंगूठा, मध्यमा और कनिष्ठिका को ऊपर की तरफ सीधा रखें तथा तर्जनी और अनामिका को हथेली के भीतर झुकी हुई रखने पर अवहित्थ मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा छाती के आगे धारण की जाती है।



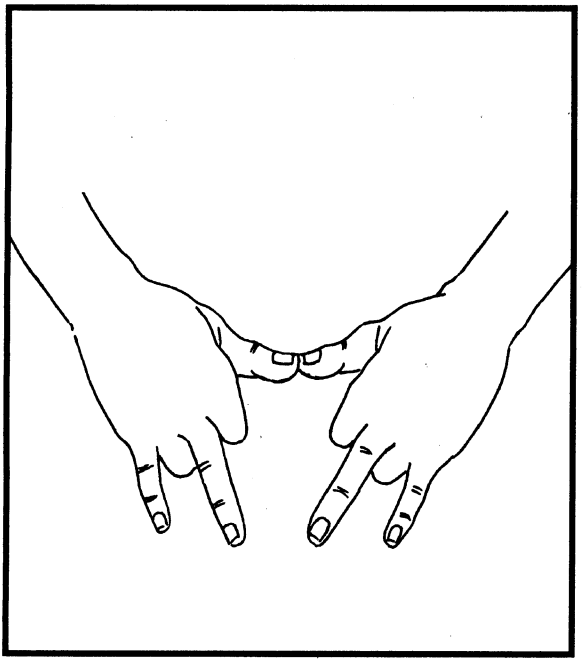
अवहित्त मुद्रा-1

लाभ

चक्र– आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, आँख।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र में वर्णित विधि के अनुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथों को शुकतुण्ड मुद्रा में रचित कर वक्षः स्थल पर सामने से अंचित और धीरे-धीरे अधोमुख आविद्ध कर दिये जाते हैं वह अवहित्त मुद्रा कहलाती है।[92]



अवहित्त मुद्रा-2

लाभ

चक्र– अनाहत, आज्ञा एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** वायु, आकाश एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस, पीयूष, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद, दर्शन एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण तंत्र, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

13. वर्धमान मुद्रा

वर्धमान का शब्दशः अर्थ है बढ़ता हुआ, वर्धनशील। इस मुद्रा में नीचे की ओर अभिमुख हथेलियों को ऊपर की ओर करते हैं इसलिए इस मुद्रा का वर्धमान नाम सार्थक है।

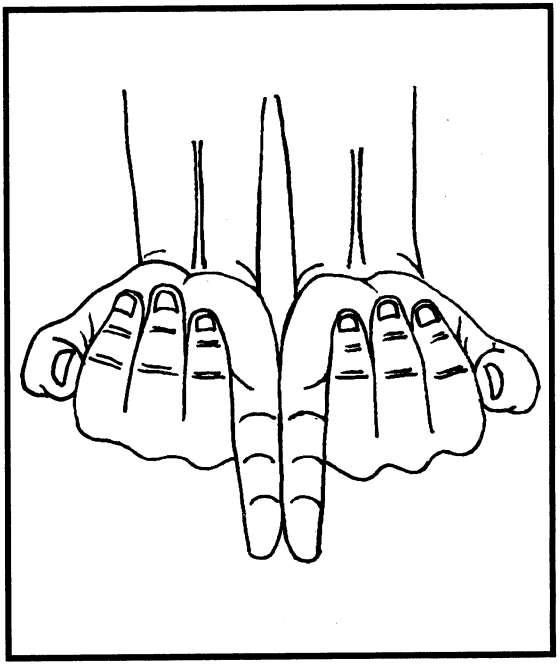
हाथों की एक विशिष्ट मुद्रा को भी वर्धमान संज्ञा दी गई है।

यह संयुक्त मुद्रा नरसिंह नामक अवतार द्वारा राक्षसों को हराने एवं उसके प्रसिद्धि की सूचक है। इसमें हाथों की गति होती है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को नीचे की तरफ करें, फिर तर्जनी, मध्यमा एवं अनामिका अंगुलियों को हथेली की ओर मोड़ें, अंगूठों को तर्जनी के निकट उससे सटाकर रखें तथा कनिष्ठिकाओं को ऊपर की ओर फैलाने से वर्धमान मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा में दोनों हाथ एक-दूसरे के अत्यन्त निकट रहते हैं तथा दोनों को



वर्धमान मुद्रा-1

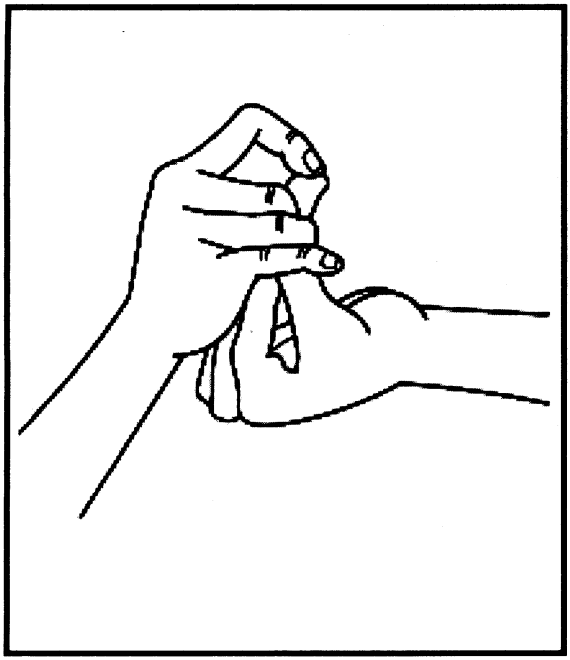
तब तक घुमाया जाता है जब तक हथेलियाँ ऊपर की तरफ न आ जायें।[93]

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

द्वितीय विधि

भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में एक हाथ मुकुल मुद्रा में हो, दूसरा हाथ कपित्थ मुद्रा में हो और मुकुल मुद्रा रचित हाथ को परिवेष्टित करता हो वह वर्धमान मुद्रा है।[94]



वर्धमान मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, प्रजनन अंग, मल-मूत्र अंग।

नृत्त हस्त की 30 मुद्राएँ

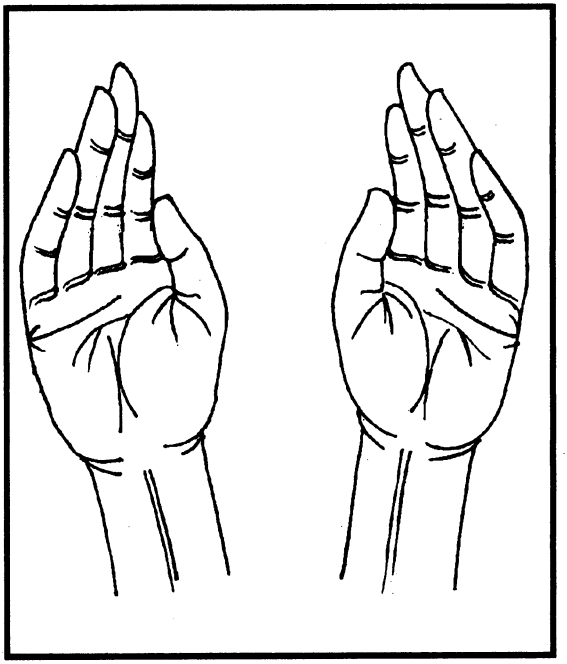
1. चतुरस्र मुद्रा

यहाँ चतुरस्र शब्द के कई अभिप्राय हो सकते हैं जैसे– नृत्य में एक प्रकार का हस्तक, एक प्रकार की ताल, चतुष्कोण, सर्वाङ्गीण आदि। मुद्रा स्वरूप के अनुसार यह मुद्रा दूध दुहने, मथने या चोली आदि बांधने की सूचक है।

यह मुद्रा दोनों हाथों से की जाती है।

प्रथम विधि

दोनों हाथों को ऊपर की ओर उठायें, अंगुलियों और अंगुठों को भी ऊपर की ओर फैलायें, हथेलियों को बाहर की ओर अभिमुख करते एवं ढ़ीला छोड़ते हुए थोड़ा-सा मोड़ें। फिर छाती के निकट धारण करने पर चतुरस्र मुद्रा बनती है।[95]



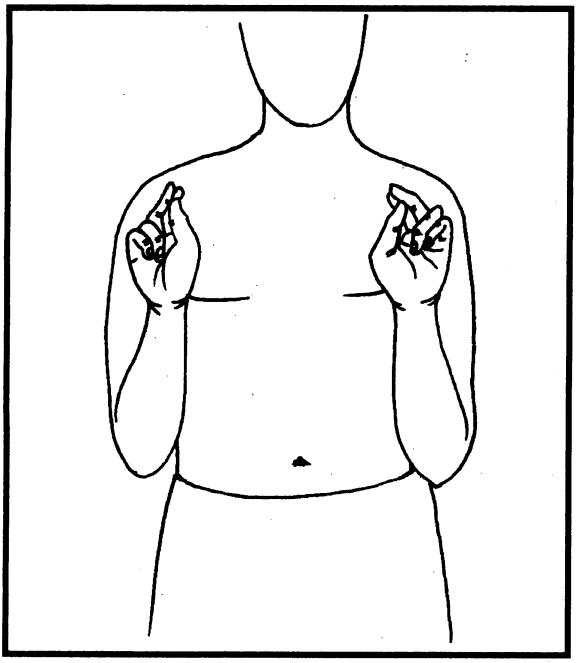
चतुरस्र मुद्रा-1

लाभ

चक्र– आज्ञा एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज **केन्द्र–** दर्शन एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथ खटकामुख मुद्रा में वक्ष:स्थल से आठ अंगुल की दूरी पर सामने की ओर हो तथा दोनों कोहनियाँ और कंधे समान रूप से सन्तुलित हों, वह चतुरस्र मुद्रा है।[96]



चतुरस्र मुद्रा-2

2. उद्वृत्त मुद्रा

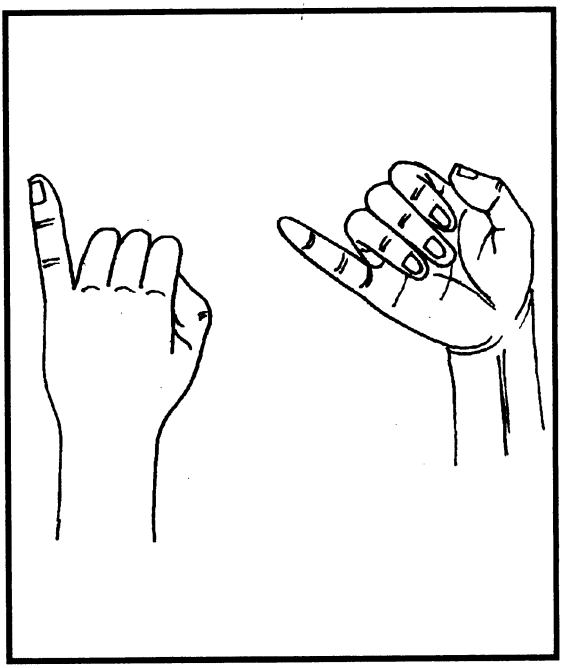
उद्वृत्त शब्द के अनेक अर्थों में यहाँ विचलित, क्षोभ से भरा हुआ, वृद्धि प्राप्त आदि अभीष्ट हैं। क्योंकि विद्वानों के अनुसार यह मुद्रा व्याकुलता, विवेकशीलता आदि भावों को दर्शाती है।

यह नाट्य मुद्रा कलाकार या नर्त्तक भाव दर्शाने के लिए धारण करते हैं। इस मुद्रा में हाथों की हलन-चलन होती है।

प्रथम विधि

बायीं हथेली को नीचे की ओर अभिमुख कर अंगुलियों को अंदर की ओर मोड़ें, अंगूठे को अंगुलियों पर रखें तथा कनिष्ठिका को सीधी रखें।

दायीं हथेली को ऊपर की ओर अभिमुख कर अंगुलियों को हथेली की तरफ मोड़े, अंगूठे को तर्जनी की ओर मोड़े हुए रखें तथा कनिष्ठिका को सीधी रखने पर उदवृत्त मुद्रा बनती है।[97]



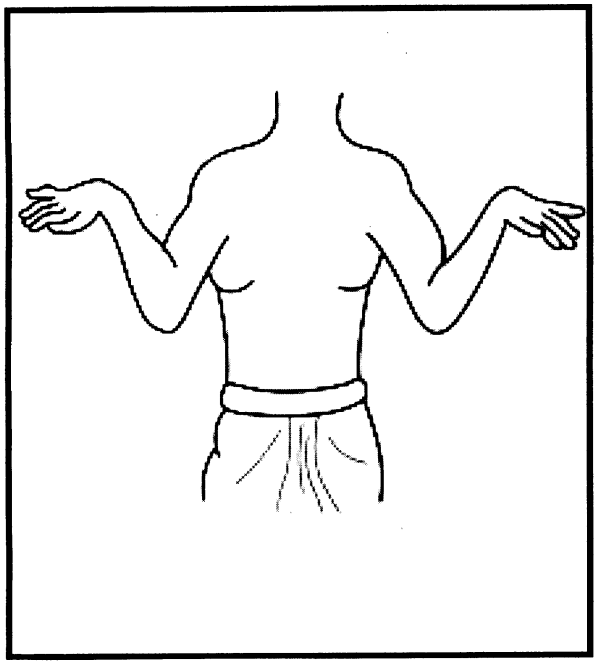
उदवृत्त मुद्रा-1

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** जल तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल **केन्द्र–** स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथों को हंसपक्ष मुद्रा में रचकर तालवृन्त (ताड़ के पंख) के समान पलट देते हैं वह उद्वृत्त मुद्रा है।[98]



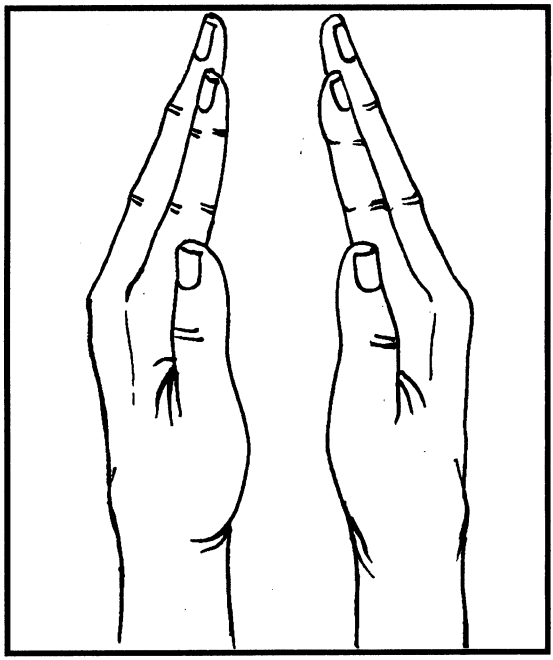
उदवृत्त मुद्रा-2

3. तलमुख मुद्रा

इस मुद्रा को तालमुख मुद्रा के नाम से भी जाना जाता है। यह नाट्य मुद्रा संयुक्त मुद्रा है। मुद्रा चित्र के अनुसार यह किसी चौड़ी वस्तु या खम्भे को घेरने की मुद्रा ज्ञात होती है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को मध्यभाग में एक-दूसरे के सम्मुख करते हुए ऊपर की तरफ सीधी रखें, अंगुलियों और अंगूठों को आकाश की दिशा में उठायें तथा हाथ को ढीला छोड़ते हुए हथेलियों को किंचित झुकाने पर तलमुख मुद्रा बनती है।[99]



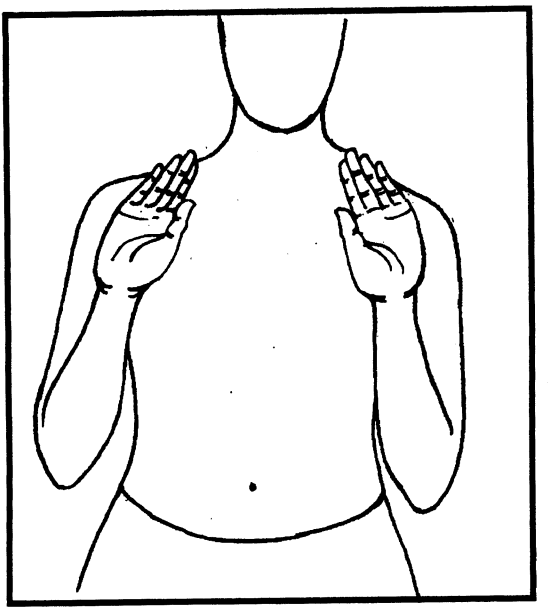
तलमुख मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र**– तैजस, आनंद केन्द्र।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार चतुरस्र मुद्रा में स्थित हाथों को हंसपक्ष मुद्रा में रचित कर तिरछे सामने की ओर रखने से तलमुख मुद्रा बनती है।[100]

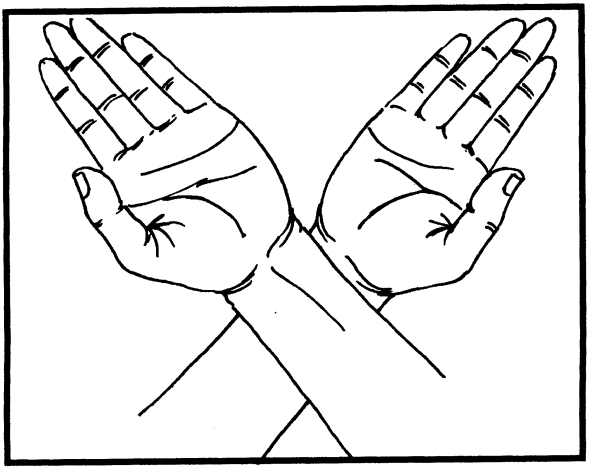


तलमुख मुद्रा-2

4. स्वस्तिक मुद्रा

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथ तलमुख मुद्रा की भाँति मणिबन्ध के ऊपर स्वस्तिक आकार में निर्मित हो वह स्वस्तिक हस्त मुद्रा है।[101]



स्वस्तिक मुद्रा-2

5. विप्रकीर्ण मुद्रा

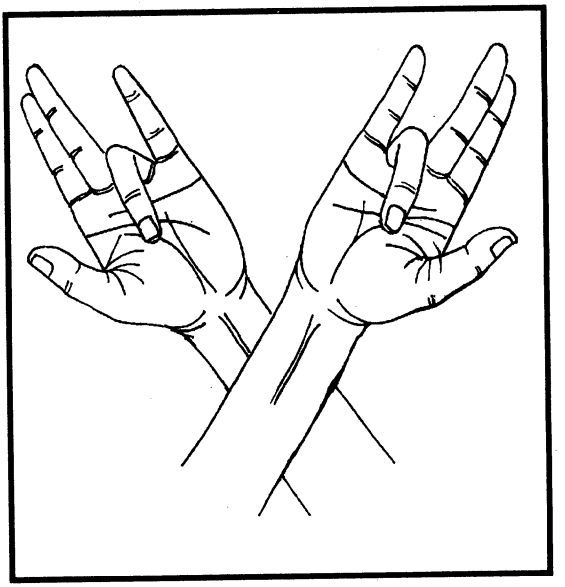
विप्रकीर्ण शब्द का अन्वर्थक अर्थ होता है बिखरा हुआ, छितराया हुआ, इधर-उधर पड़ा हुआ, अस्त व्यस्त, अव्यवस्थित आदि। इस मुद्रा में प्राय: अंगुलियाँ बिखरी हुई रहती है इस कारण इसे विप्रकीर्ण मुद्रा कहा गया है।

यह नाट्य मुद्रा वस्त्रों को खोलने और उनके छोड़ने की मुद्रा है। इस मुद्रा में हाथों को ढीला रखते हैं तथा इसमें गति आवश्यक है।

प्रथम विधि

हथेलियों को थोड़ासा ऊपर उठाते हुए बाहर की ओर करें। तर्जनी, मध्यमा, कनिष्ठिका और अंगूठों को ऊपर की तरफ फैलायें, अनामिकाओं को हथेली के भीतर मोड़ें तथा दोनों हाथों को कलाई पर क्रोस करते हुए रखने से विप्रकीर्ण मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा छाती के बायीं तरफ धारण कर हाथों को तुरन्त अलग कर देते हैं।[102]



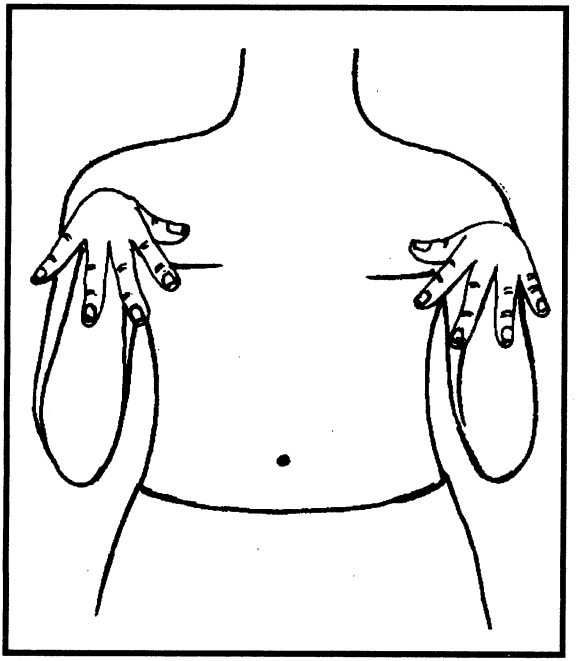
विप्रकीर्ण मुद्रा-1

लाभ

इस मुद्रा के सुपरिणाम तलमुख मुद्रा के समान जानने चाहिए।

द्वितीय विधि

भरतमुनि के अनुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथ तलमुख मुद्रा की भाँति पृथक्-पृथक् हों, मणिबन्ध के ऊपर रखे हुए न हों वह विप्रकीर्ण मुद्रा है।[103]

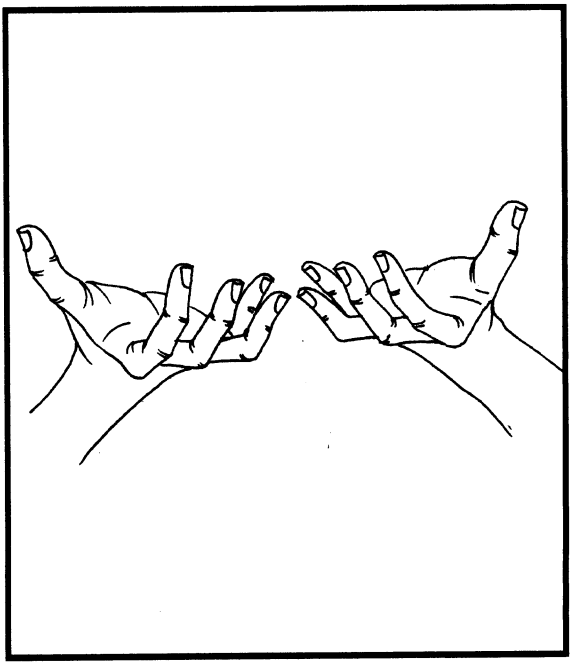


विप्रकीर्ण मुद्रा-2

6. अराल मुद्रा

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के मतानुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथ अलपल्लव मुद्रा में ऊर्ध्वमुख एवं पद्मकोश मुद्रा में परिवर्तित हो वह अराल मुद्रा है।[104]



अराल मुद्रा-2

लाभ

चक्र– अनाहत, मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु, अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद, तैजस एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, रक्त संचरण तंत्र, नाक, कान, गला, मुँह, स्वर यंत्र, स्नायु तंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

7. खटकामुख मुद्रा

कटकामुख मुद्रा का ही एक दूसरा नाम खटकामुख है। असंयुक्त हस्त मुद्राओं के अन्तर्गत इस सम्बन्ध में विश्लेषण कर चुके हैं।

द्वितीय विधि

किन्हीं के मतानुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथ अलपल्लव मुद्रा में ऊर्ध्वमुख, पद्मकोश मुद्रा में परिवर्तित और मणिबन्ध से संयुक्त हो वह अराल मुद्रा है तथा मणिबन्ध से विच्युत हो वह खटकामुख मुद्रा है।[105]

8. आविद्ध वक्र मुद्रा

आविद्ध शब्द छिदा हुआ, भेदा हुआ, फेंका हुआ, कुटिल, निराश आदि अर्थों को सूचित करता है।[106]

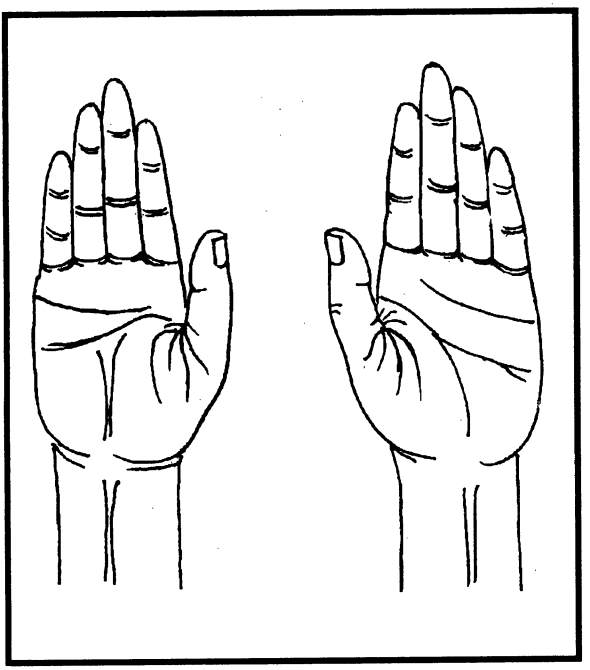
यहाँ आविद्ध से तात्पर्य निराशा हो सकता है क्योंकि इस मुद्रा में हाथों की जो स्थिति है वह निराशाजन्य प्रतीत होती है। निराश व्यक्ति की हस्त मुद्रा इसी तरह की होती है।

किन्हीं के मतानुसार यह मुद्रा दुबलापन, लोकनृत्य, भिन्नता आदि की सूचक है। तदनुसार दुर्बल व्यक्ति प्राय: नैराश्य भावों में जीता है।

इस मुद्रा में अंगूठे सीधे रहते हुए भी किंचित टेढ़े दिखते हैं। स्पष्टतया जिस मुद्रा के द्वारा निराशापूर्ण भावों को किंच वक्रता के साथ प्रदर्शित किया जाता है उसे आविद्ध वक्र मुद्रा कहते हैं।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को सामने की ओर अभिमुख करें, अंगुलियों एवं अंगूठों



आविद्ध वक्र मुद्रा-1

को ऊपर की ओर सीधा रखें, फिर दोनों हाथों को एक-दूसरे के निकट लाएं किन्तु स्पर्श नहीं करवाएँ, तब आविद्ध वक्र मुद्रा बनती है।

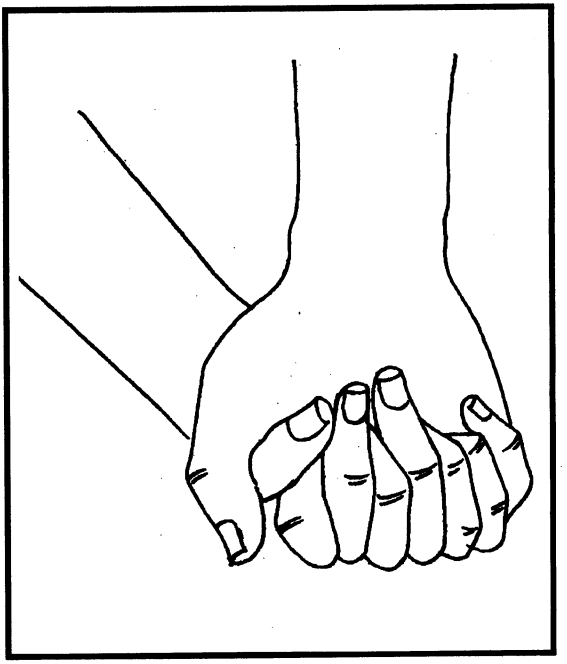
यह मुद्रा छाती के सामने धारण की जाती है तथा इसमें कोहनियों को शरीर से थोड़ा दूर रखा जाता है।[107]

लाभ

चक्र– आज्ञा एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं विशुद्धि तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, मुख, कान, नाक, गला, स्वर तंत्र।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार दोनों हाथों की भुजाओं, स्कन्धों एवं कोहनियों के अग्रभागों को टेढ़ा घुमा दिया जाये और हथेलियों को पराङ्मुख और अधोमुख करके आविद्ध कर दिया जाये, वह आविद्ध वक्र मुद्रा कहलाती है।[108]



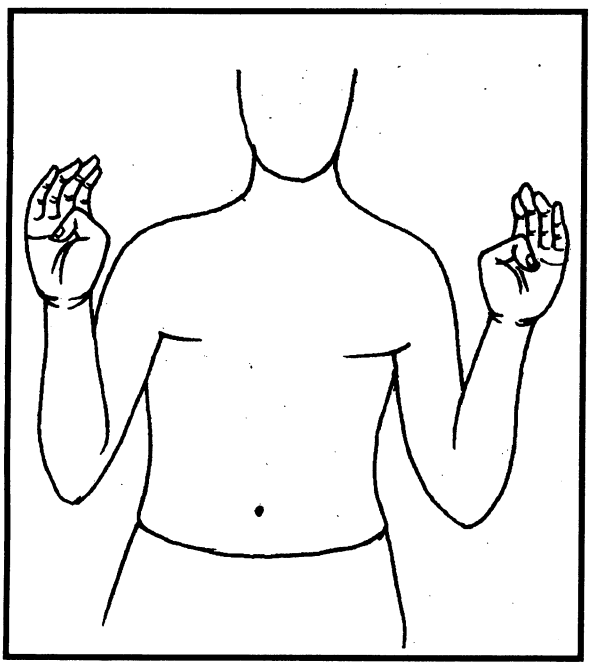
आविद्ध वक्र मुद्रा-2

9. सूचीमुख मुद्रा

सूचीमुख और सुच्यास्य दोनों शब्द एक ही अर्थ का बोध कराते हैं। असंयुक्त हस्त मुद्राओं में इस मुद्रा नाम की पर्याप्त विवेचना कर चुके हैं।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र में वर्णित विधि के अनुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथ सर्पशीर्ष मुद्रा में रचित और अंगुठे हथेली के मध्य तिरछे प्रसरित हो वह सूचीमुख मुद्रा है।[109]



सूचीमुख मुद्रा-2

10. रेचित मुद्रा

साफ किया गया, घोड़े की एक चाल, जिससे मल आदि बाहर किया गया हो इत्यादि क्रियाएँ रेचित कहलाती हैं।

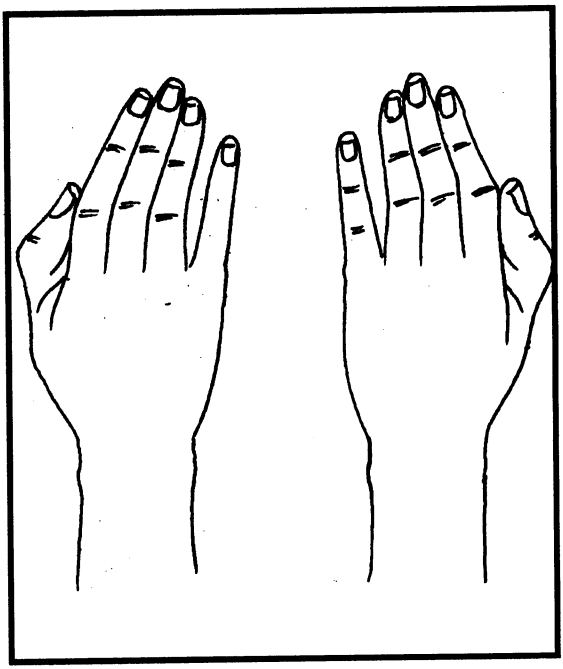
यहाँ रेचित मुद्रा से तात्पर्य नृत्य में हाथ हिलाने का एक प्रकार जानना चाहिए।

मुद्रा चित्र के अनुसार यह संयुक्त मुद्रा किसी बालक के द्वारा किसी चित्रित पट को धारण करने की सूचक है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को सामने की तरफ करते हुए कुछ ऊपर उठायें। फिर तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को किंचित हथेली की ओर झुकायें, अंगूठे को तर्जनी से सटाकर रखें तथा कनिष्ठिका को बाहर की तरफ सीधी रखने पर रेचित मुद्रा बनती है।

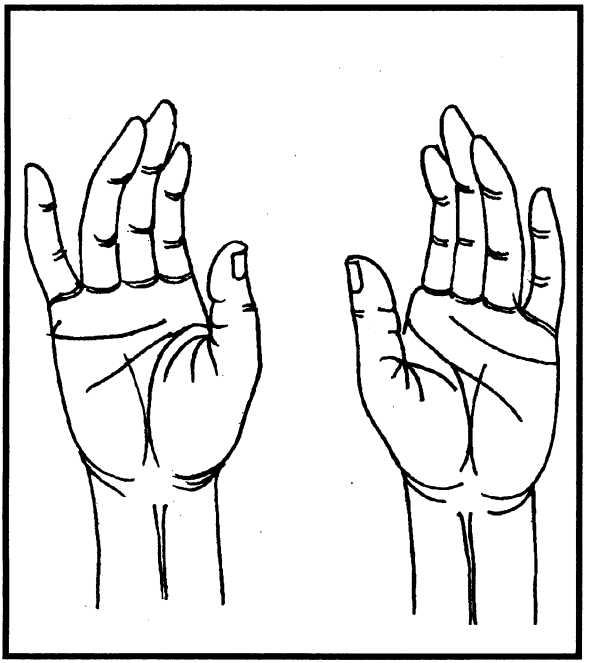
यह मुद्रा शरीर का स्पर्श नहीं करते हुए धड़ के निकट धारण की जाती है।[110]



रेचित मुद्रा-1

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जब दोनों हाथों को हंसपक्ष मुद्रा में प्रदर्शित कर शीघ्रता से घुमाया जाता है तब रेचित मुद्रा बनती है।[111]



रेचित मुद्रा-2

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व**– पृथ्वी एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र**– शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, मेरुदण्ड, पाँव।

11. अर्ध रेचिता मुद्रा

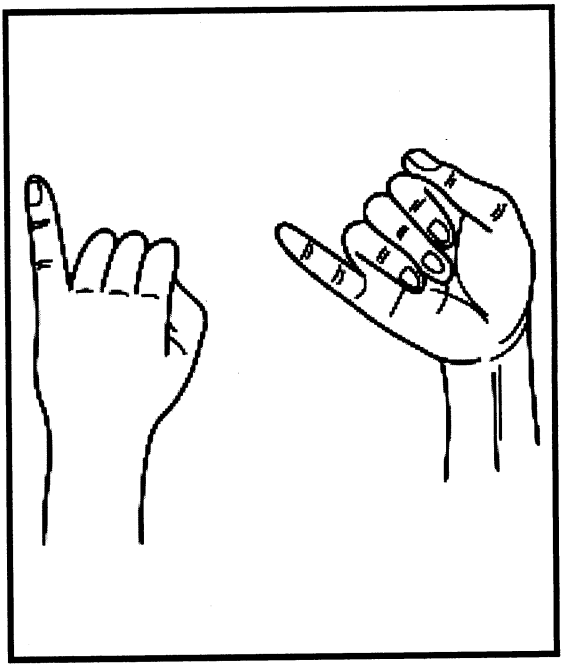
नृत्य में हाथों की अनेक मुद्राएँ की जाती है उनमें हस्त विन्यास की एक पद्धति "रेचिता" कहलाती है।

इस मुद्रा में दोनों हाथ अर्ध रूप में दिखते हैं इसलिए इसे अर्धरेचिता मुद्रा कहा गया है। निम्न चित्रानुसार यह मुद्रा आमंत्रण देने, उपहार देने एवं गुप्त रखने के भाव को दर्शाती है।

प्रथम विधि

दायीं हथेली को आकाश की ओर तथा बायीं हथेली को नीचे की ओर अभिमुख करें, फिर तर्जनी, मध्यमा, अनामिका अंगुलियों को हथेली की तरफ मोड़ दें, कनिष्ठिका को ऊपर उठी हुई और आगे की तरफ तनी हुई रखें तथा अंगूठों को तर्जनी पर विश्राम करता हुआ रखने से अर्धरेचिता मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा में दोनों हाथ निकट रहते हैं। यह मुद्रा धड़ के आगे की जाती है।[112]



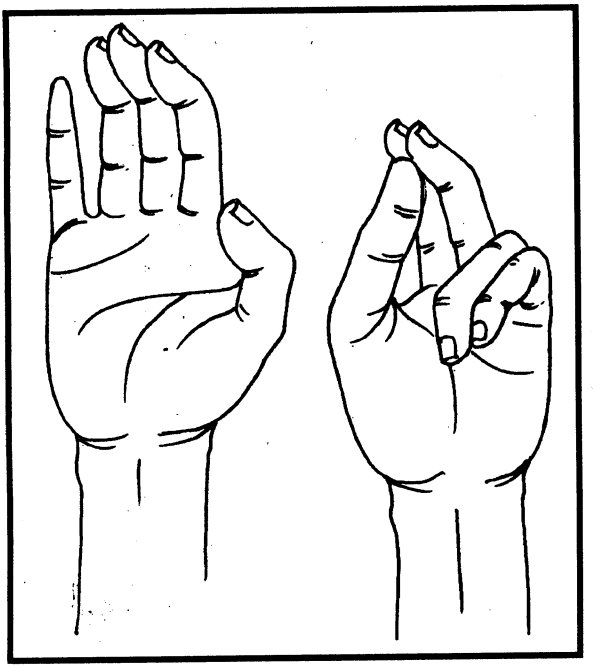
अर्ध रेचिता मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज **केन्द्र–** तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ी तंत्र, नाक, कान, गला, मुख, स्वर यंत्र।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के आधार पर जिस मुद्रा में बायां हाथ चतुरस्र मुद्रा में एवं दायां हाथ रेचित मुद्रा में स्थित हो वह अर्धरेचित मुद्रा कहलाती है।[113]



अर्ध रेचिता मुद्रा-2

12. उत्तानवंचित मुद्रा

उत्तान शब्द से ताना हुआ, फैलाया हुआ, ऊर्ध्वमुख आदि कई अर्थों का बोध होता है।

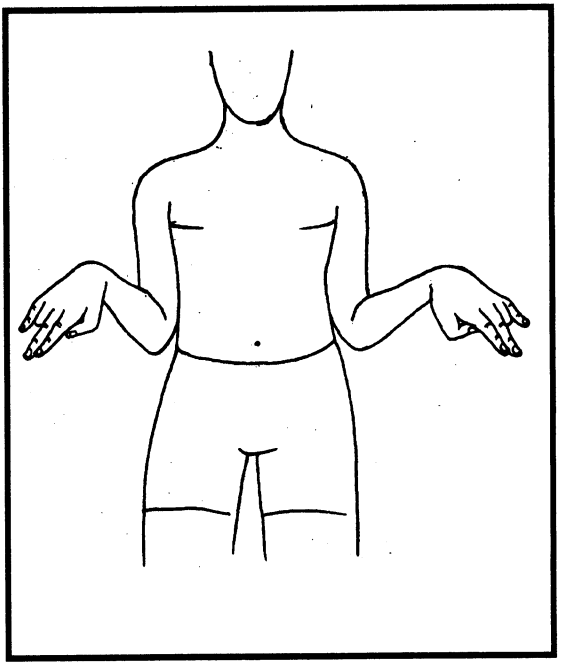
वंचित अर्थात विमुख। इस मुद्रा में दोनों हाथ एवं अंगुलियाँ तनी हुई, फैली हुई और एक दूसरे के विमुख रहती है। इसलिए इसे उत्तानवंचित मुद्रा

कहा गया है।

यह मुद्रा नृत्तहस्त मुद्राओं के रूप में प्रयुक्त की जाती है।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में कोहनियाँ और कन्धे अंचित (शिथिल) हों और दोनों हाथ त्रिपताक मुद्रा में होकर किंचित तिरछे हों वह उत्तानवंचित मुद्रा है।[114]



उत्तानवंचित मुद्रा-2

13. पल्लव मुद्रा

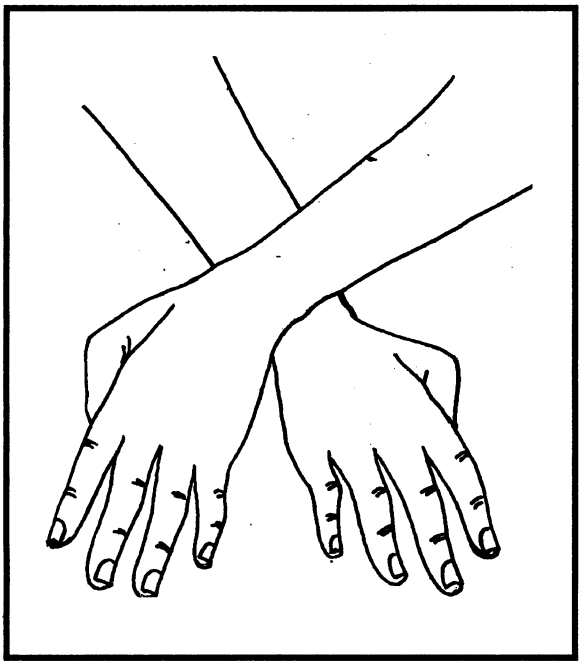
टहनी में लगे हुए नवीन कोमल पत्ते जो प्राय: रक्त होते हैं उसे पल्लव कहा जाता है। हिन्दी कोश में नृत्य की एक विशेष प्रकार की स्थिति को भी पल्लव कहा है।

मुद्रा स्वरूप के अनुसार इस मुद्रा में दोनों हाथ नये खिले हुए पत्तों के समान दिखते हैं अत: इसे पल्लव मुद्रा कहा गया हैं।

नृत्य में यह मुद्रा नये विकसित पत्तों अथवा नयी दुल्हन आदि की सूचक हो सकती है जो पल्लव की भाँति कोमलांगी होती है।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के मतानुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथ पताक मुद्रा में रचित और मणिबन्ध से युक्त होकर स्थित हो वह पल्लव मुद्रा है।[115]



पल्लव मुद्रा-2

14. नितम्ब मुद्रा

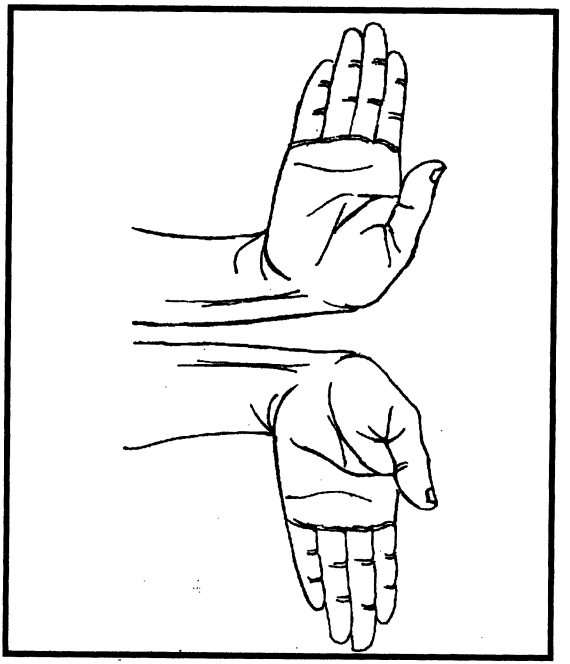
स्त्रियों के कटि (कमर) का अधोभाग नितम्ब कहलाता है। इस मुद्रा के माध्यम से नितम्ब की स्थिति को दर्शाया जाता है इसलिए इसका नाम नितम्ब मुद्रा है।

यह संयुक्त मुद्रा नाटक आदि में कलाकारों के द्वारा की जाती है। यह मुद्रा उल्लास, आनन्दातिरेक, अवरोहण और थकावट की सूचक है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को ऊपर की तरफ करें, फिर शरीर से दूर ले जाते हुए कि स्थिति में रखें तथा अंगुलियों और अंगूठों को समभाग में फैलाये रखने पर नितम्ब मुद्रा बनती है।[116]

इस मुद्रा में दोनों हाथ अपनी-अपनी दिशा की ओर मुड़े हुए रहते हैं।



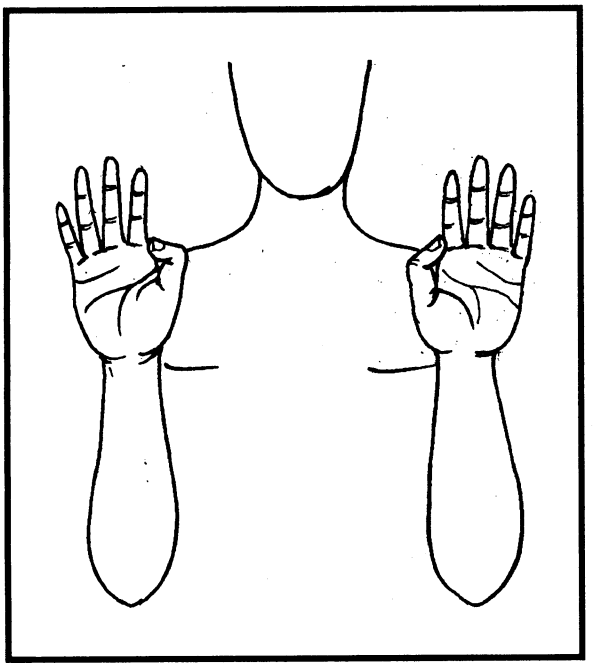
नितम्ब मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मूलाधार, मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ी संस्थान।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथ पताका मुद्रा में रचित और कन्धों से आगे कुछ दूरी पर स्थित हों वह नितम्ब मुद्रा है।[117]



नितम्ब मुद्रा-2

15. केशबंध मुद्रा

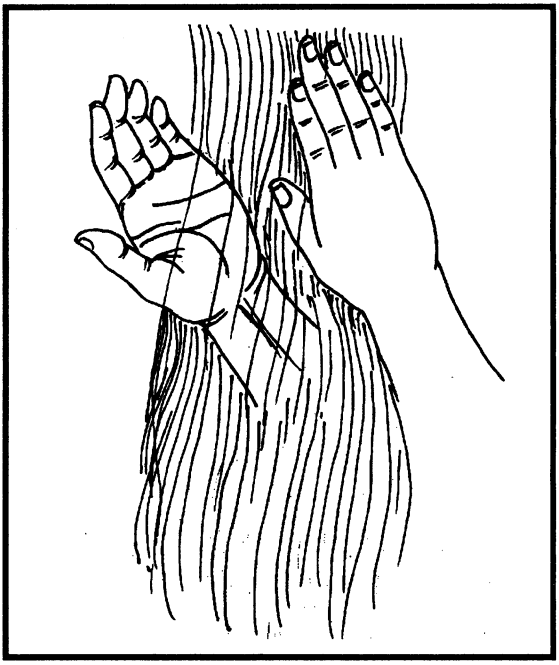
मुद्रा नाम के अनुसार जिसमें केशों को बांधने की क्रिया की जाती है उसे केशबंध मुद्रा कहा जा सकता है।

बृहद्हिन्दीकोश के अनुसार नृत्य में एक हस्तक, जिसमें हाथों को कंधे पर घुमाते हुए कमर पर लाते हैं और फिर ऊपर सिर की ओर ले जाते हैं वह केशबंध कहलाता है।[118]

यह मुद्रा केश संवारने या बनाने की सूचक है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को शरीर के मध्यभाग की तरफ लायें, अंगुलियों और अंगूठों को फैलाये हुए और पीछे की ओर हल्के से झुकाये हुए रखें। तदनन्तर इस स्थिति में पाणियुग्म को मस्तक के पीछे रखने पर केशबंध मुद्रा बनती है।[119]



केशबंध मुद्रा-1

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं आनंद केन्द्र।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथ केश-प्रदेश से विनिष्क्रान्त होकर पताक मुद्रा में दोनों बाहुओं पर सीधे रखे गये हों वह केशबंध मुद्रा है।[120]

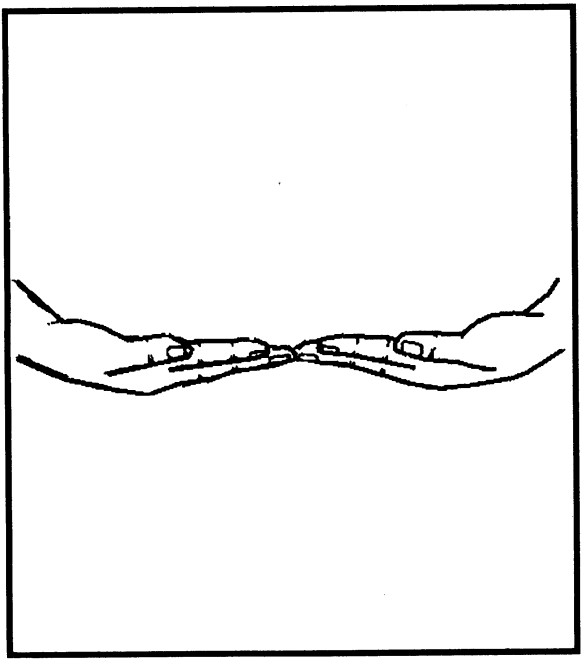
16. लताहस्त मुद्रा

जमीन या किसी आधार पर फैलने वाली बेल लता कहलाती है। लता किसी न किसी का आधार पाकर ही आगे बढ़ती है उसी प्रकार इस मुद्रा में दोनों हाथों की अंगुलियों के अग्रभागों को स्पर्शित कर उन्हें मिलाते हुए एक आधार बनाया जाता है, इसी कारण इस मुद्रा का नाम लताहस्त है।

यह संयुक्त मुद्रा रेखा अथवा संगठन की सूचक है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को ऊपर की तरफ करते हुए अंगुलियों और अंगुठों को मध्यभाग की ओर लायें तथा अंगुलियों के अग्रभागों का परस्पर में स्पर्श करवाने



लताहस्त मुद्रा-1

पर लताहस्त मुद्रा बनती है।[121]

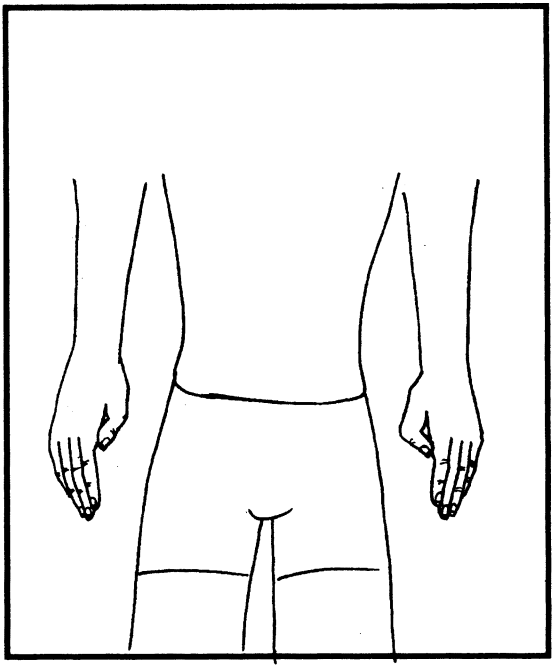
इस मुद्रा में हाथों को जंघा के सन्मुख रखते हैं।

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड **केन्द्र–** तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, आँतें, नाक, कान, गला, मुख, स्वर तंत्र।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के मतानुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथ पताक मुद्रा में नीचे फैलाये हुए और पार्श्व में संस्थित हो उसे लताहस्त मुद्रा कहा जाता है।[122]



लताहस्त मुद्रा-2

17. करिहस्त/गजहस्त मुद्रा

करि का अर्थ है हाथी। इस मुद्रा में एक हाथ को हाथी के सूंड़ की भाँति लहराते हुए दर्शाया जाता है इसलिए यह करिहस्त नाम की मुद्रा है।

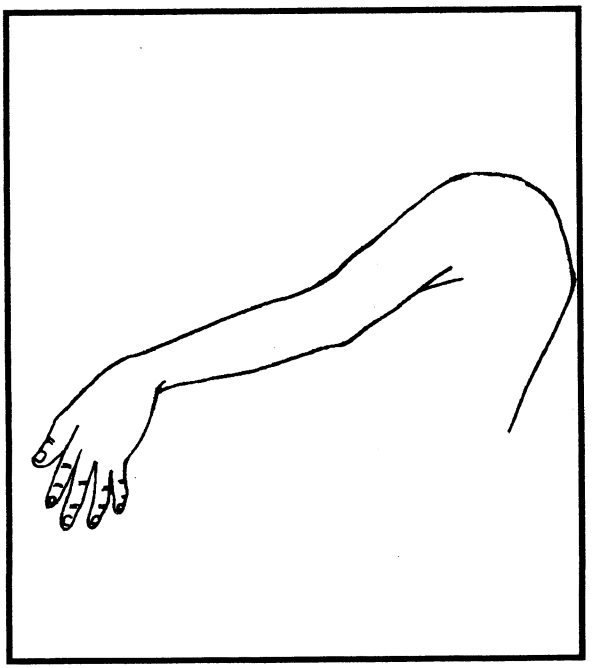
यह असंयुक्त मुद्रा हिन्दु परम्परा में तो प्रचलित है ही, किन्तु नृत्य-नाटकों में अधिक प्रयुक्त होती है।

इस मुद्रा को हाथी की सूंड और उसके शक्ति की सूचक माना गया है। यह नृत्य मुद्रा विशेष रूप से शिव नटराज और अन्य मूर्तियों में देखी जाती है। कुछ लोगों के द्वारा यह मुद्रा सौन्दर्य मुद्रा के रूप में भी देखी जाती है।

यह मुद्रा अत्यन्त मनोहर लगती है।

प्रथम विधि

बायें हाथ को शरीर के आगे से निकालते हुए कोहनी और कलाई के पास हल्का सा मोड़ें तथा हाथ को ढ़ीला रखते हुए हथेली को नीचे की तरफ झुकाने पर करिहस्त मुद्रा बनती है।[123]



करिहस्त मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन ग्रंथि **केन्द्र–** शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, मेरूदण्ड, पाँव।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में एक हाथ लतामुद्रा में समुन्नत होकर एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व में चलाया जाता है और दूसरा हाथ त्रिपताक मुद्रा में कर्ण के समीप होता है वह करिहस्त मुद्रा कहलाती है।[124]



करिहस्त मुद्रा-2

18. पक्षवंचित मुद्रा

पक्ष शब्द के अनेक अर्थ हैं पंख, रथादि का पार्श्व, दरवाजे का पल्ला, नदी का किनारा, बगला आदि। वंचित का अर्थ तो स्पष्ट ही है।

इस मुद्रा में दोनों हाथ उभय पार्श्वों में रखे जाते हैं। तदनुसार यहाँ पक्ष से अभिप्राय रथादि का पार्श्व हो सकता है। जिस प्रकार रथ के दोनों पार्श्व (पहिये) परस्पर में मिल नहीं सकते, दोनों अपने स्थान पर स्थिर रहकर ही रथ वहन में उपयोगी बनते हैं ठीक उसी प्रकार इस मुद्रा में दोनों हाथ अलग-अलग दिशा में रहते हैं।

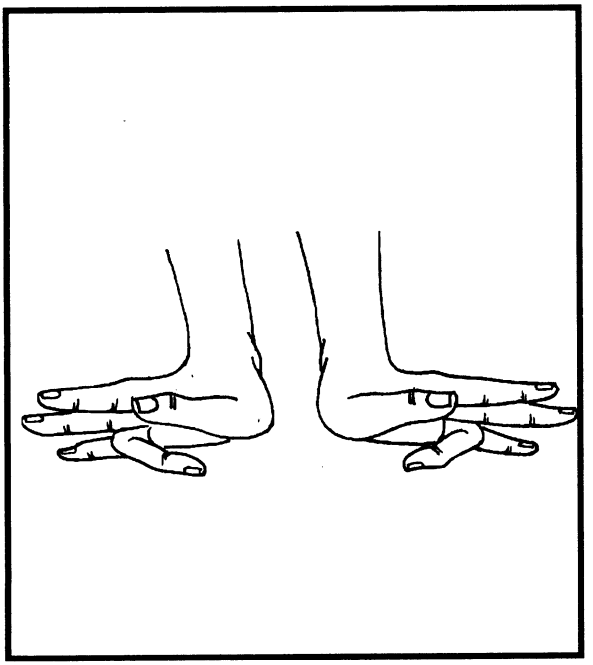
दर्शाये चित्र के अनुसार पक्ष शब्द पंख अर्थ का वाचक भी हो सकता है, क्योंकि इस मुद्रा चित्र में दोनों हाथ उड़ते हुए पंख के समान दिखते हैं।

यह नाट्य मुद्रा उदासीनता एवं जंघाभाग को हिलाने की सूचक है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को कटि प्रदेश के समभाग में आगे की तरफ लायें, अनामिका को किंचित हथेली की ओर मोड़ें तथा शेष अंगुलियों को अपनी दिशा में फैलाने पर पक्षवंचित मुद्रा बनती है।[125]

इसमें हथेलियाँ नीचे की दिशा में रहती है।



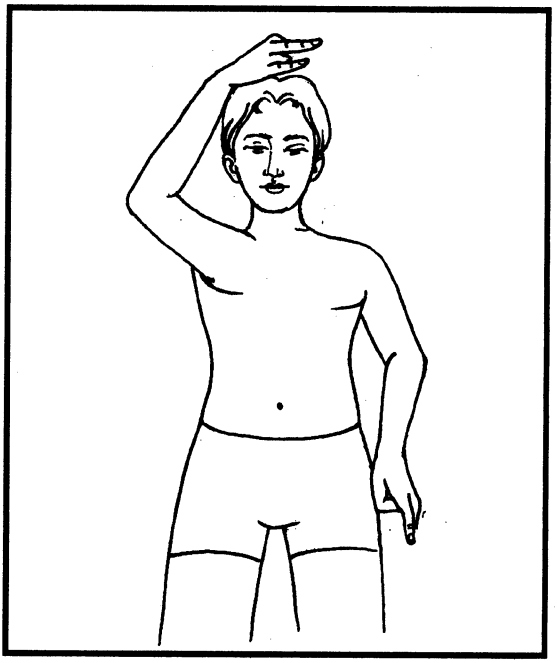
पक्षवंचित मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज **केन्द्र–** शक्ति एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गूर्दे, पैर, पाचन तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जब दोनों हाथों को त्रिपताक मुद्रा में रचकर कटि और शीर्ष स्थान पर रखा जाता है तब पक्षवंचित मुद्रा बनती है।[126]



पक्षवंचित मुद्रा-2

19. पक्षप्रद्योत मुद्रा

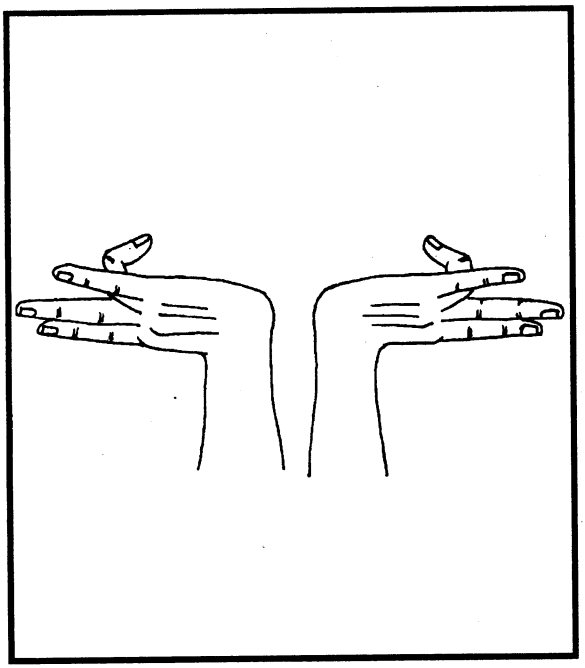
यहाँ पक्ष का अर्थ है पंख और प्रद्योत का अर्थ है चमकना। एक प्रकार का पक्षी जिसके पंख चमकते रहते हैं उस तरह की आकृति निर्मित करना पक्षप्रद्योत मुद्रा कहलाती है।

लगभग यह मुद्रा पक्षवंछित मुद्रा के समान है। पक्षवंछित में हथेलियाँ नीचे की तरफ रहती है जबकि पक्ष प्रद्योत में हथेलियाँ ऊपर की तरफ रहती है।

यह संयुक्त मुद्रा निराशा और अनजानेपन की सूचक मानी गई है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को नितम्ब के समभाग में आगे की ओर लायें, फिर हथेलियों के मुखभाग को ऊपर की तरफ रखें, अनामिका को हल्के से हथेली की ओर मोड़ें तथा शेष अंगुलियों एवं अंगूठों को अपनी दिशा में फैलाये रखने पर पक्षप्रद्योत मुद्रा बनती है।[127]



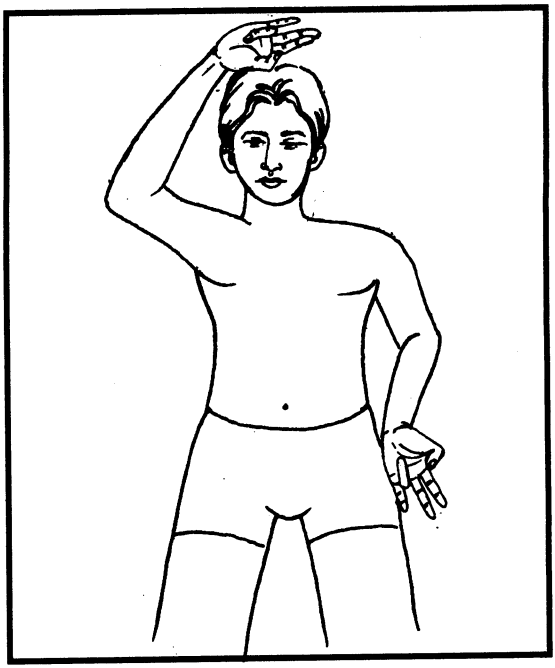
पक्षप्रद्योत मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथ पक्षवंचित मुद्रा में रचित कर परावर्तित कर दिये जाते हैं वह पक्षप्रद्योत मुद्रा कहलाती है।[128]



पक्षप्रद्योत मुद्रा-2

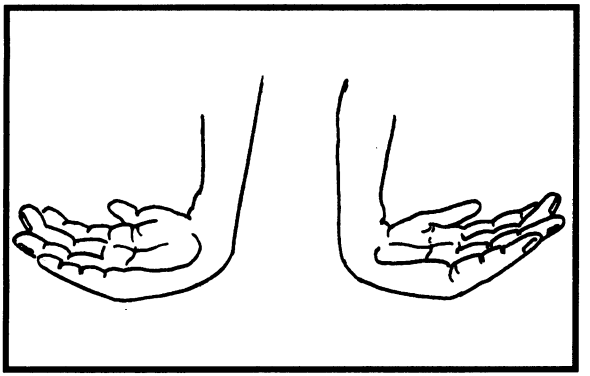
20. गरूड़ पक्ष मुद्रा

गरूड़ पक्ष का सामान्य अर्थ है गरूड़ पक्षी के पंख। जिस नृत्य में कोहनी टेढ़ी करके दोनों हाथ कमर पर रखने के भाव प्रदर्शित किये जाते हैं उसे गरूड़ पक्ष मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा गरूड़ के पंख के समान प्रतिभासित होती है अत: गरूड़ पक्ष नाम है।

यह नाटक आदि में दोनों हाथों से की जाती है। विद्वज्ञों के अभिमत से यह उत्तमता की सूचक है।

प्रथम विधि

दोनों हाथों की कलाईयों को मोड़ते हुए हथेलियों को नितम्ब के पार्श्व भागों में ऊपर की तरफ रखें। अंगुलियों को अपनी दिशा की ओर फैलायें तथा अंगूठों को अंगुलियों से पृथक जाते हुए दर्शाने पर गरूड़ पक्ष मुद्रा बनती है।[129]



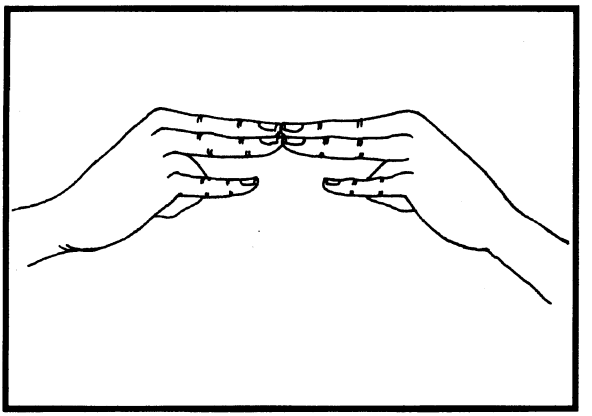
गरुड़पक्ष मुद्रा-1

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान, मणिपुर एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** जल, अग्नि एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** स्वास्थ्य, तैजस एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** गोनाड्स, एड्रीनल्स, पैन्क्रियाज एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, मस्तिष्क एवं आंखें।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जब पक्षवंचित मुद्रा में रचित हथेलियों को अधोमुख करके आविद्ध कर दिया जाता है तब गरूड़ पक्ष मुद्रा बनती है।[130]



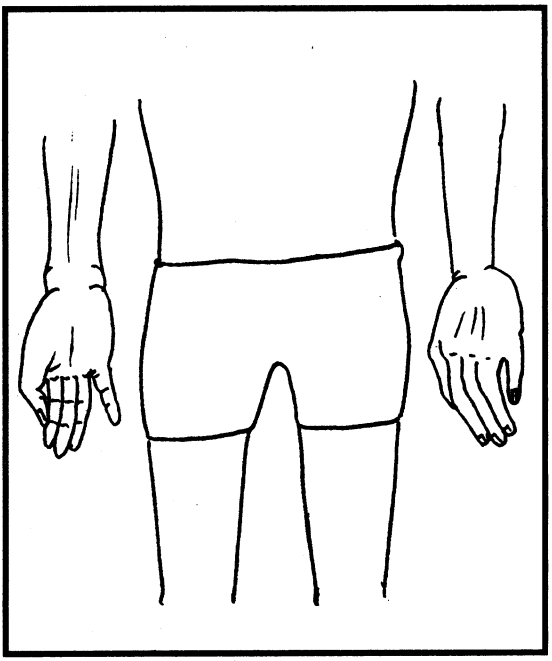
गरुड़पक्ष मुद्रा-2

21. दण्ड पक्ष मुद्रा

यह नृत्तहस्त मुद्रा संयुक्त हाथों से की जाती है। इस मुद्रा में दोनों भुजाओं को सीधा फैलाकर अंगुलियों को पंख की आकृति देते हैं उससे वह रचना दण्डपक्ष की भाँति प्रतीत होती है अत: इसे दण्ड पक्ष मुद्रा कहा गया है।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथों को हंस पक्ष मुद्रा में रखकर क्रमश: व्यावर्तित और परावर्तित कर दिये जाते हैं और भुजाओं को सीधा फैला दिया जाता है वह दण्ड पक्ष मुद्रा कहलाती है।[131]



दण्ड पक्ष मुद्रा-2

लाभ

चक्र– सहस्रार, आज्ञा एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं वायु तत्त्व **केन्द्र–** ज्ञान, ज्योति एवं विशुद्धि केन्द्र **ग्रन्थि–** पीयूष, पिनियल, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड **विशेष प्रभावित अंग–**मस्तिष्क, आँखें, स्नायु तंत्र, नाक, कान, गला, मुँह, स्वर यंत्र आदि।

22. ऊर्ध्वमण्डलिन् मुद्रा

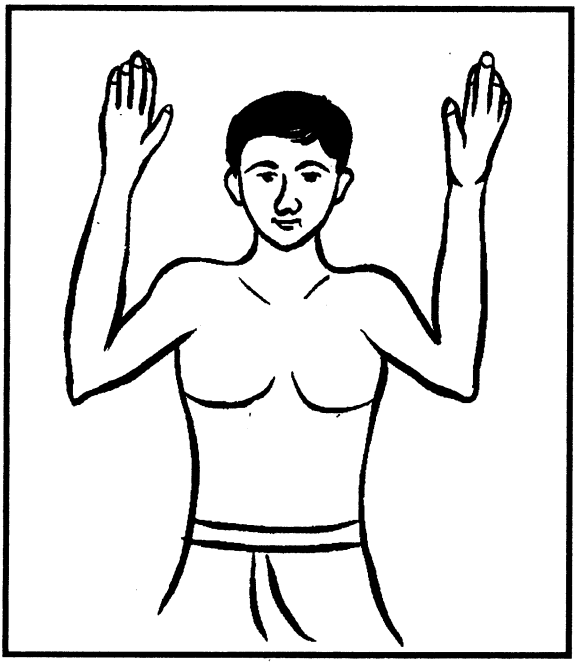
ऊर्ध्व अर्थात ऊपर, मण्डलिन् अर्थात मण्डल, घेरा, अथवा गोलाकार।

इस मुद्रा में दोनों हाथ दण्ड पक्ष मुद्रा में निर्मित कर ऊपर की ओर विवर्तित अर्थात गोल घुमाए जाते हैं अत: इसे उर्ध्वमण्डलिन् मुद्रा कहा गया है।

यह मुद्रा अपने नाम के अनुसार हाव-भाव प्रस्तुत करती है।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के मतानुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथ दण्ड पक्ष में रचित कर ऊपर की ओर गोल घुमाए जाते हैं वह ऊर्ध्वमण्डलिन् मुद्रा कहलाती है।[132]



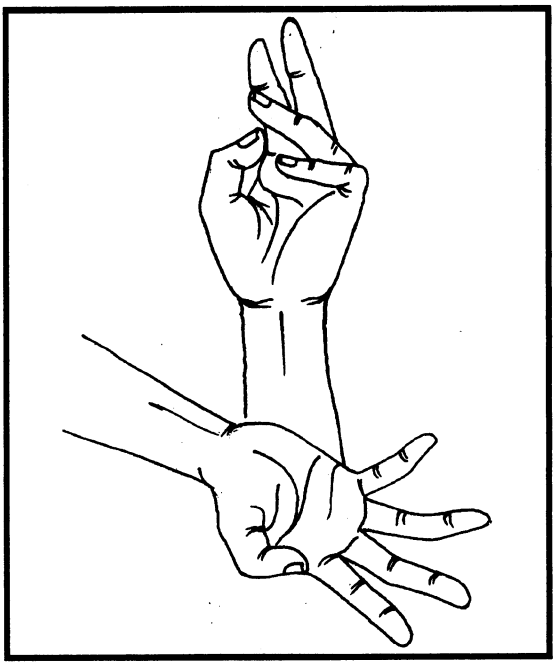
उर्ध्वमण्डलिन् मुद्रा-2

23. पार्श्वमण्डलिन् मुद्रा

शरीर का दायां अथवा बायां हिस्सा पार्श्व कहलाता है। यह मुद्रा बनाते समय ऊर्ध्वमण्डलिन् मुद्रा में स्थित हाथों को एक पार्श्व में रख देते हैं इसलिए यह मुद्रा पार्श्वमण्डलिन् कहलाती है।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र में वर्णित विधि के अनुसार जब ऊर्ध्वमण्डलिन् हाथों को एक पार्श्व में रख दिया जाता है तो पार्श्वमण्डलिन् मुद्रा बनती है।[133]



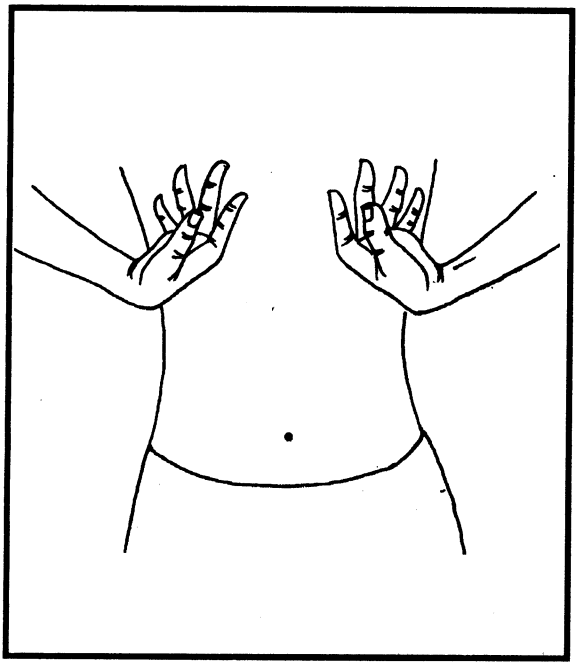
पार्श्वमण्डलिन् मुद्रा-2

24. उरोमण्डलिन् मुद्रा

हृदय को उर कहते हैं। नाट्य शास्त्र के अनुसार इस मुद्रा में दोनों हाथों को वक्ष:स्थल पर घुमाते हुए स्थिर कर दिया जाता है। अत: इस मुद्रा को उरो मण्डलिन् कहा गया है।

द्वितीय विधि

जिस मुद्रा में एक हाथ उद्वेष्टित और दूसरा हाथ अपवेष्टित हो फिर उन दोनों को वक्ष:स्थल पर घुमाते हुए रख दिया जाता हो तो वह उरोमण्डलिन् मुद्रा कहलाती है।[134]



उरोमण्डलिन् मुद्रा-2

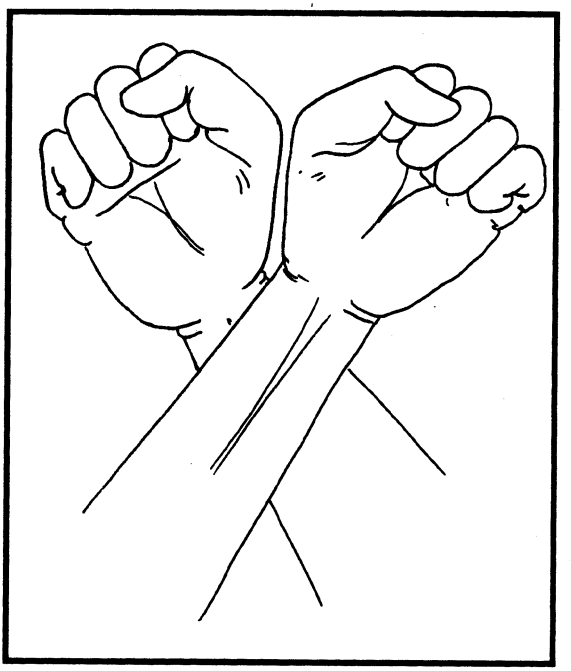
25. मुष्टि-स्वस्तिक मुद्रा

इस मुद्रा में दोनों हाथों को मुट्ठि रूप में बनाकर कलाई के स्तर पर उन्हें Cross किया जाता है जिससे यह Cross स्वस्तिक की भाँति प्रतीत होता है अतः इसे मुष्टि स्वस्तिक मुद्रा कहा जाता है।

यह नाट्य मुद्रा विनय, भीरूपन या मुक्के की सूचक है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को उदर के समभाग में आगे की ओर लायें, अंगुलियों को मुट्ठी रूप में मोड़कर अंगुठों को उन पर मोड़े हुए रखें। फिर दोनों हाथों को कलाई पर Cross करते हुए रखा जाए तब मुष्टि-स्वस्तिक मुद्रा बनती है।[135]



मुष्टि-स्वस्तिक मुद्रा-1

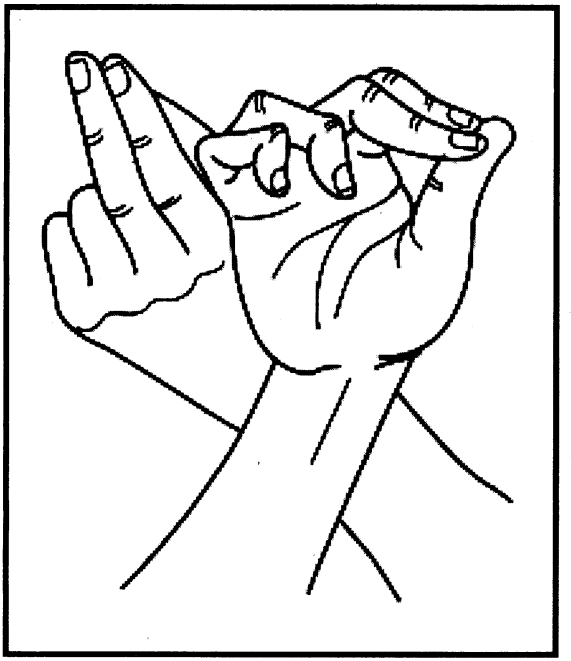
लाभ

चक्र– विशुद्ध, मणिपुर एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** वायु, अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि, तेजस एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाक, कान,

गला, मुँह, स्वर यंत्र, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के स्वरूपानुसार जब दोनों हाथों को खटकामुख में रचितकर मणिबन्ध के समीप कुंचित और अंचित कर दिया जाता है तब मुष्टि-स्वस्तिक मुद्रा कहलाती है।[136]



मुष्टि-स्वस्तिक मुद्रा-2

26. नलिनी पद्मकोश मुद्रा

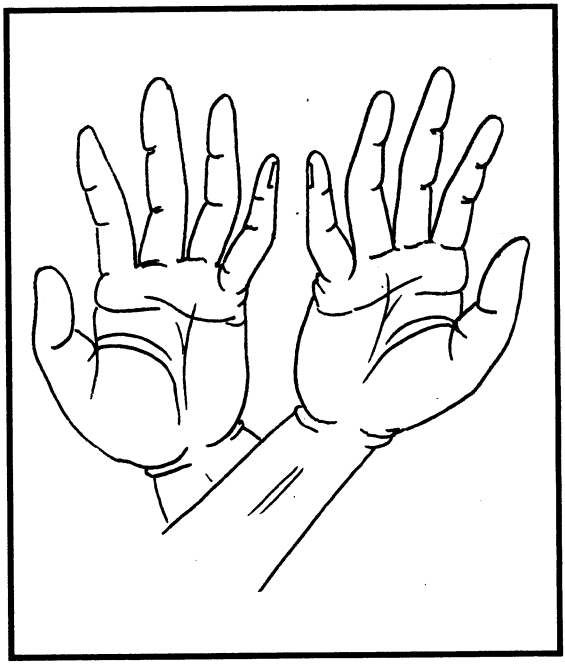
नलिनी शब्द कमल या कमलिनी का पर्याय है। जहाँ प्रचुरता से कमल प्राप्त होते हैं वह जलाशय, कमलों का समूह भी नलिनी कहलाता है।

इस मुद्रा में दोनों हाथों को पद्मकोश मुद्रा में रचित कर कमल समूह को दर्शाने का भाव व्यक्त किया जाता है अत: इसे नलिनी पद्मकोश मुद्रा कहते हैं।

नाटक आदि में अत्यन्त उपयोगी यह मुद्रा कली या फूलों के गुच्छों की सूचक है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को बाहर की तरफ करते हुए अंगुलियों एवं अंगूठों को अलग-अलग कर हल्के से हथेली की दिशा में मोड़ें। फिर दोनों हाथों को कलाई पर Cross करते हुए रखने से नलिनी पद्मकोश मुद्रा बनती है।[137]



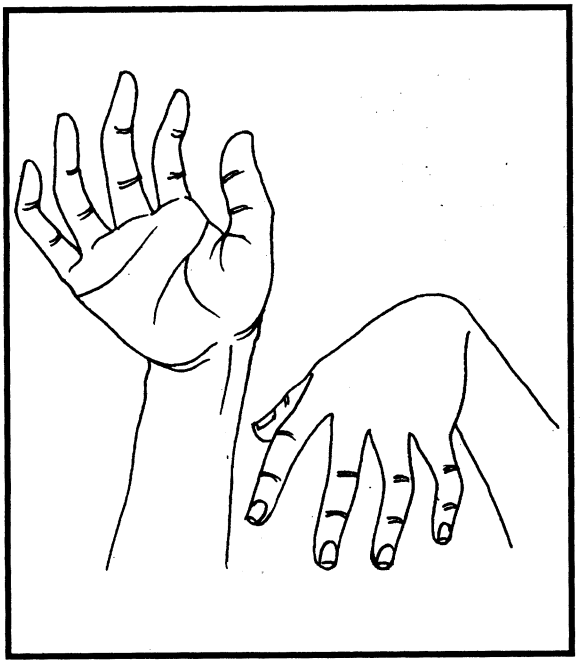
नलिनी पद्मकोश मुद्रा-1

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान, सहस्रार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** स्वास्थ्य, ज्ञान एवं ज्योति केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन, पीयूष एवं पीनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग, मस्तिष्क, आँखें एवं स्नायु तंत्र।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जब दोनों हाथों को पद्मकोश मुद्रा में रचकर व्यावर्तित और परावर्तित किया जाता है तब वह नलिनी पद्मकोश मुद्रा कही जाती है।[138]



नलिनी पद्मकोश मुद्रा-2

27. अल-पल्लव मुद्रा

अल-पल्लव शब्द का अभिप्राय है नये निकले हुए कोमल पत्तों का समूह जो सक्षमता को प्राप्त कर चुके हैं। वे अल-पल्लव कहलाते हैं। इस मुद्रा में पूर्ण विकसित एवं सक्षम पत्तों का समूह दर्शाया जाता है।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथों के अग्रभागों को उद्वेष्टित किया जाता है वह अल-पल्लव मुद्रा कही जाती है।[139]

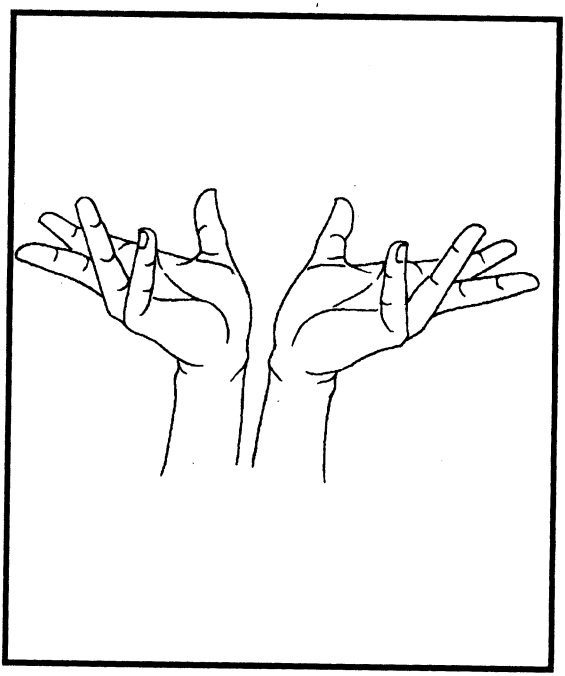
28. उल्वण मुद्रा

यह एक रहस्यमयी नाट्य मुद्रा है जो फूलों का गुलदस्ता अथवा नयन को दर्शाने के लिए धारण की जाती है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को ऊपर की ओर करें, अंगूठे और अंगुलियों को सख्ती से अलग-अलग कर फैलायें। फिर कनिष्ठिका को हथेली से 90^0 कोण पर तथा अनामिका को हथेली से 45^0 कोण की दूरी में रखने पर उल्वण मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा में दोनों हथेलियों को आँखों के सामने एवं निकट धारण किया जाता है।[139]



उल्वण मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाक, कान, गला, मुख, स्वर तंत्र।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के अनुसार जब दोनों हाथों को अल-पल्लव मुद्रा में रचित कर उर्ध्वप्रसरित करते हुए आविद्ध कर दिया जाता है तब वह उल्वण मुद्रा कहलाती है।[140]

29. ललित मुद्रा

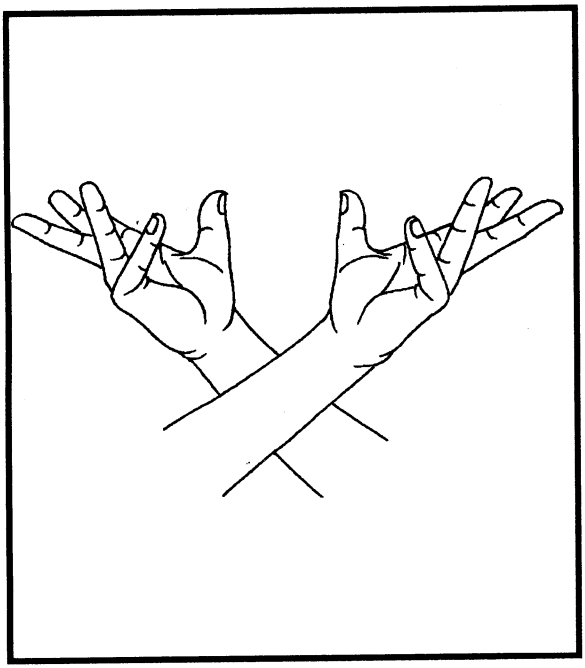
व्यवहार जगत में ललित का सामान्य अर्थ– सुंदर, रमणीय, प्रिय, क्रीडाशील आदि करते हैं।

इस मुद्रा में दोनों हाथों को अल-पल्लव मुद्रा में रचित कर मस्तक के समीप रखते हैं जिससे देह की रमणीयता और सुन्दरता में अभिवृद्धि होती है, इसलिए इसे ललित मुद्रा कहा गया है।

विद्वानों ने इस मुद्रा को शालवृक्ष और पहाड़ की सूचक मुद्रा के रूप में माना है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को ऊपर की तरफ उठायें, अंगुलियों और अंगूठों को सख्ती से अलग-अलग करें, कनिष्ठिका अंगुली को हथेली से 90^0 कोण पर रखें, अनामिका को हथेली से 45^0 कोण पर रखें तथा दोनों हाथों को Cross करते हुए सिर के निकट रखे जाने पर ललित मुद्रा बनती है।[141]



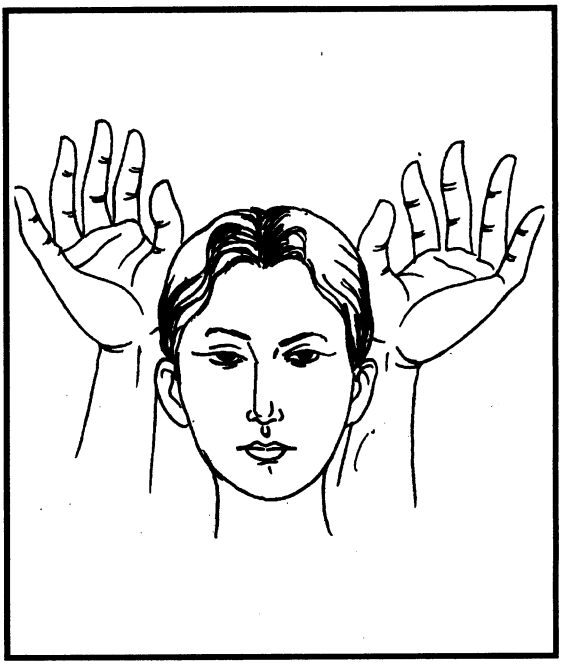
ललित मुद्रा-1

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, प्रजनन अंग, मल-मूत्र अंग, गुर्दे।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के निर्देशानुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथों को अल-पल्लव मुद्रा में निर्मित कर सिर पर रखा जाता है वह ललित मुद्रा है।[142]



ललित मुद्रा-2

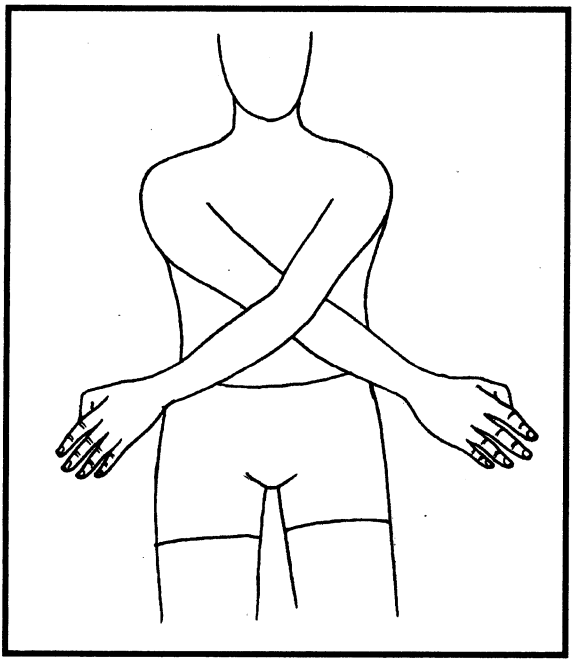
30. वलित मुद्रा

इस मुद्रा के नाम से ही सूचित होता है कि मुड़ा हुआ, झुका हुआ, बल खाया हुआ वलित कहलाता है।

इसमें हाथों को मोड़ा जाता है, किंचित झुकाया जाता है इसलिए इसका नाम वलित मुद्रा नाम है।

द्वितीय विधि

नाट्य शास्त्र के व्याख्यानुसार जिस मुद्रा में दोनों हाथों को लताहस्त मुद्रा में रचित कर कोहनियों पर स्वस्तिक के रूप में रखा जाता है वह वलित मुद्रा कहलाती है।[143]



वलित मुद्रा-2

भरतमुनि रचित नाट्य शास्त्र एक प्राचीन ग्रन्थ है। वर्तमान में इसी के आधार पर भरत नाट्य, कथक आदि नृत्य कलाओं में विविध मुद्राएँ सिखाई जाती है। प्राचीन होने पर भी इसमें वर्तमान उपयोगी समस्त मुद्राओं का उल्लेख मिलता है। नृत्य में मनोरंजन के साथ-साथ यह मुद्राएँ शरीर के विविध तंत्रों को भी प्रभावित करती है।

यह अध्याय साधारण जनता को मुद्राओं के महत्त्व से परिचित करवाते हुए दैनिक क्रियाओं में जागृति लाएगा। इसी के साथ नृत्य आदि कलाओं से समुचित लाभ की प्राप्ति हो पाएगी।

संदर्भ -सूची

1. पताकस्त्रिपताकश्च, तथावैकर्तरीमुखः ।
अर्धचन्द्रो ह्यरालश्च, शुकतुण्डस्तथैव च ।।
मुष्टिश्च शिखराख्यश्च, कपित्थः खटकामुखः ।
सूच्यास्यः पद्मकोषश्च, तथा वै सर्पशीर्षकः ।।
मृगशीर्षः परो ज्ञेयो, हस्ताभिनययोक्तृभिः ।
लाङ्गलोत्पलपद्मश्च, चतुरो भ्रामरस्तथा ।।
हंसास्यो हंसपक्षश्च, संदंशो मुकुलस्तथा ।
ऊर्णनाभस्ताम्रचूडश्चतुर्विंशदिमे करा: ।
असंयुताः संयुताश्च, गदतो मे निबोधत ।।
नाट्य शास्त्र, 9वाँ अध्याय

2. अंजलिश्च कपोतश्च, कर्कटः स्वस्तिकस्तथा ।
खटका वर्धमानश्च, ह्युत्सङ्गो निषधस्तथा ।।
दोलः पुष्पपुटश्चैव, तथा मकर एव च ।
गजदन्तोऽवहित्थश्च, वर्धमानस्तथैव च ।।
एते तु संयुता हस्ता, मया प्रोक्तास्त्रयोदश ।
नाट्य शास्त्र, 9वाँ अध्याय

3. नृत्तहस्तानतश्चोर्ध्वं, गदतो मे निबोधत ।
चतुरस्रो तथोद्वृत्तौ, तथा तलमुखौ स्मृतौ ।।
स्वस्तिकौ विप्रकीर्णौ, चाप्यरालखटकामुखौ ।
अविद्धवक्त्रौ सूच्यास्यौ, रेचितावधरेचितौ ।
उत्तानावंचितौ चेव, पल्लवौ च तथाकरौ।।
नितम्बावपि विज्ञेयौ, केशबन्धौ तथैव च ।
लताख्यौ च तथा प्रोक्तौ, करिहस्तौ तथैव च ।।
पक्षवञ्चितकौ चैव, पक्षप्रद्योतकौ तथा ।
ज्ञेयौ गरूड़पक्षौ च, हंसपक्षौ तथैव च ।।
ऊर्ध्वमण्डलिनौ चैव, उरः पार्श्वोर्ध्वमण्डले ।।
मुष्टिकः स्वस्तिकश्चापि, नलिनीपद्मकोषकौ ।
अलपल्लवोल्वणौ च, ललितौ वलितौ तथा ।।
नाट्य शास्त्र, 9 वाँ अध्याय

4. *हिन्दी शब्द सागर, भा.6, पृ. 2781*
5. *(क) द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 26*
   (ख) इण्डियन क्लासीकल डान्स, 134
6. *प्रसारिताग्राः सहिता, यस्याङ्गुल्यो भवन्ति हि।*
   कुञ्चितश्च तथाङ्गुष्ठः, स पताक इति स्मृतः ॥
   नाट्य शास्त्र, 9/18
7. *(क) द मिरर ऑफ गेश्चर, 27-28*
   (ख) इण्डियन क्लासीकल डान्स, 134
8. *पताके तु यदा वक्रानामिका त्वङ्गुलिर्भवेत्।*
   त्रिपताकः सा विज्ञेयः, कर्म चास्य निबोधत ॥
   नाट्य शास्त्र, 9/26
9. *हिन्दी शब्द सागर, भा.2, पृ. 829*
10. *(क) द मिरर ऑफ गेश्चर, 28-29*
    (ख) इण्डियन क्लासीकल डान्स, 134
11. *त्रिपताके यदा हस्ते, भवेत्पृष्ठावलोकिनी।*
    तर्जनी मध्यभायाश्च, तदासौ कर्तरीमुखः ॥
    नाट्य शास्त्र, 9/36
12. *हिन्दी शब्द सागर, भा.1, पृ. 323*
13. *(क) द मिरर ऑफ गेश्चर, 29*
    (ख) इण्डियन क्लासीकल डान्स, 134
14. *यस्याङ्गुल्यस्तु विनताः, सहाङ्गुष्ठेन चापवत्।*
    सोऽर्धचन्द्र इति ख्यातः, करः कर्मास्य वक्ष्यते ॥
    नाट्य शास्त्र, 9/39
15. *हिन्दी शब्द सागर, भा.1, पृ.313*
16. *इण्डियन क्लासीकल डान्स, 134*
17. *आद्या धनुर्लता कार्या, कुञ्चिताङ्गुष्ठकस्तथा।*
    शेषा भिन्नोर्ध्ववलिता, ह्यरालेऽङ्गुलयः करे ॥
    नाट्य शास्त्र, 9/42

18. द मिरर ऑफ गेश्चर, 29-30
19. (क) द मिरर आफ गेश्चर, 30
    (ख) इण्डियन क्लासीकल डान्स, 134
20. अरालस्य यदा वक्रानामिका त्वङ्गुलिर्भवेत् ।
    शुकतुण्डस्तु स करः, कर्म चास्य निबोधत ।।
    नाट्य शास्त्र, 9/49
21. (क) द मिरर आफ गेश्चर, 30
    (ख) इण्डियन क्लासीकल डान्स, 134 (10)
22. अङ्गुल्योयस्य हस्तस्य, तलमध्येऽग्रसंस्थिताः ।
    तासामुपरि चाङ्गुष्ठः, स मुष्टिरिति संजितः ।।
    नाट्य शास्त्र, 9/51
23. हिन्दी शब्द सागर, भा.9, पृ.4741
24. (क) द मिरर आफ गेश्चर, 30-31
    (ख) इण्डियन क्लासीकल डान्स, 134 (11 और 12)
25. अस्यैव तु यदा मुष्टे, रूध्वोंऽङ्गुष्ठः प्रयुज्यते ।
    हस्तः स शिखरो नाम, तथा ज्ञेयः प्रयोक्तृभिः ।।
    नाट्य शास्त्र, 9/53
26. (क) द मिरर आफ गेश्चर, 31
    (ख) इण्डियन क्लासीकल डान्स, 135 (13-14)
27. अस्यैव शिखराख्स्य, मुखेऽङ्गुष्ठनिपीडिता ।
    यदा प्रदेशिनी वक्रा स, कपित्थस्तदा स्मृतः ।।
    नाट्य शास्त्र, 9/55
28. हिन्दी शब्द सागर, भा.2, पृ.746
29. हिन्दी शब्द सागर, भा.3, पृ.1119
30. द मिरर ऑफ गेश्चर 31-32
31. उत्क्षिप्तवक्रा तु, यदानामिका सकनीयसी ।
    अस्यैव तु कपित्थस्य, तदासौ खटकामुखः ।।
    नाट्य शास्त्र, 9/57

32. *हिन्दी शब्द सागर, भा.10, पृ.7044*
33. *द मिरर आफ गेश्वर, 43*
34. *खटकाख्ये यदा हस्ते, तर्जनी संप्रसारिता।*
हस्तः सूचीमुखो नाम, तदा ज्ञेयः प्रयोक्तृभिः ॥
नाट्य शास्त्र, 9/61
35. *द मिरर ऑफ गेश्वर, 32-33*
36. *यस्याङ्गुल्यस्तु विरलाः, सहाङ्गुष्ठेन कुञ्चिताः।*
ऊर्ध्वा ह्यसंगताग्राश्च, स भवेत्पद्मकोषकः॥
नाट्य शास्त्र, 9/77
37. *(क) द मिरर ऑफ गेश्वर, 33*
(ख) इण्डियन क्लासीकल डान्स 136, (29)
38. *अङ्गुल्यः संहताः सर्वाः, सहाङ्गुष्ठेन यस्य च।*
तथा निम्नलश्चैव, स तु सर्वशिराः करः ॥
नाट्य शास्त्र, 9/81
39. *इण्डियन क्लासीकल डान्स, 135 (24)*
40. *अधोमुखीनां सर्वासामङ्गुलीनां समागमः।*
कनिष्ठाङ्गुष्ठकावूर्ध्वौ, स भवेन्मृग शीर्षकः ॥
नाट्य शास्त्र, 9/83
41. *हिन्दी शब्द सागर, भा.8, पृ.4276*
42. *(क) द मिरर ऑफ गेश्वर, 34*
(ख) इण्डियन क्लासीकल डान्स, 36 (36)
43. *त्रेताद्विसंस्थिता मध्या, तर्जन्यङ्गुष्ठका यदा।*
अंगुलेऽनामिका वक्रा, तथा चोर्ध्वकनीयसी ॥
नाट्य शास्त्र, 9/85
44. *(क) द मिरर ऑफ गेश्वर, 34-35, और प्लेट*
(ख) इण्डियन क्लासीकल डान्स, 135 (18-19)
45. *आवर्तिन्यः करतले, यस्याङ्गुल्यो भवन्ति हि।*
पार्श्वगतविकीर्णाश्च, स भवेदलपल्लवः ॥
नाट्य शास्त्र, 9/88

46. (क) द मिरर ऑफ गेश्चर, 35
    (ख) इण्डियन क्लासीकल डान्स, 136 (28)
47. त्रिस्रः प्रसारिता यत्र, तथा चोर्ध्वा कनीयसी।
    तासां मध्ये स्थितोऽङ्गुष्ठः, स करश्चतुरः स्मृतः ॥
    नाट्य शास्त्र, 9/90
48. द मिरर ऑफ गेश्चर, 35-36
49. मध्यमाङ्गुष्ठसंदंशो, वक्रा चैव प्रदेशिनी।
    ऊर्ध्वमन्ये प्रकीर्णे च, अंगुल्यो भ्रमरे करे ॥
    नाट्य शास्त्र, 9/98
50. (क) द मिरर ऑफ गेश्चर, 36
    (ख) इण्डियन क्लासीकल डान्स, 135 (21)
51. तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठा, स्त्रेताग्निस्था निरन्तराः।
    भवेयुर्हंसवक्त्रस्य, शेषे द्वे संप्रसारिते ॥
    नाट्य शास्त्र, 9/101
52. द मिरर ऑफ गेश्चर, 36
53. समाः प्रसारितास्तिस्त्र, स्तथा, चोर्ध्वा कनीयसी।
    अङ्गुष्ठःकुञ्चितश्चैव, हंसपक्ष इति स्मृतः ॥
    नाट्य शास्त्र, 9/103
54. इण्डियन क्लासीकल डान्स, 136 (27)
55. हिन्दी शब्द सागर, भा.10, पृ. 4810
56. द मिरर ऑफ गेश्चर, 37
57. तर्जन्यङ्गुष्ठ संदंशो, ह्यरालस्य यथा भवेत्।
    आभुग्नतलमध्यश्च, स संदंश इति स्मृतः ॥
    नाट्य शास्त्र, 9/107
58. द मिरर ऑफ गेश्चर, 37
59. द मिरर ऑफ गेश्चर, 50
60. (क) द मिरर ऑफ गेश्चर, 26
    (ख) इण्डियन क्लासीकल डान्स, 136 (34)

61. *समानताग्राः सहिता, यस्याङ्गुल्यो भवन्ति हि।*
ऊर्ध्वा हंसमुखस्यैव, स भवेन्मुकुलकः करः॥
नाट्य शास्त्र, 9/114

62. *(क) द मिरर ऑफ गेश्चर, 32*
(ख) इण्डियन क्लासीकल डान्स, 136 (30-32)

63. *पद्मकोषस्य हस्तस्य, अंगुल्यःकुञ्चिता यदा।*
ऊर्णनाभः स विज्ञेयः, केशचोर्य ग्रहादिषु॥
नाट्य शास्त्र, 9/117

64. *(क) द मिरर ऑफ गेश्चर, 38*
(ख) इण्डियन क्लासीकल डान्स, 136 (35)

65. *मध्यामाङ्गुष्ठसंदंशो, वक्रा चैव प्रदेशिनी।*
शेषे तलस्थे कर्तव्ये, ताम्रचूडे कराङ्गुली॥
नाट्य शास्त्र, 9/119

66. *द मिरर ऑफ गेश्चर, 38*

67. *(क) द मिरर ऑफ गेश्चर, 39*
(ख) BBH, 189
(ग) EDS, 41

68. *पताकाभ्यां तु हस्ताभ्यां, संश्लेषादंजलिः स्मृतः।*
देवतानां गुरुणां च, मित्राणां चाभिवादने॥
नाट्य शास्त्र, 9/125

69. *द मिरर ऑफ गेश्चर, 39*

70. *उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामन्योन्यं पार्श्व संग्रहात्।*
हस्तः कपोतको नाम, कर्म चास्य निबोधत॥
नाट्य शास्त्र, 9/127

71. *अङ्गुल्यो यस्य हस्तस्य, ह्यन्योन्यान्तरनिःसृताः।*
स कर्कट इति ज्ञेयः, करः कर्म च वक्ष्यते॥
नाट्य शास्त्र, 9/130

72. द मिरर ऑफ गेश्चर, 42
73. मणिबन्धनविनयस्ता, वरालौ स्त्रीप्रयोजितौ।
उत्तानौवामपार्श्वस्थौ, स्वस्तिकः परिकीर्तितः ॥
नाट्य शास्त्र, 9/132
74. द मिरर ऑफ गेश्चर, 42
75. हिन्दी शब्द सागर भा.3, पृ. 1118
76. द मिरर ऑफ गेश्चर, 40
77. कटकः कटकैर्न्यस्तः, कटको वर्धमानकः।
श्रृङ्गारार्थेषु प्रोक्तव्यः, प्रणामकरणे तथा ॥
नाट्य शास्त्र, 9/134
78. द मिरर ऑफ गेश्चर, 40
79. अरालौ तु विपर्यस्ता, वुत्तानौ वर्धमानकौ।
उत्संग इति विज्ञेयः, कार्यः सिंहावलोकिते ॥
नाट्य शास्त्र, 9/135
80. द मिरर ऑफ गेश्चर, 43
81. नाट्य शास्त्र, 9/137-38
82. द मिरर ऑफ गेश्चर, 40
83. अंसौ प्रशिथिलौ मुक्तौ, पताकौ तु प्रलम्बितौ।
यथा भवेतां करणे स, दोल इति संज्ञितः ॥
नाट्य शास्त्र, 9/141
84. (क) द मिरर ऑफ गेश्चर, 40
(ख) MJS, 114
85. यस्तु सर्पशिराः प्रोक्तस्तस्, याङ्गुलिनिरन्तरः।
द्वितीय पार्श्वसंश्लिष्टः, स तु पुष्पपुटः स्मृतः ॥
नाट्य शास्त्र, 9/143
86. द मिरर ऑफ गेश्चर, 43
87. पताकौ तु यदा हस्तादू (वूः), ध्वाङ्गुष्ठाबधोमुखौ।
उपर्युपरि विन्यस्तौ, तदा स मकरः करः ॥
नाट्य शास्त्र, 9/145

88. द मिरर ऑफ गेश्वर, 42

89. कर्पूरासंचितौ हस्तौ, यदारतां सर्प शीर्षकौ।
गजदन्तः स तु करः, कर्मचास्य निबोधत ॥
नाट्य शास्त्र, 9/147

90. हिन्दी शब्द सागर, भा.1, पृ. 352

91. द मिरर ऑफ गेश्वर, 41

92. शुकतुण्डौ करौ कृत्वा, वक्षस्यभिमुखाञ्चितौ।
शनैरधोमुखाविद्धौ, सोऽवहित्य इति स्मृतः ॥
नाट्य शास्त्र, 9/149

93. द मिरर ऑफ गेश्वर, 43

94. मुकुलस्तु यदा हस्तः, कपित्थ परिवेष्टितः।
वर्धमान स विज्ञेयः, कर्मचास्य निबोधत ॥
नाट्य शास्त्र, 9/152

95. द मिरर ऑफ गेश्वर, 42

96. वक्षसोऽष्टांगुलस्यौ तु, प्रांमुखौ खटकामुखौ।
समानकूर्परांसौ तु, चतुरस्रौ प्रकीर्तितौ ॥
नाट्य शास्त्र, 9/176

97. द मिरर ऑफ गेश्वर, 43

98. हंसपक्षकृतौ हस्तौ, व्यावृत्तौ तालवृन्तवत्।
उद्वृत्ताविति विज्ञेया, वथवा तालवृन्तकौ।
नाट्य शास्त्र, 9/177

99. द मिरर ऑफ गेश्वर, 42

100. चतुरस्रस्थितौ हस्तौ, हंसपक्षकृतौ तथा।
तिर्यक्स्थितौ चाभिमुखौ, ज्ञेयौ तलमुखाविति ॥
नाट्य शास्त्र, 9/178

101. तावेव मणिबन्धान्ते, स्वस्तिकाकृतिसंस्थितौ।
स्वस्तिकाविति विख्यातौ, विच्युतौ विप्रकीर्णकौ।
नाट्य शास्त्र,, 9/179

102. द मिरर ऑफ गेश्चर, 43

103. नाट्य शास्त्र, 9/179

104. अलपल्ल्वसंस्थानादूर्ध्वास्यौ पद्मकोषकौ।
अरालखटकाख्यौ वा, प्यरालखटकामुखौ ॥
नाट्य शास्त्र, 9/180

105. तथैव मणिबन्धान्ते, ह्यरालविच्युतावुभौ।
ज्ञेयो प्रयोक्तृभिर्नित्य, मराल खटका विति ॥
नाट्य शास्त्र, 9/181

106. संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ. 162

107. द मिरर ऑफ गेश्चर, 42

108. भुजांसकूर्पराग्रैस्तु, कुटिलावर्तितौ करौ।
पराङ्मुखतथाविद्धौ, ज्ञेयावाविद्धवक्रकौ ॥
नाट्य शास्त्र, 9/182

109. हस्तौ तु सर्पशिरसौ, मध्यस्थांगुष्ठकौ यदा।
तिर्यक्प्रसारितास्यौ च, तदा सूचीमुखौ स्मृतौ ॥
नाट्य शास्त्र, 9/183

110. द मिरर ऑफ गेश्चर, 42

111. रेचितौ चापि विज्ञेयौ, हंसपक्षोद्धृतभ्रमौ।
प्रसारितोत्तानतलौ, रे चितावेति संस्थितौ॥
नाट्य शास्त्र, 9/185

112. द मिरर ऑफ गेश्चर, 43

113. चतुरस्रो भवेद्वामः, सव्यहस्तश्च रेचितः।
विज्ञेयौ नृत्ततत्त्वज्ञै, रधरेचितसंज्ञकौ ॥
नाट्य शास्त्र, 9/186

114. अंचितौ कूर्परांसौ तु, त्रिपताका कृतौ करौ।
किंचितिर्यग्गतावेतौ, स्मृतावुत्तानवंचितौ ॥
नाट्य शास्त्र, 9/187

115. *मणिबन्धनमुक्तौ तु, पताकौ पल्लवौ स्मृतौ।*

नाट्य शास्त्र, 9/188

116. *द मिरर ऑफ गेश्वर, 42*

117. *बाहुशीर्षाद्विनिष्क्रान्तौ, नितम्बाविति कीर्तितौ।*

नाट्य शास्त्र, 9/188

118. *हिन्दी शब्द सागर, भा.2, पृ. 1042*

119. *द मिरर ऑफ गेश्वर, 43*

120. *केशदेशाद्विनिष्क्रान्तौ, पारिपार्श्वस्थितौ तथा।*
विज्ञेयौ केशबन्धाख्यौ, करावाचार्यसंमतौ॥

नाट्य शास्त्र, 9/189

121. *द मिरर ऑफ गेश्वर, 42*

122. *तिर्यक्प्रसारितौ चैव, पार्श्व संस्थौ तथैव च।*
लताख्यौ च करौ ज्ञेयौ, नृत्ताभिनयनं प्रति॥

नाट्य शास्त्र, 9/190

123. *(क) HKS, 271*
(ख) MJS, 44

124. *समुन्नतो लताहस्तः, पार्श्वात्पार्श्व विलोलितः।*
त्रिपताकोऽपरः कर्णे, करिहस्तः प्रकीर्तितः॥

नाट्य शास्त्र, 9/191

125. *द मिरर ऑफ गेश्वर, 42*

126. *कटिशीर्षनिविष्टौ द्वौ, त्रिपताकौ यदा करौ।*
पक्षवंचितकौ हस्तौ, तदा श्रेयौ प्रयोक्तृभिः॥

नाट्य शास्त्र, 9/192

127. *द मिरर ऑफ गेश्वर, 42*

128. *तावेव तु परावृत्तौ, पक्षप्रद्योतकौ स्मृतौ।*

नाट्य शास्त्र, 9/193

129. *द मिरर ऑफ गेश्वर, 43*

130. अधोमुखतलाविद्धौ, ज्ञेयौ गरूडपक्षकौ।
नाट्य शास्त्र, 9/193

131. हंसपक्षकृतौ हस्तौ, व्यावृत्तपरिवर्तितौ।
तथा प्रसारितभुजौ, दण्डपक्षाविति स्मृतौ॥
नाट्य शास्त्र, 9/194

132. ऊर्ध्वमण्डलिनौ हस्ता, वूर्ध्व देश विवर्तनात्।
नाट्य शास्त्र, 9/195

133. तावेव पार्श्वविन्यस्तौ पार्श्व मण्डलिनौ स्मृतौ।
नाट्य शास्त्र, 9/195

134. उदवेष्टितो भवेदेको, द्वितीयश्चापवेष्टितः।
भ्रामितावुरसः स्थाने, ह्युरोमण्डलिनौ स्मृतौ॥
नाट्य शास्त्र, 9/196

135. द मिरर ऑफ गेश्वर, 43

136. हस्तौ तु मणिबन्धान्ते, कुञ्चितावञ्चितौ यदा।
खटकाख्यकृतौ स्यातां, मुष्टिकस्वस्तिकौ तदा॥
नाट्य शास्त्र, 9/198

137. द मिरर ऑफ गेश्वर, 44

138. पद्मकोषौ यदा हस्तौ, व्यावृत्तपरिवर्तितौ।
नलिनी पद्मकोषौ तु, तदा ज्ञेयौ प्रयोक्तृभिः॥
नाट्य शास्त्र, 9/199

139. द मिरर ऑफ गेश्वर, 44

140. करावुद्वेष्टिताग्रौ तु, प्रविधायालपल्लवौ।
ऊर्ध्वप्रसारिताविद्धौ, विज्ञेयावुल्वणावपि॥
नाट्य शास्त्र, 9/200

141. द मिरर ऑफ गेश्वर, 44

142. पल्लवौ च शिरोदेशे, संप्राप्तौ ललितौ स्मृतौ।
नाट्य शास्त्र, 9/202

143. कूर्परस्वस्तिकगतौ, लताख्यौ ललिताविति।
नाट्य शास्त्र, 9/202

●

अध्याय-3

विष्णुधर्मोत्तर पुराण आदि में उल्लिखित मुद्राओं की सूची

भरत नाट्य शास्त्र के परवर्ती अनेक ग्रन्थों में भरत मुनि का अनुकरण करते हुए अनेक मुद्राओं का उल्लेख किया गया है। इनमें से कुछ ग्रन्थ पौराणिक साहित्य से सम्बन्धित है, तो कुछ शिल्पकला से तो कुछ नृत्यकला से। प्राय: सभी ग्रन्थों में कम या ज्यादा भरत नाट्य का ही अनुकरण किया गया है। किसी में कुछ अतिरिक्त मुद्राओं का उल्लेख है तो किसी में मुद्राओं का संक्षिप्तीकरण। तदुपरान्त जितनी भी मुद्राओं का वर्णन किया गया है उनका स्वरूप प्राय: भरत मुनि द्वारा वर्णित मुद्राओं के समान है। भरत नाट्य शास्त्र से समानता रखने वाले कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थ इस प्रकार हैं–

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में वर्णित मुद्राएँ

पुराण साहित्य की एक अनमोल कृति है विष्णु धर्मोत्तर। इस पुराण के तृतीय खण्ड के 32वें अध्याय में कुछ रहस्यमयी मुद्राओं के उल्लेख हैं, परन्तु वहाँ उनकी विधि नहीं बताई गई है। इसी ग्रन्थ के 33वें अध्याय (1-124) में लगभग शताधिक मुद्राओं का भी वर्णन है उनमें नृत्तशास्त्र सम्बन्धी मुद्राएँ भी उल्लिखित हैं। ये मुद्राएँ भरतमुनि के नाट्यशास्त्र की नृत्तहस्त मुद्राओं से साम्यता रखती हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि भरतमुनि द्वारा वर्णित एवं इस परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का ही पुराणकार ने अनुसरण किया है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण के तृतीय खण्ड में हस्ताभिनय के अन्तर्गत नाट्यकला से सम्बन्धित असंयुक्त, संयुक्त और नृत्तहस्त मुद्राओं के नाम एवं उनकी संख्याएँ भी बताई गई है जो लगभग नाट्यशास्त्र के समान हैं केवल असंयुक्त मुद्राओं में अन्तिम की दो मुद्राओं का उल्लेख नहीं हैं अत: 24 के स्थान पर 22

संख्या है तथा नृत्तहस्त मुद्राओं में स्वस्तिक, विप्रकीर्ण, तलमुख और उत्तानवंचित नामों के स्थान पर लघुमुख एवं पार्श्वार्धमण्डल नाम ही हैं।

स्पष्ट बोध के लिए मुद्राओं की नाम सूची इस प्रकार है[1]-

असंयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. पताका हस्त मुद्रा 2. त्रिपताका मुद्रा 3. कर्त्तरी मुख मुद्रा 4. अर्धचन्द्र मुद्रा 5. अराल मुद्रा 6. शुकतुण्ड मुद्रा 7. मुष्टि मुद्रा 8. शिखर मुद्रा 9. कपित्थ मुद्रा 10. खटकामुख मुद्रा 11. सूच्यास्य मुद्रा 12. पद्मकोश मुद्रा 13. उरगशीर्ष (सर्पशीर्ष) मुद्रा 14. मृगशीर्ष मुद्रा 15. लांगूल मुद्रा 16. कोलपद्म (अलपद्म) मुद्रा 17. चतुर मुद्रा 18. भ्रमर मुद्रा 19. हंसास्य मुद्रा 20. हंसपक्ष मुद्रा 21. संदंश मुद्रा 22. मुकुल मुद्रा।

संयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. अंजलि मुद्रा 2. कपोत मुद्रा 3. कर्कट मुद्रा 4. स्वस्तिक मुद्रा 5. खटका वर्धमान मुद्रा 6. उत्संग मुद्रा 7. निषध मुद्रा 8. डोल मुद्रा 9. पुष्पपुट मुद्रा 10. मकर मुद्रा 11. गजदन्त मुद्रा 12. अवहित्थ मुद्रा 13. वर्धमान मुद्रा।

नृत्तहस्त मुद्राएँ– 1. चतुरस्र मुद्रा 2. उदवृत्त मुद्रा 3. लघुमुख मुद्रा 4. खटका मुख मुद्रा 5. अराल मुद्रा 6. आविद्ध मुद्रा 7. सूचीमुख मुद्रा 8. रेचित मुद्रा 9. अर्धरेचित मुद्रा 10. अवहित्थ मुद्रा 11. पल्लव मुद्रा 12. नितम्ब मुद्रा 13. केशबन्ध मुद्रा 14. लताहस्त मुद्रा 15. करिहस्त मुद्रा 16. पक्षवंचितक मुद्रा 17. पक्षद्योतक मुद्रा 18. गरूड़ पक्ष मुद्रा 19. दण्ड पक्ष मुद्रा 20. ऊर्ध्वमण्डल मुद्रा 21. पार्श्वमण्डल मुद्रा 22. पार्श्वार्धमण्डल मुद्रा 23. उरोमण्डल मुद्रा 24. मुष्टि मुद्रा 25. स्वस्तिक मुद्रा 26. पद्मकोश मुद्रा 27. अलपल्लव मुद्रा 28. उल्वण मुद्रा 29. ललित मुद्रा 30. वलित मुद्रा।

राजाभोज कृत समरांगणसूत्रधार में वर्णित मुद्राएँ

समरांगणसूत्रधार नामक यह कृति राजा भोज (1000 ईस्वी-1055) द्वारा रचित है। इसे वास्तु एवं शिल्प शास्त्र का बेजोड़ ग्रन्थ माना जाता है, यद्यपि इसमें विविध नाट्य मुद्राओं का उल्लेख है जो भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में वर्णित मुद्राओं से प्राय: समानता रखती है।

इस ग्रन्थ के 83वें अध्याय में पताका आदि 64 हस्त मुद्राओं के लक्षण भी दिये गये हैं इस कारण सम्पूर्ण अध्याय का नाम ही "पताकादिचतुष्षष्टि-

हस्तलक्षण'' रखा गया है।

नाट्य मुद्राओं की प्रामाणिक सिद्धि एवं तुलना हेतु समरांगणसूत्रधार में निर्दिष्ट हस्त मुद्राओं की सूची निम्नोक्त है-

असंयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. पताका मुद्रा 2. त्रिपताक मुद्रा 3. कर्त्तरीमुख मुद्रा 4. अर्धचन्द्र मुद्रा 5. अराल मुद्रा 6. शुकतुण्ड मुद्रा 7. मुष्टिहस्त मुद्रा 8. शिखरहस्त मुद्रा 9. कपित्थ मुद्रा 10. कटकामुख मुद्रा 11. सूचीमुख मुद्रा 12. पद्मकोश मुद्रा 13. सर्पशीर्ष मुद्रा 14. मृगशीर्ष मुद्रा 15. कांगुल मुद्रा 16. अलपद्म मुद्रा 17. चतुर मुद्रा 18. भ्रमर मुद्रा 19. हंसास्य मुद्रा 20. हंसपक्ष मुद्रा 21. सन्दंश मुद्रा 22. मुकुल मुद्रा 23. ऊर्णनाभ मुद्रा 24. ताम्रचूड़ मुद्रा।[2]

संयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. अंजलि मुद्रा 2. कपोत मुद्रा 3. कर्कट मुद्रा 4. स्वस्तिक मुद्रा 5. खटकावर्धन मुद्रा 6. उत्संग मुद्रा 7. निषध मुद्रा 8. डोल मुद्रा 9. पुष्पपुट मुद्रा 10. मकर मुद्रा 11. गजदन्त मुद्रा 12. अवहित्थ मुद्रा 13. वर्धमान मुद्रा।[3]

नृत्तहस्त मुद्राएँ– 1. चतुरस्र मुद्रा 2. उदवृत्त मुद्रा 3. स्वस्तिक मुद्रा 4. विप्रकीर्ण मुद्रा 5. पद्मकोश मुद्रा 6. अराल मुद्रा 7. खटकामुख मुद्रा 8. आविद्ध वक्र मुद्रा 9. सूचीमुख मुद्रा 10. रेचितहस्त मुद्रा 11. उत्तानवंचित मुद्रा 12. अर्धरेचित मुद्रा 13. पल्लव मुद्रा 14. केशबन्ध मुद्रा 15. लताहस्त मुद्रा 16. करिहस्त मुद्रा 17. पक्षवंचित मुद्रा 18. पक्षप्रद्योतक मुद्रा 19. गरूड़ पक्ष मुद्रा 20. दण्ड पक्ष मुद्रा 21. ऊर्ध्वमण्डलिन् मुद्रा 22. पार्श्वमण्डलिन् मुद्रा 23. उरोमण्डलिन् मुद्रा 24. उर: पार्श्वार्धमण्डल मुद्रा 25. मुष्टिक स्वस्तिक मुद्रा 26. नलिनी पद्मकोश मुद्रा 27. अलपल्लव मुद्रा 28. उल्वण मुद्रा 29. ललित मुद्रा 30. वलित मुद्रा।[4]

समरांगणसूत्राधार में नृत्तहस्त की 30 मुद्राएँ बतायी गयी हैं उनमें 'उर:पार्श्वार्धमण्डल' नाम की मुद्रा नाट्य शास्त्र में नहीं है तथा नाट्यशास्त्र में वर्णित नितम्ब और तलमुख इन दो मुद्राओं का उल्लेख समरांगणसूत्रधार में नहीं है।

सोमेश्वर कृत मानसोल्लास में वर्णित मुद्राएँ

मानसोल्लास नामक यह रचना सोमेश्वर (12वीं शती) की है। इस ग्रन्थ में नाट्य की हस्त मुद्राओं का वर्णन किंचित भेद के साथ नाट्यशास्त्र के अनुसार

ही किया गया है। स्पष्टत: इसमें असंयुक्त मुद्राओं की संख्या 24 ही है किन्तु एकाध मुद्रा के नामों में अन्तर है तथा नृत्तहस्त मुद्राएँ 27 बताई गई है अन्तिम तीन मुद्राओं का उल्लेख नहीं है।

सुगम बोध के लिए मुद्रा सूची निम्न प्रकार है [5]–

असंयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. पताका मुद्रा 2. हंसपक्ष मुद्रा 3. चतुरस्र मुद्रा 4. अहिफण मुद्रा 5. अर्धचन्द्र मुद्रा 6. मृगशिरा मुद्रा 7. त्रिपताक मुद्रा 8. कर्तरीमुख मुद्रा 9. पद्मकोश मुद्रा 10. अरालक मुद्रा 11. शुकतुण्ड मुद्रा 12. कांगुल मुद्रा 13. अलपद्म मुद्रा 14. ऊर्णनाभ मुद्रा 15. मुकुल मुद्रा 16. हंसपक्ष मुद्रा 17. भ्रमर मुद्रा 18. सन्दंश मुद्रा 19. ताम्रचूड़ मुद्रा 20. मुष्टि मुद्रा 21. शिखर मुद्रा 22. कपित्थ मुद्रा 23. खटिकावक्त्र मुद्रा 24. सूचीमुख मुद्रा।

संयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. अंजलि मुद्रा 2. कपोत मुद्रा 3. कर्कट मुद्रा 4. स्वस्तिक मुद्रा 5. खटकावर्धमान मुद्रा 6. उत्संग मुद्रा 7. निषध मुद्रा 8. डोल मुद्रा 9. पुष्पपुट मुद्रा 10. मकर मुद्रा 11. गजदन्त मुद्रा 12. अवहित्थ मुद्रा 13. वर्धमान मुद्रा।

नृत्तहस्त मुद्राएँ– 1. चतुरस्र मुद्रा 2. उद्वृत्त मुद्रा 3.तलमुख मुद्रा 4. स्वस्तिक मुद्रा 5. विप्रकीर्ण मुद्रा 6. अराल खटकामुख मुद्रा 7. आविद्ध मुख मुद्रा 8. सूच्यास्य मुद्रा 9. रेचित मुद्रा 10. अर्धरेचित मुद्रा 11. उत्तानवंचित मुद्रा 12. पल्लव मुद्रा 13. नितम्ब मुद्रा 14. केशबन्ध 15. लताहस्त मुद्रा 16. करिहस्त मुद्रा 17. पक्षवंचितक मुद्रा 18. पक्षप्रद्योतक मुद्रा 19. गरूड़पक्षक मुद्रा 20. दण्डपक्ष मुद्रा 21. ऊर्ध्वमण्डलिन् मुद्रा 22. पार्श्वमण्डलिन् मुद्रा 23. वक्षोमण्डलिन् मुद्रा 24. उर:पार्श्वार्धमण्डल मुद्रा 25. स्वस्तिक मुष्टि मुद्रा 26. नलिनी पद्मकोश मुद्रा 27. अलपल्लव मुद्रा।

जयत्सेन कृत नृत्तरत्नावली में वर्णित मुद्राएँ

नृत्तरत्नावली लगभग 1250 ई. का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में नाट्य सम्बन्धित हस्त मुद्राओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। ग्रन्थकार ने नाट्यशास्त्र का अनुसरण करते हुए उन्हीं मुद्राओं को गुंफित किया है। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो नृत्त रत्नावली में वर्णित हस्त मुद्राएँ नाट्यशास्त्र के समरूप होने पर भी उनमें नामों एवं संख्याओं को लेकर किंचित् भिन्नता है।

सम्यक बोध के लिए नृत्तरत्नावली में प्रतिपादित नाट्य मुद्राओं की सूची निम्न है[6]–

असंयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. पताका मुद्रा 2. त्रिपताका मुद्रा 3. सर्पशिरा मुद्रा 4. मृगशीर्ष मुद्रा 5. कर्तरीमुख मुद्रा 6. कटकामुख मुद्रा 7. सूचीमुख मुद्रा 8. सप्तधा तर्जनी मुद्रा 9. शुकतुण्ड मुद्रा 10. हंसास्य मुद्रा 11. कपित्थ मुद्रा 12. शिखर मुद्रा 13. पद्मकोश मुद्रा 14. मुष्टि मुद्रा 15. चतुर मुद्रा 16. भ्रमर मुद्रा 17. अराल मुद्रा 18. हंसपक्ष मुद्रा 19. अर्धचन्द्र मुद्रा 20. सन्दंश मुद्रा 21. मुकुल मुद्रा 22. ऊर्णनाभ मुद्रा 23. अलपद्म मुद्रा 24. ताम्रचूड़ मुद्रा।

संयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. अंजलि मुद्रा 2. कटका वर्धमान मुद्रा 3. स्वस्तिक मुद्रा 4. कर्कट मुद्रा 5. कपोत मुद्रा 6. निषध मुद्रा 7. उत्संग मुद्रा 8. गजदन्त मुद्रा 9. अवहित्थ मुद्रा 10. डोल मुद्रा 11. पुष्पपुट मुद्रा 12. वर्धमान मुद्रा 13. मकर मुद्रा।

नृत्तहस्त मुद्राएँ– 1. चतुरस्र मुद्रा 2. उद्वृत्त मुद्रा 3.तलमुख मुद्रा 4. स्वस्तिक मुद्रा 5. विप्रकीर्ण मुद्रा 6. अराल कटकामुख मुद्रा 7. आविद्धवक्र मुद्रा 8. सूच्यास्य मुद्रा 9. रेचित मुद्रा 10. अर्धरेचित मुद्रा 11. उत्तानवंचित मुद्रा 12. पल्लव मुद्रा 13. केशबन्ध मुद्रा 14. लताहस्त 15. करिहस्त मुद्रा 16. पक्षवंचित मुद्रा 17. पक्षप्रद्योतक मुद्रा 18. तार्क्ष्यपक्षौ मुद्रा 19. दण्डपक्षौ मुद्रा 20. ऊर्ध्वमण्डल मुद्रा 21. पार्श्वमण्डल मुद्रा 22. उरो मण्डल मुद्रा 23. उर:पार्श्वार्धमण्डल मुद्रा 24. मुष्टिक स्वस्तिक मुद्रा 25. नलिनी पद्मकोश मुद्रा 26. अलपद्मोल्वण मुद्रा 27. ललित मुद्रा 28. वलित मुद्रा।

शांर्गदेवकृत संगीतरत्नाकर में वर्णित मुद्राएँ

संगीत रत्नाकर 14वीं शती का अनमोल ग्रन्थ है। शांर्गदेव की इस रचना में नाट्य मुद्राओं का विशद वर्णन प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इसमें नाट्य की हस्त मुद्राओं का वर्णन भरत के नाट्यशास्त्र के अनुरूप ही किया गया है। नाट्यशास्त्र के समान ही 24 प्रकार की असंयुक्त, 13 प्रकार की संयुक्त एवं 30 प्रकार की नृत्तहस्त मुद्राओं का उल्लेख है। तुलना की अपेक्षा उन मुद्राओं की नाम सूची इस प्रकार है–

असंयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. पताका हस्त मुद्रा 2. त्रिपताक हस्त मुद्रा 3. कर्तरीमुख मुद्रा 4. अर्धचन्द्र हस्त मुद्रा 5. अराल हस्त मुद्रा 6. शुकतुण्ड हस्त मुद्रा 7. मुष्टिहस्त मुद्रा 8. शिखर हस्त मुद्रा 9. कपित्थ मुद्रा

10. कटकामुख मुद्रा 11. सूचीमुख मुद्रा 12. पद्मकोश मुद्रा 13. सर्पशीर्ष मुद्रा 14. मृगशीर्ष मुद्रा 15. कांगुल मुद्रा 16. अलपल्लव मुद्रा 17. चतुर मुद्रा 18. भ्रमर मुद्रा 19. हंसास्य मुद्रा 20. हंसपक्ष मुद्रा 21. संदंश मुद्रा 22. मुकुल मुद्रा 23. ऊर्णनाभ मुद्रा 24. ताम्रचूड़ हस्त मुद्रा।[7]

संयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. अंजलि मुद्रा 2. कपोत मुद्रा 3. कर्कट मुद्रा 4. स्वस्तिक मुद्रा 5. कटका वर्धमान मुद्रा 6. उत्संग मुद्रा 7. निषध मुद्रा 8. डोल मुद्रा, 9. पुष्पपुट मुद्रा 10. मकर मुद्रा 11. गजदन्त मुद्रा 12. अवहित्थ मुद्रा 13. वर्धमान मुद्रा।[8]

नृत्तहस्त मुद्राएँ– 1. चतुरस्र मुद्रा 2. उद्वृत्त मुद्रा 3.तलमुख मुद्रा 4. स्वस्तिक मुद्रा 5. विप्रकीर्ण मुद्रा 6. अराल खटकामुख मुद्रा 7. आविद्धवक्र मुद्रा 8. सूच्यास्या मुद्रा 9. रेचित मुद्रा 10. अर्धरेचित मुद्रा 11. नितम्ब मुद्रा 12. पल्लव मुद्रा 13. केशबन्ध मुद्रा 14.उत्तानवंचित मुद्रा 15. लता मुद्रा 16. करिहस्त मुद्रा 17. पक्षवंचितक मुद्रा 18. पक्षप्रद्योतक मुद्रा 19. दण्ड पक्ष मुद्रा 20. गरूड़ पक्ष मुद्रा 21. ऊर्ध्वमण्डली मुद्रा 22. पार्श्वमण्डली मुद्रा 23. उरो मण्डली मुद्रा 24. उर:पार्श्वार्धमण्डली मुद्रा 25. मुष्टिक स्वस्तिक मुद्रा 26. नलिनी पद्मकोश मुद्रा 27. अलपल्लव मुद्रा 28. उल्वण मुद्रा 29. ललित मुद्रा 30. वलित मुद्रा।[9]

अशोकमल्ल कृत नृत्याध्याय में वर्णित मुद्राएँ

नृत्याध्याय नाम का यह ग्रन्थ नाट्य परम्परा से सम्बन्धित है। इसका रचनाकाल 14वीं-15वीं शती ई. माना जाता है। इस ग्रन्थ नाम से सूचित होता है कि यह नाट्यशास्त्र सम्बन्धी किसी विशालकाय ग्रन्थ का अंश होना चाहिए। इसमें भी नाट्य की हस्त मुद्राओं का वर्णन भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार प्राप्त होता है, किन्तु मुद्राओं की संख्या में कुछ भिन्नता है। यहाँ असंयुक्त हस्त मुद्राओं की संख्या 20 कही गयी है जबकि नाट्यशास्त्र में 24 प्रकार की वर्णित है।

स्पष्टीकरण के लिए हस्त मुद्राओं की सूची निम्नलिखित है–[10]

असंयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. चतुर मुद्रा 2. हंसास्य मुद्रा 3. भ्रमर मुद्रा 4. कांगुल मुद्रा 5. ताम्रचूड़ मुद्रा 6. मुष्टि मुद्रा 7. शिखर मुद्रा 8. कपित्थ मुद्रा 9. खटकामुख मुद्रा 10. सूचीमुख मुद्रा 11. त्रिपताक मुद्रा 12. कर्तरीमुख मुद्रा 13. अर्धचन्द्र मुद्रा 14. अराल मुद्रा, 15. शुकतुण्ड मुद्रा 16. संदेश मुद्रा

17. मुकुल मुद्रा 18. पद्मकोश मुद्रा 19. ऊर्णनाभ मुद्रा 20. अलपल्लव मुद्रा।

संयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. अंजलि मुद्रा 2. कपोत मुद्रा 3. कर्कट मुद्रा 4. गजदंत मुद्रा 5. निषध मुद्रा 6. पुष्पपुट मुद्रा 7. खटकावर्धन मुद्रा 8. उत्संग मुद्रा 9. स्वस्तिक मुद्रा 10. डोल मुद्रा 11. अवहित्थ मुद्रा 12. मकर मुद्रा 13. वर्धमान मुद्रा।

राणा कुम्भकर्ण रचित नृत्यरत्नकोष में वर्णित मुद्राएँ

नृत्यरत्नकोष इस नाम से ही स्पष्ट होता है कि यह ग्रन्थ नाट्य एवं नृत्य का अक्षय भण्डार है। इसमें नृत्यकला से सम्बन्धित बहुमूल्य सामग्री समाविष्ट होनी चाहिए। वस्तुत: नृत्यरत्नकोष राणा कुम्भकर्ण (1443- 1468 ई.) निर्मित संगीतराज का एक अंश है जिसमें नाट्यशास्त्र के अभिरूप ही नाट्य की हस्त मुद्राओं का विधिवत वर्णन किया गया है केवल संख्याओं में कुछ भेद है, परन्तु मुद्रा बनाने की विधि लगभग एक समान ही है। इस कोष में नृत्यहस्त के अन्तर्गत 1. वरदा भय और 2. उर:पार्श्वार्धमण्डली ये दो मुद्राएँ नाट्यशास्त्र से अतिरिक्त मानी गयी हैं।

असंयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. पताक मुद्रा 2. त्रिपताक मुद्रा 3. अर्धचन्द्र मुद्रा 4. कर्तरीमुख मुद्रा 5. अराल मुद्रा 6. मुष्टि मुद्रा 7. शिखर मुद्रा 8. कपित्थ मुद्रा 9. खटकामुख मुद्रा 10. शुकतुण्ड मुद्रा 11. कांगुल मुद्रा 12. पद्मकोश मुद्रा 13. अलपल्लव मुद्रा 14. सूचीमुख मुद्रा 15. सर्पशीर्ष मुद्रा 16. चतुरस्र मुद्रा 17. मृगशीर्ष मुद्रा 18. हंसास्य मुद्रा 19. हंसपक्ष मुद्रा 20. भ्रमर मुद्रा 21. मुकुल मुद्रा 22. ऊर्णनाभ मुद्रा 23. संदंश मुद्रा 24. ताम्रचूड मुद्रा।[11]

संयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. अंजलि मुद्रा 2. कपोत मुद्रा 3. कर्कट मुद्रा 4. स्वस्तिक मुद्रा 5. खेटकावर्धमान मुद्रा 6. उत्संग मुद्रा 7. निषध मुद्रा 8. डोल मुद्रा, 9. पुष्पपुट मुद्रा 10. मकर मुद्रा 11. गजदन्त मुद्रा 12. अवहित्थ मुद्रा 13. वर्धमानहस्त मुद्रा।[12]

नृत्तहस्त मुद्राएँ– 1. चतुरस्र हस्त मुद्रा 2. उद्वृत्त हस्त मुद्रा 3.तलमुख हस्त मुद्रा 4. स्वस्तिक मुद्रा 5. विप्रकीर्ण मुद्रा 6. अराल खटकामुख मुद्रा 7. आविद्धवक्र मुद्रा 8. सूच्यास्य मुद्रा 9. रेचित मुद्रा 10. अर्धरेचित मुद्रा 11. अर्धचतुरस्र 12. उत्तानवंचित मुद्रा 13. नितम्ब मुद्रा 14. पल्लव मुद्रा 15. केशबन्ध मुद्रा 16. लता हस्त मुद्रा 17. करिहस्त मुद्रा 18. पक्षवंचित मुद्रा

19. पक्षप्रद्योतक मुद्रा 20. दण्डपक्ष मुद्रा 21. गरूड़पक्ष मुद्रा 22. ऊर्ध्वमण्डली मुद्रा 23. पार्श्वमण्डली मुद्रा 24. उरोमण्डली मुद्रा 25. उर:पार्श्वार्धमण्डली मुद्रा 26. मुष्टि स्वस्तिक मुद्रा 27. नलिनी पद्मकोश मुद्रा 28. अलपद्म मुद्रा 29. उल्वण मुद्रा 30. वलित मुद्रा 31. ललित मुद्रा 32. वरदाभय मुद्रा।[13]

वर्णित अध्याय में भरत नाट्य शास्त्र से समानता रखने वाले ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। इससे इन मुद्राओं की प्रामाणिकता सुसिद्ध हो जाती है। इसी के साथ भिन्न-भिन्न क्षेत्र से संबंध रखने वाले साहित्य में मुद्राओं का महत्त्व भी प्रमाणित हो जाता है। प्राय: ग्रन्थों का रचनाकाल भी अलग-अलग है। इससे आदिकाल से अब तक मुद्राओं का साम्राज्य स्वयंसिद्ध हो जाता है।

संदर्भ सूची

1. *पताकस्त्रिपताकश्च, तथा वैकतरिमुख: ।*
अर्धचन्द्रो ह्यरालश्च, गुरुतुण्डस्तथापर: ।।1।।
मुष्टिश्च शिखिराख्यश्च, कपित्थ: खटकामुख: ।
सूच्यर्ध: पद्मकोशश्च, मृगशीर्षो मृगस्य च ।।2।।
लाङ्गूल: कालपद्मश्च, चतुरो भ्रमरस्तथा।
हसास्यो हंसपक्षश्च, संदंशो मुकुलस्तथा।।3।।
असंयुता: करा ह्येते, द्वाविंशतिरुदाहृता:।
अथ संयुक्ततो हस्तान्, गदतस्तान्निबोध मे।।4।।
अंजलिश्च कपोतश्च, कर्कट: स्वस्तिकस्तथा।
खटको वर्धमानश्च, उत्सङ्गो निषिधस्तथा।।5।।
डोल: पुष्पपुटश्चैव, तथा मकर एव च।
गजदन्तोऽवहित्थश्च, वर्धमानस्तथैव च ।।6।।
एते वै संयुता हस्ता, मया प्रोक्तास्त्रयोदश।
नृत्तहस्तार्युपश्चैव, भूयो नाम्नि निबोधत।।7।।
चतुरस्त्रस्तथा वृत्तस्, तथा लघुमुखौ स्मृतौ।
तथा चैव तु विज्ञेयौ, ह्यरालखटकामुखौ।।8।।
आविद्धवक्रसंव्याख्यौ, रेचितावर्द्धरेचितौ।
अवहित्थ: पल्लवितो, नितम्ब: केशवर्धनौ।।9।।
लताख्यौ करिहस्तौ च, पक्षोद्योताऽर्थवर्धितौ।
ज्ञेयौ गरुडपक्षौ च, दण्डपक्षौ तथैव च।।10।।

ऊर्ध्वमण्डलजौ चैव, पार्श्वमंडलाजावपि।
पाश्वार्धमण्डलौ चैव, उरोमण्डलकौ तथा।।11।।
इष्टस्वस्तिककावन्यौ, तथा वै पद्मकोशिकौ।
अल्लिपल्लवसंज्ञौ च, तथा चोल्वनसंज्ञितौ।।12।।
ललितौ वलितौ चैव, ज्ञेया नृत्यकराः सदा।
विष्णुधर्मोत्तरपुराण, खण्ड 3, अध्याय 25, श्लो. 1-13, पृ. 320

2. चतुःषष्टिरिहेदानीं, हस्तानामभिधीयते।
लक्षणं विनि (योगश्च), योगायोगविभागतः।।1।।
पताकस्त्रिपताकश्च, तृतीयः कर्तरीमुखः।
अर्धचन्द्रस्तथारालः, शुकतुण्डस्तथापरः।।2।।
मुष्टिश्च शिखरश्चैव, कपित्थः खटकामुखः।
सुच्चास्य (स्यः) प (द्म) कोशाहि, (शि) रसौ मृगशीर्षकः।।3।।
काङ्गलपद्मकोलश्च, चतुरो भ्रमरस्तथा।
हंसास्यो हंसपक्षश्च, सन्दंशमुकुला (वदि?)।।4।।
ऊर्णनाभस्ताम्रचूढ (ड), इत्येषा चतुरन्विता।
हस्तानां विंशतिस्तेषां, लक्षणं कर्म चोच्यते।।5।।
समरांगणसूत्रधार, 83/1-5

3. त्रयोदशाथ कथ्यन्ते, संयुता नामलक्षणैः।
अञ्जलिश्च कपोतश्च, कर्कटः स्वस्तिकस्तथा।।192।।
खटको (का) वर्धमानश्चा, प्यस (प्यूत्स) ङ्गनिषधावपि।
डोलः पुष्पपुटस्तद्वन्मकरो गजदन्तकः।।193।।
(वरित्थादश कथ्यन्ते संयता नामलक्षणैः।
अञ्जुलिश्च कपोतस्य, कर्कटः स्वस्तिकस्तथा?)।।194।।
त्रयोदशैते कथिता, हस्ताः संयुक्तसंज्ञिताः।
पताकाभ्यां तु हस्ताभ्यां, संश्लेषात् सोऽञ्जलिः स्मृतः।।195।।
समरांगणसूत्राधार, 83/192-195

4. लक्षणं वृ (नृ)त्तहस्तानामिदानीमभिधीयते।
चतुरश्रौ तथोद्वृतौ स्वस्तिकौ विप्रकीर्णौ (र्णकौ)।।221।।
(पद्मकोशाभिधानौ) चाप्यरालखटकामुखौ।
अ (आ) विद्धवक्त्रकौ, (सूचीमुद्ररेविव?)संज्ञकौ।।222।।
अर्धरिचितसंज्ञौ तु, तथैवोत्तानवञ्चितौ।

पल्लवाक्षो (ख्यौ) (निरोवोऽथ?), केशबन्धौ लताकरौ।।223।।
करिहस्तौ तथा पक्षवञ्चिताक्षौ (ख्यौ) ततः (परम्)।
(पक्षे प्रद्योतकरेव्याच?) तथा गरुडपक्षकौ।।224।।
ततश्च दण्डपक्षाख्यावूर्ध्वमण्डलिनौ ततः।
पार्श्वमण्डलिनौ तद्वदुरोमण्डलिनावपि।।225।।
अनन्तरं करौ ज्ञेयावुरः पार्श्वार्धमण्डलौ।
मुष्टिकस्वस्तिकाख्यौ च नलिनीपद्मकोशकौ।।226।।
ततश्च कथितौ हस्तावलपल्लवकोल्बणौ।
ललितौ वलितप (ता) ख्यावित्येकान्नत्रिंशदीरिता।।227।।

समरांगणसूत्रधार, 83/221-227

5. आसन एवं योगमुद्राएँ, डॉ. रवीन्द्र प्रताप सिंह, पृ. 14
6. वही, पृ. 14
7. संगीत रत्नाकार, भा. 4, अध्याय 7, श्लोक 102-184 पृ. 32-51
8. संगीत रत्नाकार, भा. 4, अध्याय 7, श्लोक 185-217 पृ. 51-59
9. संगीत रत्नाकार, भा. 4, अध्याय 7, श्लोक 218-282 पृ. 59-80
10. आसन एवं योग मुद्राएँ, पृ. 16
11. पताकस्त्रिपताकश्चार्धचन्द्रः कर्तरीमुखः।
अरालमुष्टिशिखर, कपित्थखटकामुखाः।।
शुकतुण्डश्च काङ्गूल, पद्मकोशोऽलपल्लवः।
सूचीमुखः सर्पशिराश्चतुरो मृगशीर्षकः।।
हंसास्यो हंसपक्षश्च, भ्रमरो मुकुलस्तथा।
ऊर्णनाभश्च संदंशस्, ताम्रचूडः करः परः।।
चतुर्विंशतिरित्येते, हस्तका स्युरसंयुताः।
अभिनेयपरत्वेन, क्वचित् स्युः संयुता अपि।।
उपधानः सिंहमुखः, कदम्बश्च निकुञ्चकः।
एतैः संमिलिता भूत्वा, स्युरष्टाविंशतिश्च ते।।

नृत्यरत्नकोश-उल्लास1, परीक्षण 1, श्लो. 506-10

12. अञ्जलिश्च कपोतश्च, कर्कशः स्वस्तिकस्तथा।
खेडका 'वर्धमानाख्य, उत्सङ्गो निषधस्तथा।।
ढोलः पुष्पपुटश्चैव, तथा मकरसंज्ञकः।

गजदन्तो बहित्थश्च, वर्धमानस्तथैव च।
त्रयोदशैते विज्ञेया, संयुता हस्तका बुधैः।।
नृत्यरत्नकोश, उल्लास 1, परीक्षण 1, श्लो. 511-12

13. *चतुरस्रावथोद्वृत्ता, वन्यौ तलमुखाभिधौ।*
स्वस्तिकौ विप्रकीर्णाख्या वरालखटकामुखौ।।
आविद्ध वक्रौ सूच्यास्यौ, रेचितावधरेचितौ।
तथार्ध (?र्ध) चतुरस्राख्यौ, हस्तावुत्तानवञ्चितौ।।
नितम्बौ पल्लवाख्यौ च, केशबन्धाभिधौ करौ।
लताख्यौ करहस्तौ च, पक्षवञ्चितकाभिधौ।।
पक्षप्रद्योतकौ दण्डपक्षौ गरुडपक्षकौ।
ऊर्ध्वमण्डलिनौ हस्तौ, पार्श्वमण्डलिनौ तथा।।
उरोमण्डलिनौ ताभ्यामुरः पार्श्वार्धमण्डलौ।
मुष्टिकस्वस्ति कावन्यौ, नलिनीपद्मकोशकौ।।
अलपद्मानुल्वणौ च, वलितौ ललितौ तथा।
वरदाभयदौ चेति, द्वात्रिंशन्नृत्यहस्तकाः।।
नृत्यरत्नकोश, उल्लास 1, परीक्षण 1, श्लो. 515-520

●

अध्याय–4

अभिनय दर्पण में वर्णित अतिरिक्त मुद्राओं के सुप्रभाव

नन्दिकेश्वर कृत अभिनय दर्पण 6वीं-7वीं शताब्दी का असाधारण ग्रन्थ माना जाता है। इसमें नाट्य सम्बन्धी हस्त मुद्राओं का सुविस्तृत विवेचन है जो संख्या भेद को छोड़कर नाट्यशास्त्र के समान ही ज्ञात होता है। अभिनय दर्पण में असंयुक्त हस्त मुद्राओं के 28 प्रकार हैं और संयुक्त हस्त मुद्राओं की संख्या 23 कही गई हैं जबकि नाट्यशास्त्र में असंयुक्त मुद्राएँ 24 और संयुक्त मुद्राएँ 13 प्रकार की बताई गई हैं। इसी प्रकार अभिनय दर्पण में नृत्तहस्त की 23 मुद्राओं का उल्लेख है जबकि नाट्यशास्त्र में तत्सम्बन्धी 30 प्रकार कहे गये हैं।

अभिनय दर्पण में वर्णित 74 नाट्य मुद्राओं की सूचि इस प्रकार है–

असंयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. पताका मुद्रा 2. त्रिपताका मुद्रा 3. अर्धपताका मुद्रा 4. कर्तरीमुख मुद्रा 5. मयूर मुद्रा 6. अर्धचन्द्र मुद्रा 7. अराल मुद्रा 8. शुकतुण्ड मुद्रा 9. मुष्टि मुद्रा 10. शिखर मुद्रा 11. कपित्थ मुद्रा 12. कटकामुख मुद्रा 13. सूचीमुख मुद्रा 14. चन्द्रकला मुद्रा 15. पद्मकोश मुद्रा 16. सर्पशीर्ष मुद्रा 17. मृगशीर्ष मुद्रा 18. सिंहमुख मुद्रा 19. कांगुल मुद्रा 20. अलपद्म मुद्रा 21. चतुर मुद्रा 22. भ्रमर मुद्रा 23. हंसास्य मुद्रा 24. हंसपक्ष मुद्रा 25. सन्दंश मुद्रा 26. मुकुल मुद्रा 27. ताम्रचूड़ मुद्रा 28. त्रिशूल।[1]

संयुक्त हस्त– 1. अंजलि मुद्रा 2. कपोत मुद्रा 3. कर्कट मुद्रा 4. स्वस्तिक मुद्रा 5. डोलाहस्त मुद्रा 6. पुष्पपुट मुद्रा 7. उत्संग मुद्रा 8. शिवलिंग हस्त मुद्रा 9. कटकावर्धन मुद्रा 10. कर्तरी स्वस्तिक मुद्रा 11. शकट मुद्रा 12. शंख मुद्रा 13. चक्र मुद्रा 14. सम्पुट मुद्रा 15. पाश मुद्रा 16. कीलक मुद्रा 17. मत्स्य मुद्रा 18. कूर्म मुद्रा 19. वराह मुद्रा 20. गरूड मुद्रा 21. नागबंध मुद्रा 22. खट्वा मुद्रा 23. मेरूदंड हस्त मुद्रा।[2]

अभिनय दर्पण में कुछ मुद्राएँ भिन्न-भिन्न देवताओं के नाम से भी प्राप्त होती है–

1. देवहस्त मुद्रा 2. ब्रह्महस्त मुद्रा 3. ईश्वर मुद्रा 4. विष्णु मुद्रा 5. सरस्वती मुद्रा 6. पार्वती मुद्रा 7. लक्ष्मी मुद्रा 8. विनायक मुद्रा 9. षण्मुख मुद्रा 10. मन्मथ मुद्रा 11. इन्द्र मुद्रा 12. अग्नि मुद्रा 13. यम मुद्रा 14. निर्ऋतिहस्त मुद्रा 15. वरुण मुद्रा 16. वायु मुद्रा 17. कुबेरहस्त मुद्रा।[3]

दशअवतार सम्बन्धी मुद्राएँ– 1. मत्स्यावतार 2. कूर्मावतार 3. वराहावतार 4. नृसिंहावतार 5. वामनावतार 6. परशुरामावतार 7. रामचन्द्रावतार 8. बलरामावतार 9. कृष्णावतार 10. कल्कि अवतार।

असंयुक्त हस्त मुद्राएँ

अभिनय दर्पण में नाट्यशास्त्र की अपेक्षा असंयुक्त हस्त की चार मुद्राएँ अधिक कही गई हैं, किन्तु नाट्य शास्त्र में वर्णित 'ऊर्णनाभ' का इसमें उल्लेख ही नहीं है। अतिरिक्त चार मुद्राओं के नाम ये हैं– 1. अर्धपताका 2. मयूरहस्त 3. चन्द्रकला एवं 4 सिंहमुख। इसमें पाँच प्रकार की असंयुक्त हस्त मुद्राएँ और भी बताई गई हैं जैसे– 1. त्रिशूल 2. व्याघ्रहस्त 3. अर्धसूची हस्त 4. कटक हस्त 5. पल्ली हस्त। इन्हें 28 प्रकार की परम्परागत असंयुक्त हस्त मुद्राओं में नहीं गिना गया है।

अभिनय दर्पण में निर्दिष्ट अतिरिक्त हस्त मुद्राओं का स्वरूप इस प्रकार ज्ञातव्य है [4]–

1. अर्धपताका मुद्रा

पताका ध्वज को कहते हैं। इस मुद्रा नाम के अनुसार जिस मुद्रा में अर्धपताका का स्वरूप दिखाया जाता है उसे अर्धपताका मुद्रा कहते हैं। निम्न दर्शाया चित्र अर्धपताका को इंगित करता है।

पताका मंगल का सूचक है। रथयात्रा आदि में शोभा बढ़ाने एवं विशेष चिह्न को दर्शाने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। पताका के माध्यम से शोभायात्रा में जुटा वर्ग किस परम्परा का अनुयायी है उसका बोध होता है।

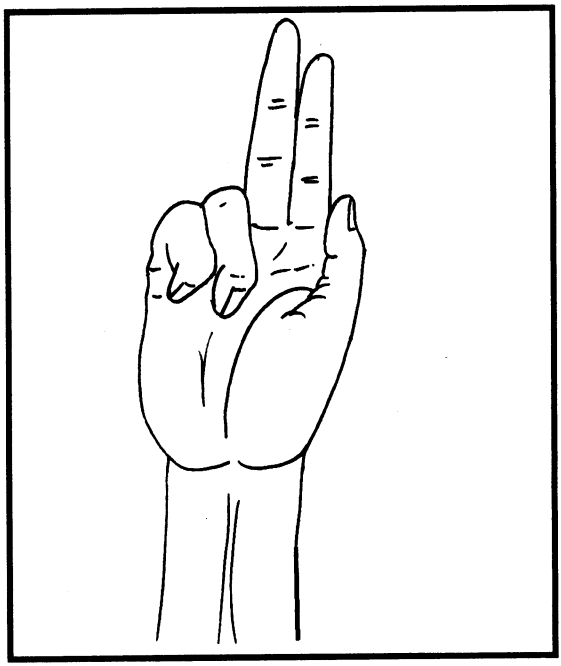
इस नाट्य मुद्रा का प्रयोग हिन्दु और बौद्ध परम्परा में भी देवी-देवताओं के द्वारा समान रूप से किया जाता है। यह मुद्रा छुरा, चाकु एवं पताका की

सूचक मानी गई है।

विधि

दायें अथवा बायें हाथ को छाती के स्तर तक ऊपर उठायें, फिर अंगूठे को किंचित झुकाते हुए तर्जनी से सटायें, तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों को ऊपर की ओर सीधी रखें तथा अनामिका और कनिष्ठिका को नीचे की ओर झुकाने से अर्धपताका मुद्रा बनती है।[5]

आनन्दकुमार स्वामी के अनुसार इस मुद्रा में अंगूठा सीधा रहता है।[6]



अर्धपताका मुद्रा

लाभ

चक्र– अनाहत एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं पृथ्वी तत्त्व **गन्थि–** थायमस एवं गोनाड्स ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद केन्द्र एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्तसंचरणतंत्र मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव।

2. मयूर हस्त मुद्रा

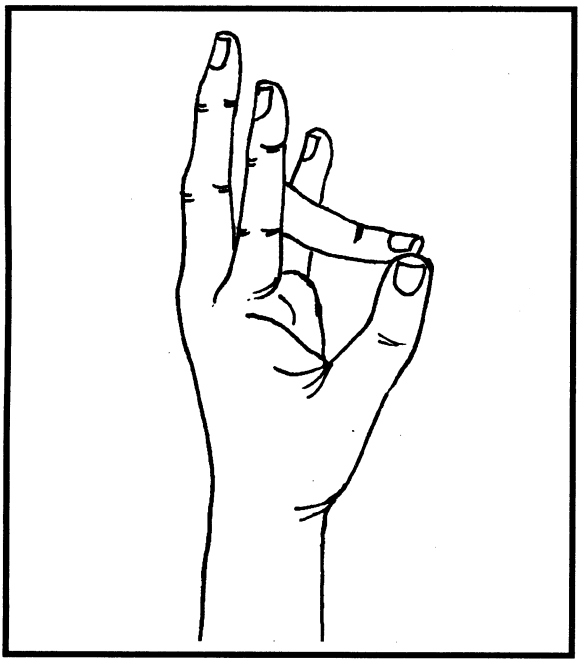
मयूर संस्कृत का शुद्ध रूप है, प्रचलित भाषा में इसे मोर कहते हैं। संस्कृत में इसका एक नाम भुजंगभुक् भी है क्योंकि यह सांप को खा जाता है। यह सुन्दर पक्षी राष्ट्रीय पक्षी भी माना जाता है। इसके पंख अत्यंत सुंदर होते हैं और यह बादलों को देखकर नृत्य करता है।

यह मुद्रा मोर जैसी प्रतीत होती है इसलिए मोर की सूचक तथा शाश्वतता और प्रेम की प्रतीक मुद्रा है। यह नाट्य मुद्रा हिन्दु और बौद्ध परम्परा में भी देवताओं के द्वारा या उनके लिए धारण की जाती है। इस मुद्रा को शकुन के रूप में भी देखते हैं।

विधि

दायीं हथेली को सामने की ओर करते हुए अंगूठा और अनामिका के अग्रभाग को स्पर्शित करें तथा शेष अंगुलियों को ऊपर की ओर सीधा फैला देने पर मयूर हस्त मुद्रा बनती है।[7]

(ACG) के अनुसार इसमें तर्जनी और मध्यमा को हल्का सा अलग करते हुए सीधा फैलाते हैं तथा कनिष्ठिका को हल्की सी झुकाते हैं।[8]



मयूर हस्त मुद्रा

लाभ

चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र
तत्त्व– वायु एवं आकाश तत्त्व
ग्रन्थि– थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं दर्शन

केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण प्रणाली, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

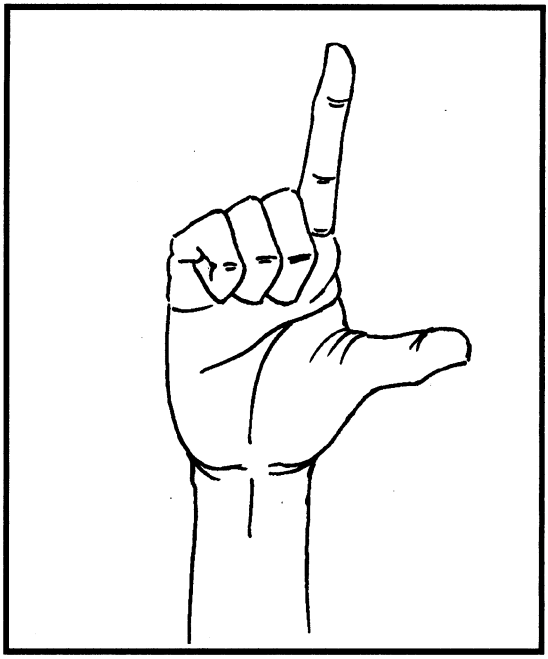
3. चंद्रकला मुद्रा

यह चन्द्रकला शब्द चन्द्रमा की सोलह कलाओं का बोध कराती है। चन्द्र की कलाएँ (किरण या ज्योति) कृष्णपक्ष में निरन्तर घटती है और शुक्ल पक्ष में क्रमशः बढ़ती जाती है। जिस पक्ष में चन्द्रमा की ज्योति मन्द पड़ती है वह कृष्ण पक्ष और जिस पक्ष में चन्द्र का प्रकाश फैलता है वह शुक्ल पक्ष कहलाता है। प्रस्तुत नाट्य मुद्रा चन्द्रमा की घटती-बढ़ती कलाओं को दर्शाती है।

एक हाथ से की जाने वाली यह मुद्रा सूचि मुद्रा के समान है।

विधि

दायीं अथवा बायीं हथेली को सामने की ओर स्थिर करें। तदनन्तर मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को हथेली की तरफ अंदर मोड़ें तथा अंगूठा और तर्जनी को पृथक करने पर चंद्रकला मुद्रा बनती है।[9]



चंद्रकला मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** जल एवं वायु तत्त्व **गन्थि–** प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य केन्द्र एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, नाक, कान, गला, मुँह, स्वर यंत्र।

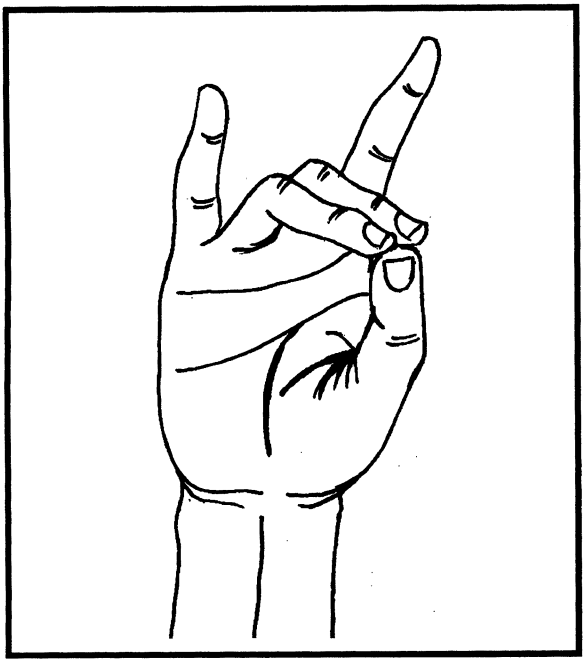
4. सिंहमुख मुद्रा

इस मुद्रा के माध्यम से सिंह के मुख भाग को दर्शाया जाता है अत: इसका यथोचित नाम सिंहमुख मुद्रा है। यह मुद्रा नाटक आदि में एक हाथ से धारण की जाती है।

यह मुद्रा सिंह के मस्तिष्कीय भाग, सुगंध और मुक्ति आदि को दर्शाती है।

विधि

दायीं हथेली को आगे की तरफ करें, मध्यमा और अनामिका के अग्रभागों या प्रथम पोरों को अंगूठे के अग्रभाग से योजित करें तथा शेष दोनों अंगुलियों



सिंहमुख मुद्रा

को ऊपर की ओर सीधा फैला देने पर सिंहमुख मुद्रा बनती है।[10]

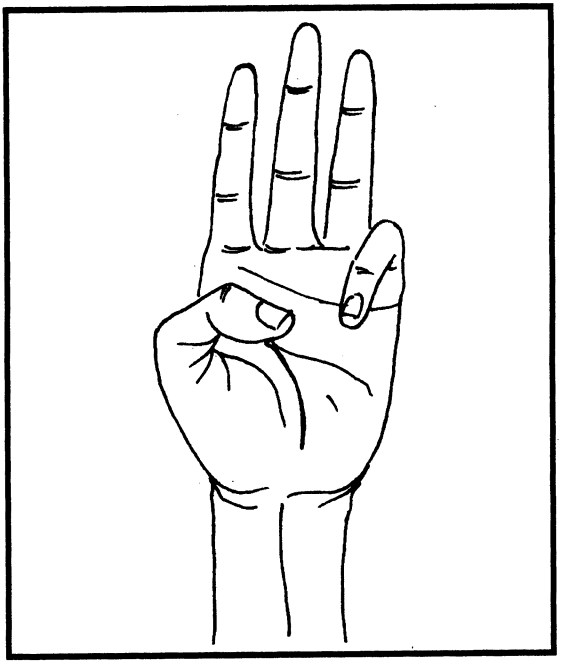
लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **गन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पांचन संस्थान, नाड़ी तंत्र, यकृत, आंते, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

5. त्रिशूल मुद्रा

एक प्रकार का अस्त्र, जिसमें तीन धारदार नोकें होती हैं वह त्रिशूल कहलाता है। इस मुद्रा की रचना त्रिशूल के समान ही होती है। यह महादेव का अस्त्र माना जाता है।

यह मुद्रा नाटक आदि में नृत्यकारों द्वारा एक हाथ से धारण की जाती है। यह तीन के समूह की एवं कपित्थ वृक्ष के पत्ती की सूचक है। इसे विघ्नों के नाश एवं बाधाओं के निवारण की सूचक भी माना जा सकता है।



त्रिशूल मुद्रा

विधि

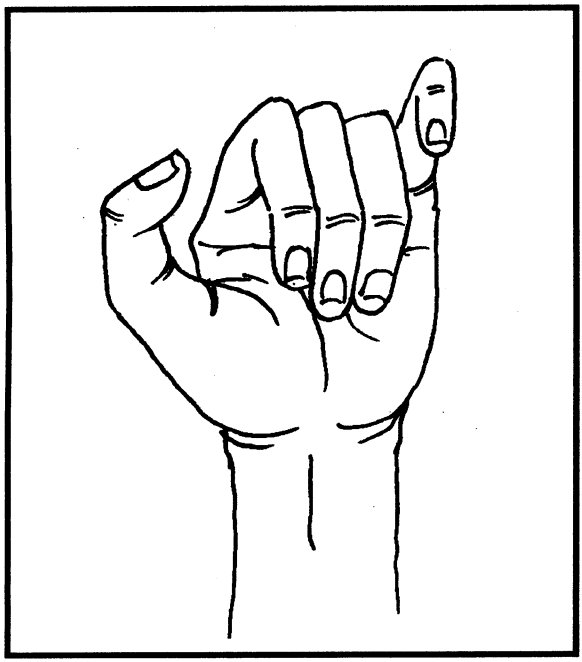
दायीं हथेली को सामने की तरफ करते हुए तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को ऊपर की ओर सीधा फैलायें तथा कनिष्ठिका और अंगूठे को अलग रखते हुए हथेली की तरफ मोड़ने से त्रिशूल मुद्रा बनती है।[11]

लाभ

चक्र– मणिपुर, मूलाधार एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** अग्नि, पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, शक्ति एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, नाड़ी तंत्र, स्वर तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, नाक, कान, गला, मुँह।

6. व्याघ्र मुद्रा

बाघ या शेर को व्याघ्र कहते हैं। इस मुद्रा के द्वारा व्याघ्र का प्रतिबिंब दिखाया जाता है अत: इसे व्याघ्र मुद्रा कहा गया है। व्याघ्र स्वभावत: भयावह होता है। इसलिए यह मुद्रा उग्रता, क्रूरता एवं भय आदि दिखाने के उद्देश्य से की जाती होगी।



व्याघ्र मुद्रा

विधि

दायीं हथेली को सामने की ओर दिखाते हुए तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को अधोमुख करें तथा कनिष्ठिका और अंगूठे को किंचित झुकाने पर व्याघ्र मुद्रा बनती है।[12]

लाभ

चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि

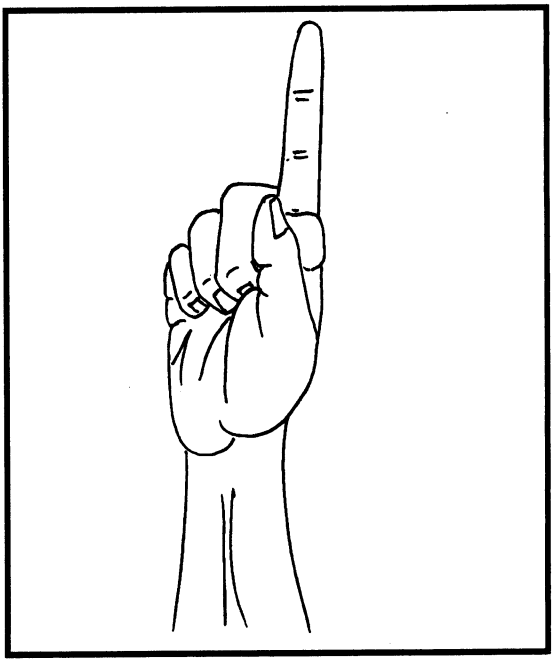
केन्द्र– आनंद केन्द्र एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़े, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

7. अर्धसूची मुद्रा

सुई का संस्कृत रूप सूची है। इस मुद्रा में सुई पकड़ने की अर्ध अवस्था का बोध होता है अत: इसे अर्धसूची मुद्रा कहते हैं। यह नाट्य मुद्रा एक हाथ से की जाती है।

विधि

दायीं हथेली को सामने की ओर करें, फिर कपित्थ मुद्रा की भाँति मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली की तरफ मोड़ें, अंगूठे को मध्यमा से सटाते हुए सीधा रखें तथा तर्जनी को ऊपर की ओर फैला देने पर अर्धसूची मुद्रा बनती है।[13]



अर्धसूची मुद्रा

लाभ

चक्र– सहस्रार, मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** आकाश, अग्नि एवं वायु तत्त्व **केन्द्र–** ज्ञान, तैजस एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि–** पीयूष, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** ऊपरी मस्तिष्क, आँखें, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, हृदय, फेफड़ें, रक्त संचरण तंत्र आदि।

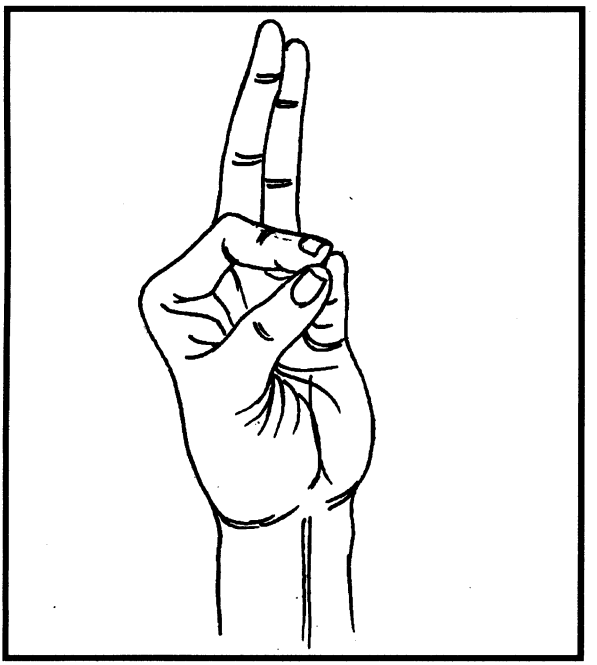
8. कटक मुद्रा

कटक शब्द के अनेक अर्थों में यहाँ दर्शाये चित्र के अनुसार कटक से तात्पर्य पहाड़ का मध्यभाग होना चाहिए।

यह मुद्रा पर्वत के मध्यभाग जैसी प्रतीत होती है। पर्वत का बीच का हिस्सा ऊँचा तथा आस-पास का नीचे में फैला हुआ रहता है। इस मुद्रा में उसी तरह की प्रतिकृति दिखती है। यह नाट्य मुद्रा एक हाथ से की जाती है।

विधि

दायें हाथ को सामने की तरफ करें, फिर सन्दंश मुद्रा में स्थित हाथ की मध्यमा और अनामिका को ऊपर की ओर करें तथा कनिष्ठिका और तर्जनी को मोड़कर अंगूठे के अग्रभाग से योजित कर देने पर कटक मुद्रा बनती है।[14]



कटक मुद्रा

लाभ

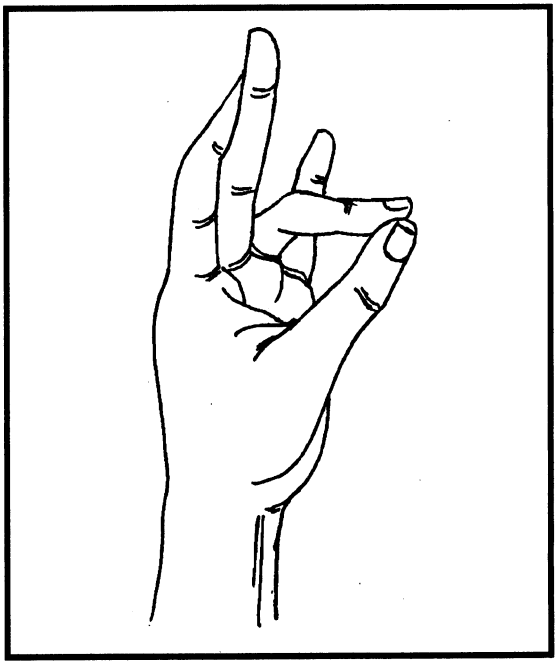
चक्र – मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– पृथ्वी, जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि** – प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र** – शक्ति, स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग** – मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, प्रजनन अंग, मल-मूत्र अंग, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

9. पल्लि मुद्रा

हिन्दी कोश के अनुसार छोटे गाँव या कुटी को पल्लि कहते हैं। यह नृत्य मुद्रा ग्राम या कुटी का संकेत करती है।

विधि

दायें हाथ को सामने की ओर करें, फिर मयूर मुद्रा में रचित हाथ की तर्जनी को मध्यमा अंगुली के पृष्ठ भाग पर रख दिया जाए तब पल्लि मुद्रा बनती है।[15]



पल्लि मुद्रा

लाभ

चक्र – मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व** – अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि** – एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र** – तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग** – पाचन संस्थान, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे ।

संयुक्त हस्त मुद्राएँ

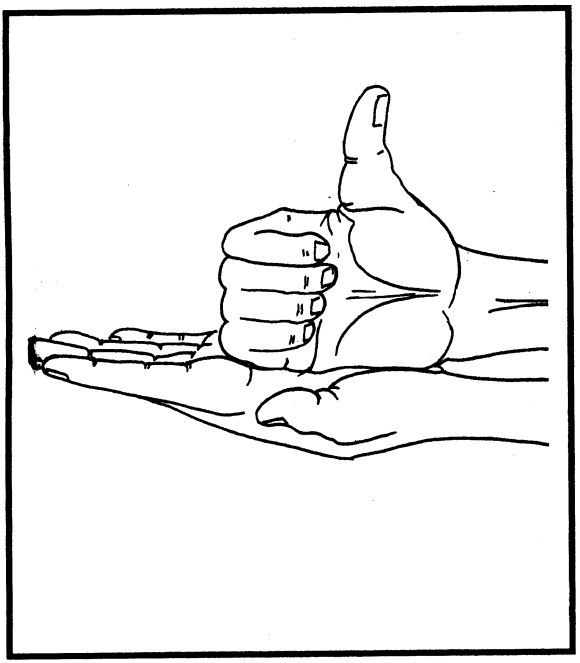
अभिनय दर्पण के अन्तर्गत नाट्यशास्त्र में वर्णित संयुक्त हस्त की 10 मुद्रायें अतिरिक्त बताई गई हैं, किन्तु इसमें नाट्यशास्त्र की चार मुद्राओं का उल्लेख ही नहीं है उनके नाम इस प्रकार हैं- 1. निषध 2. गजदन्त 3. अवहित्थ और 4. वर्धमान। इस प्रकार नाट्य शास्त्र से भिन्न कुल 14 प्रकार की संयुक्त हस्त मुद्राओं का विवरण इस प्रकार है।

1. शिवलिंग मुद्रा 2. कर्तरी स्वस्तिक मुद्रा 3. शकट मुद्रा 4. शंख मुद्रा 5. चक्र मुद्रा 6. सम्पुट मुद्रा 7. पाश मुद्रा 8. कीलक मुद्रा 9. मत्स्य मुद्रा 10. वराह मुद्रा 11. गरूड़ मुद्रा 12. नागबन्ध मुद्रा 13. खट्वा मुद्रा 14. भेरूण्ड मुद्रा।

1. शिवलिंग मुद्रा

महादेव का लिंग शिवलिंग कहलाता है। मुद्रा स्वरूप के अनुसार इसमें शिवलिंग जैसी प्रतिकृति बनती है अत: इसे शिवलिंग मुद्रा कहा गया है।

नाट्य कला में शिवलिंग का बोध



शिवलिंग मुद्रा

करवाने के उद्देश्य से इस मुद्रा का उपयोग होता है।

विधि

बायें हाथ की अर्धचन्द्र हथेली पर दाहिने हाथ को शिखर मुद्रा की भाँति रख देने पर शिवलिंग मुद्रा बनती है।[16]

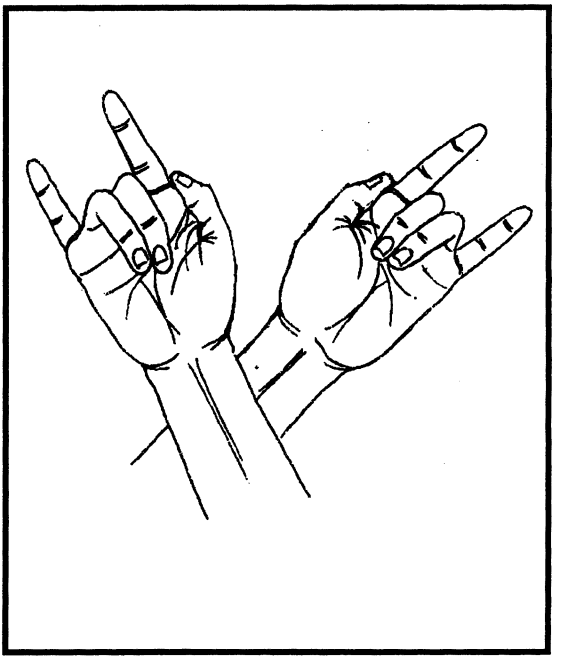
लाभ

चक्र– सहस्रार, मणिपुर एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** आकाश, अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व **केन्द्र–** ज्ञान, तैजस एवं शक्ति केन्द्र **ग्रन्थि–** पीयूष, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं गोनाड्स **विशेष प्रभावित अंग–** आँखें, मस्तिष्क, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी संस्थान, मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव।

2. कर्तरी स्वस्तिक मुद्रा

कर्तरी अर्थात कैंची। जिस मुद्रा में कैंची और स्वस्तिक दोनों का प्रतिरूप दिखाई दे उसे कर्तरी स्वस्तिक मुद्रा कह सकते हैं।

यह संयुक्त मुद्रा नाटक-नृत्य आदि में उपयोगी है। विद्वानों के अभिमत से यह किसी वृक्ष अथवा पहाड़ के शिखर की सूचक है।



कर्तरी स्वस्तिक मुद्रा

विधि

दोनों हाथों को कर्तरी मुख मुद्रा में रचित कर एक हाथ के ऊपर दूसरा हाथ रख देने से कर्तरी स्वस्तिक मुद्रा बनती है।[17]

लाभ

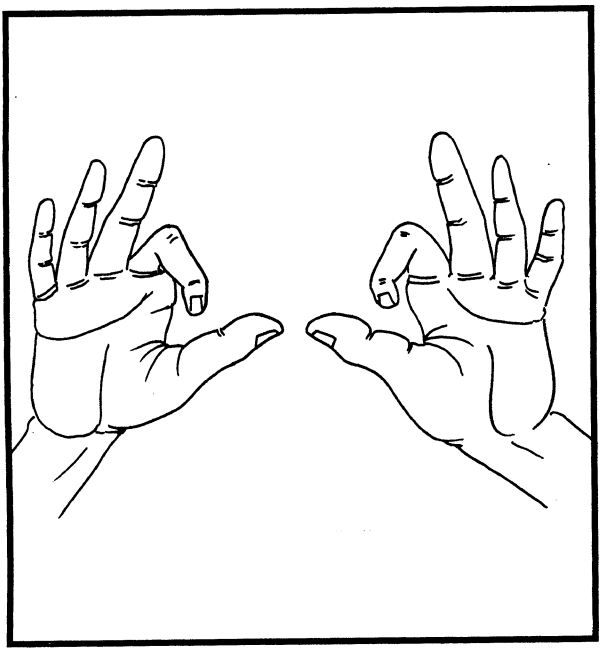
चक्र– विशुद्धि, सहस्त्रार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** विशुद्धि, ज्ञान एवं आनंद केन्द्र **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड, पीयूष एवं थायमस ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** नाक, कान, गला, मुँह, स्वरयंत्र, ऊपरी मस्तिष्क, आँखें, हृदय, फेफड़ें, रक्त संचरण प्रणाली आदि।

3. शकट मुद्रा

वाहन को संस्कृत में शकट कहते हैं। यह संयुक्त मुद्रा नाटक आदि में भावाभिव्यक्ति हेतु की जाती है। विद्वानों के अनुसार यह राक्षसों के भावों की सूचक है।

विधि

दोनों हाथों को भ्रमर मुद्रा में रचित कर मध्यमा और अंगूठों को फैलायें। फिर दोनों अंगूठों के अग्रभाग को निकट लाने पर शकट मुद्रा बनती है।[18]



शकट मुद्रा

इस मुद्रा में तर्जनी अंगुली हथेली के भीतर मुड़ी हुई, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका ऊपर की तरफ अलग-अलग फैली हुई तथा दोनों हाथ के अंगूठे निकट रहते हैं।

लाभ

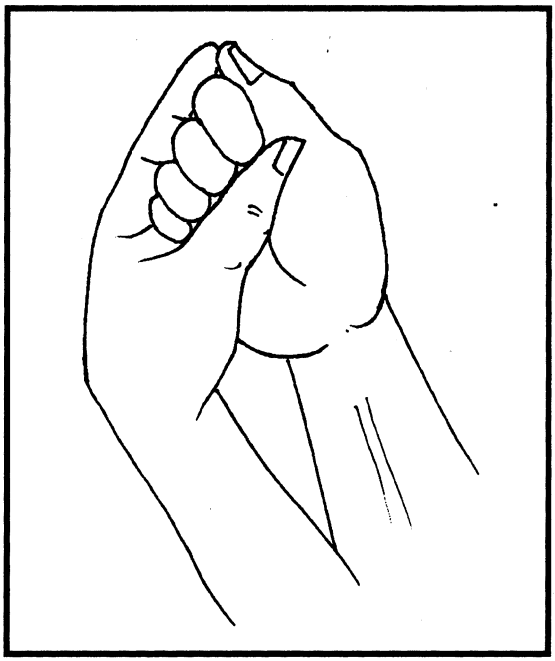
चक्र– अनाहत एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** वायु तत्त्व **केन्द्र–** आनंद एवं विशुद्धि केन्द्र **ग्रन्थि–** थायमस, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड **विशेष प्रभावित**

अंग– नाक, कान, गला, मुंह, स्वरयंत्र, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण तंत्र।

4. शंख मुद्रा

विधि

शिखर मुद्रा में रचित दाहिने हाथ की अंगुलियों और अंगूठे को बायें हाथ के अंगूठे से दबायें। फिर बायीं तर्जनी सहित सभी अंगुलियों को दाहिनी मुट्ठी की अंगुलियों के पृष्ठ भाग पर सटा देने से शंख मुद्रा बनती है।[19]



शंख मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मल- मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँखें।

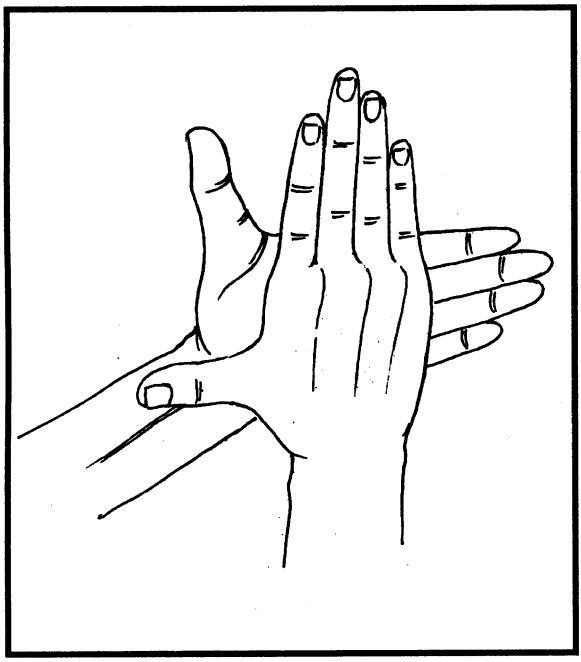
5. चक्र मुद्रा

चक्र के शाब्दिक और पर्यायवाची अनेक अर्थ हैं। सामान्यतया पहिया, चक्का, तेल पिसने का कोल्हू, एक प्रकार का लोह का अस्त्र, फेरा, घुमाव, मंडलाकार घेरा आदि को चक्र कहते हैं। योग के अनुसार शरीरस्थ ऊर्जा केन्द्र चक्र कहलाते हैं। विष्णु के आयुधों के चिह्न, जिन्हें वैष्णव अपने बाहुओं एवं अंगों पर छापते हैं चक्र कहे जाते हैं।

यहाँ चक्र शब्द का प्रयोग इन सबसे भिन्न है। इन्साइक्लोपीड़िया के अनुसार यह मुद्रा वार्त्तालाप की सूचक है। वार्त्तालाप करते वक्त हाथों की जो स्वाभाविक स्थिति होती है इस मुद्रा चित्र में उसी स्थिति का दर्शन है अत: यह चक्र मुद्रा वार्तालाप से सम्बन्धित है।

विधि

दायीं हथेली को नीचे की तरफ (अधोमुख) रखते हुए अंगुलियों को बाहर की ओर फैलायें तथा अंगूठे को अंगुलियों से दूर रखें।



चक्र मुद्रा

तदनन्तर बायीं हथेली को ऊर्ध्वाभिमुख करते हुए इस प्रकार रखें कि दोनों हथेलियाँ अर्धचन्द्र मुद्रा में परस्पर स्पर्शित हो और दोनों की अंगुलियों में 90^0 का कोण बन सके इस तरह चक्र मुद्रा बनती है।[20]

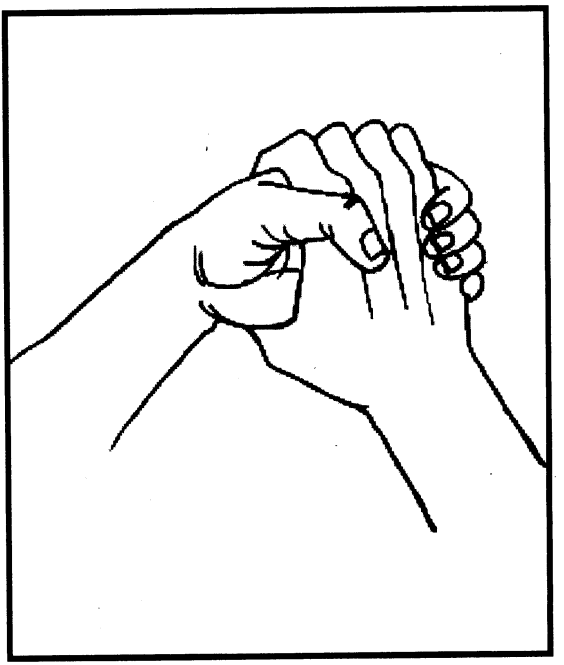
लाभ

चक्र– मूलाधार, मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, तैजस एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग –** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ी तंत्र, आतें, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

6. सम्पुट मुद्रा

मंजुषा या पेटी को सम्पुट कहते हैं। सम्पुट का एक अर्थ रतिबंध (हथलेवा) है। निम्न चित्र में दर्शित मुद्रा रतिबंध की प्रतीक कही जा सकती है।

यह मुद्रा भारत में सम्पुट मुद्रा एवं जापान में 'संफुट गस्सहो' मुद्रा के नाम से जानी जाती है तथा गोपनीयता की सूचक है।



सम्पुट मुद्रा

विधि

दोनों हाथों की हथेलियों को परस्पर में सटाएं। फिर एक हाथ के पृष्ठ भाग पर दूसरे हाथ की अंगुलियों को मोड़ते हुए रखना सम्पुट मुद्रा है।[21]

लाभ

चक्र– विशुद्धि, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड, पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि, दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** कान, नाक, गला, मुंह, स्वर

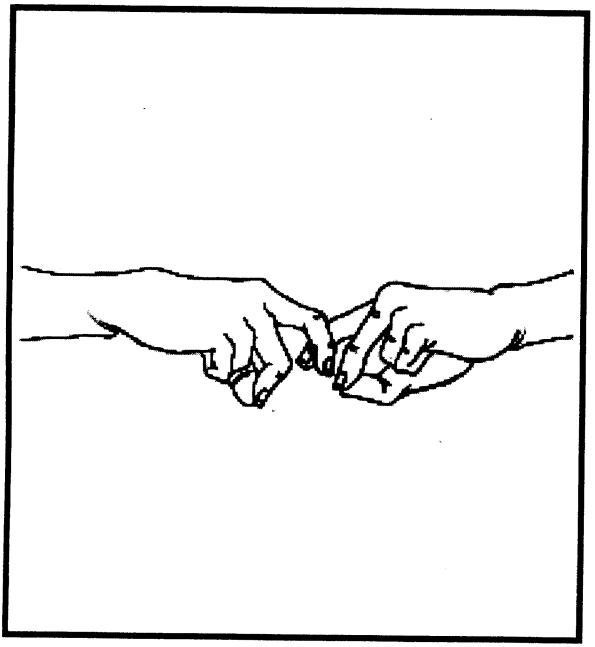
तंत्र, मस्तिष्क, आँख, स्नायु तंत्र।

7. पाश मुद्रा

पाश का सामान्य अर्थ है फंदा । यह मुद्रा नाटकों आदि में विविध भावों को व्यक्त करने के लिए की जाती है। यह संयुक्त मुद्रा वैर या विद्वेष की सूचक मुद्रा है।

विधि

सूच्यास्य मुद्रा में अवस्थित दोनों हाथों की तर्जनियों को परस्पर में बाँध देने पर पाश मुद्रा बनती है।



पाश मुद्रा

लाभ

चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि

केन्द्र– आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

8. कीलक मुद्रा

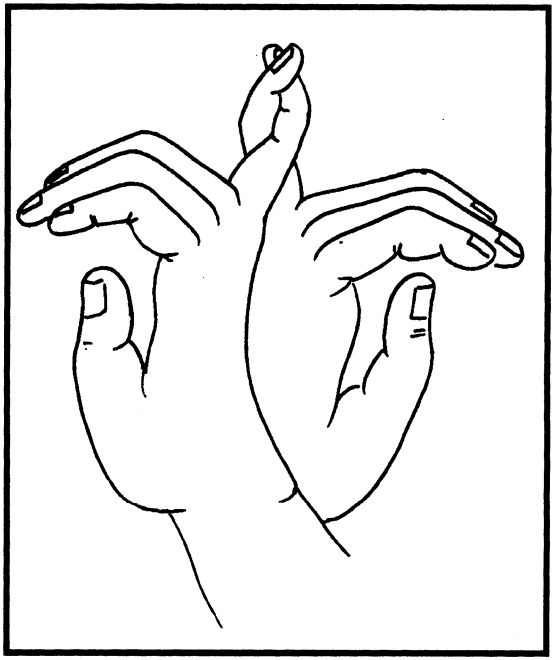
हिन्दी शब्द सागर के अनुसार किलकने की क्रिया, हर्षवर्धन करने की क्रिया कीलक कहलाती है।

यह नाटकीय मुद्रा बच्चे की किलकारियाँ अथवा हर्ष को अभिवर्द्धित करने की क्रिया दर्शाने हेतु की जाती होगी। इस मुद्रा को दोनों हाथों से करते हैं। यह सद्भावनाओं की प्रतीक मुद्रा है।

विधि

अभिनयदर्पण के मतानुसार दोनों हाथों को मृगशीर्ष मुद्रा में रचित कर एक-दूसरे के पृष्ठ भाग को परस्पर में स्पर्श करवाएं। तदनन्तर दोनों कनिष्ठिकाओं को परस्पर में बाँध देने पर क़ीलक मुद्रा बनती है।[23]

द मिरर ऑफ गेश्चर के अनुसार इस मुद्रा में तर्जनी और मध्यमा हथेली की तरफ मुड़ी हुई एवं अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्श करती हुई, अनामिका ऊपर की तरफ, दोनों कनिष्ठिकाएँ एक-दूसरे में ग्रथित तथा दोनों हाथ कलाई पर Cross करते हुए रखते हैं।[24]



कीलक मुद्रा

लाभ

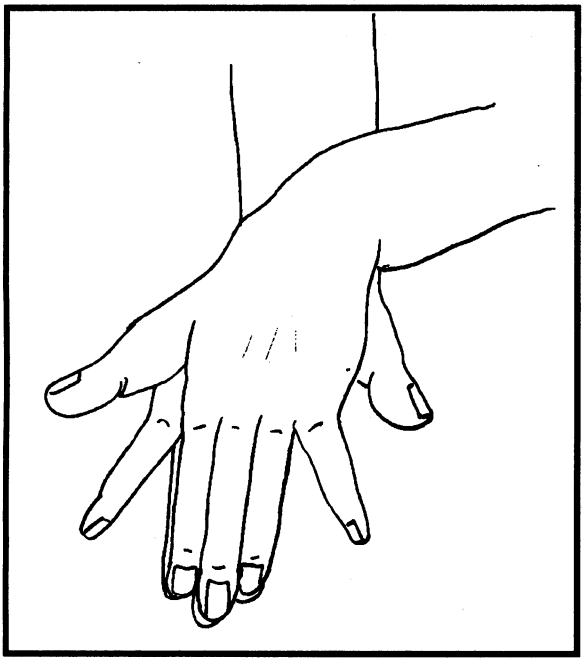
चक्र– अनाहत एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** आनंद एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, रक्त संचरण तंत्र, आँखें एवं मस्तिष्क

9. मत्स्य मुद्रा

यह मुद्रा मत्स्य के समान दिखती है अत: इसे मत्स्य मुद्रा कहा जाता है। इस मुद्रा के द्वारा नाटक आदि में मछली का भाव व्यक्त करते हैं।

विधि

बायें हाथ के पृष्ठ भाग पर दायें हाथ की हथेली को स्पर्शित करते हुए रखें तथा दोनों हाथों की कनिष्ठिका और अंगूठों को फैला देने पर मत्स्य मुद्रा बनती है।[25]



मत्स्य मुद्रा

लाभ

चक्र– आज्ञा, सहस्रार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं जल तत्त्व **केन्द्र–** ज्ञान, ज्योति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **ग्रन्थि–** पिनियल, पीयूष एवं प्रजनन ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, आँखे, स्नायु तंत्र, मल- मूत्र अंग, गुर्दे एवं पाँव।

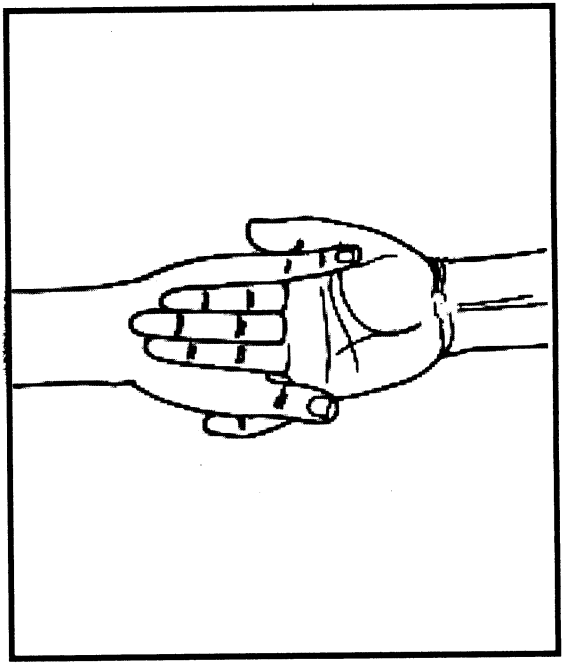
10. वराह मुद्रा

वराह शब्द शुकर, सुअर, विष्णु, सांड, पर्वत आदि अर्थों को सूचित करता है।

यहाँ वराह से अभिप्रेत विष्णु हो सकता है क्योंकि विष्णु का एक अवतार वराह अवतार भी है।

विधि

दोनों हाथों को मृगशीर्ष मुद्रा में रचित कर दायें हाथ के पृष्ठ भाग पर बायीं हथेली को रखें, तदनन्तर दायें हाथ की कनिष्ठिका को बायें अंगूठे से तथा बायें हाथ की कनिष्ठिका को दायें अंगूठे से स्पर्शित कर देने पर वराह मुद्रा बनती है।[26]



वराह मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

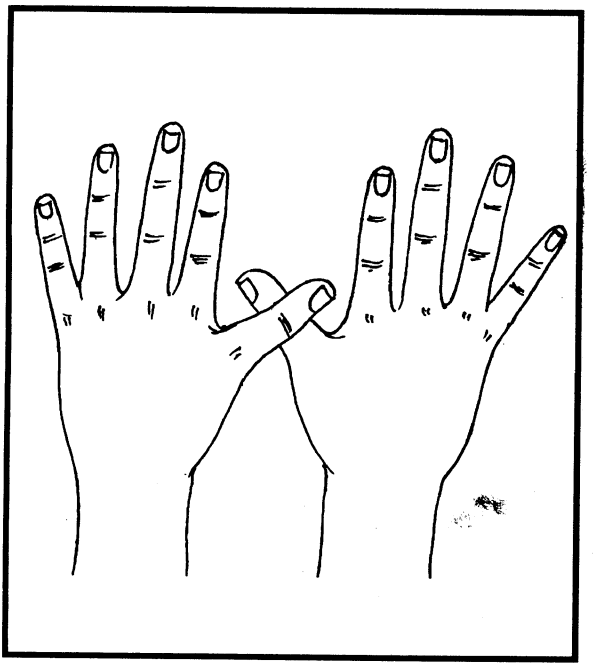
11. गरूड़ मुद्रा

गरूड़ को पक्षियों का राजा कहा जाता है। विष्णु का वाहन गरूड़ है। यह मुद्रा भगवान विष्णु के वाहन गरूड़ की सूचक है।

यह नाट्य मुद्रा जापानी और बौद्ध परम्परा में धर्मगुरूओं और श्रद्धालुओं के द्वारा गर्भधातुमण्डल- वज्रधातुमण्डल, होम आदि धार्मिक क्रियाओं के समय धारण की जाती है।

विधि

दोनों हथेलियों को बाहर की ओर अभिमुख करते हुए अंगुलियों को हल्की सी झुकायें तथा द्वयांगुष्ठों को परस्पर में Cross करते हुए रखने पर अथवा बांध देने पर गरूड़ मुद्रा बनती है।[27]



गरुड़ मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, स्वास्थ्य एवं

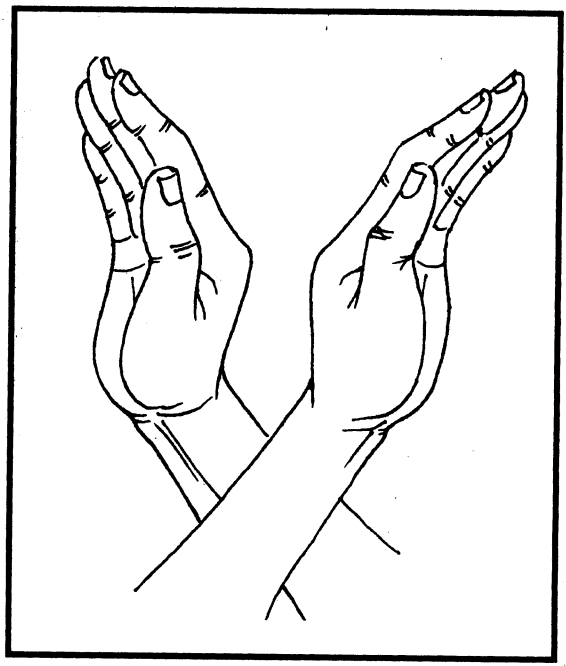
दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, मेरूदण्ड, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

12. नागबन्ध मुद्रा

सर्पों का पारस्परिक बन्ध नागबन्ध कहलाता है। यह नाट्य मुद्रा अथर्ववेद के मन्त्रों की सूचक है तथा दो नागों के बीच के बन्धन को दर्शाती है।

विधि

दोनों हाथों को सर्पशीर्ष मुद्रा में बनाकर एवं उन्हें एक-दूसरे के ऊपर स्वस्तिक की तरह रखने पर नागबन्ध मुद्रा बनती है।[28]



नागबन्ध मुद्रा

लाभ

चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

13. खट्वा मुद्रा

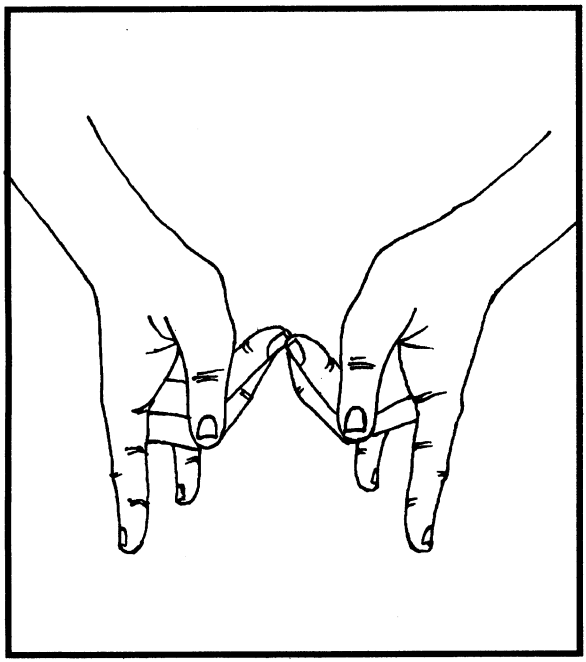
खटिया अथवा पलंग को खट्वा कहते हैं। इस मुद्रा में चार पैर वाले खटिया जैसा प्रतिरूप दिखाई देता है अतः इसे खट्वा मुद्रा कहा गया है।

यह नाटक मुद्रा दोनों हाथों से की जाती है।

विधि

दोनों हाथों को चतुर मुद्रा की तरह बनाकर उन्हें एक-दूसरे के सम्मुख करें, फिर तर्जनी और अंगूठों को पृथक्-पृथक् फैला देने पर खट्वा मुद्रा बनती है।

इन्साइक्लोपीडिया के अनुसार इस मुद्रा में हथेली ऊपर की ओर, मध्यमा और अनामिका हथेली की तरफ मुड़ी हुई, अंगूठा दोनों के दूसरे जोड़ को स्पर्श करता हुआ तथा तर्जनी और कनिष्ठिका नीचे की तरफ रहती है।[30]



खट्वा मुद्रा

लाभ

चक्र– अनाहत एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष**

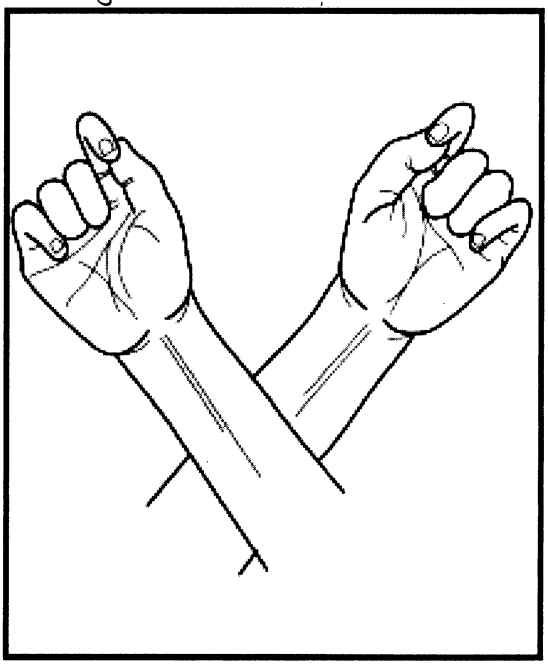
प्रभावित अंग– नाक, कान, गला, मुँह, स्वर तंत्र, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचार प्रणाली।

14. भेरूण्ड मुद्रा

भेरूण्ड मुद्रा भेरूण्ड पक्षी की सूचक है। नाटक में इस विशालकाय पक्षी के अभिनय को प्रदर्शित करने अथवा इस पक्षी की विशेषताओं को सूचित करने हेतु यह मुद्रा की जाती होगी।

विधि

दोनों हाथों को कपित्थ मुद्रा में निर्मित कर उनके मणिबन्धों को योजित कर देने पर भेरूण्ड मुद्रा बनती है।[31]



भेरूण्ड मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं सहस्त्रार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, आँतें, ऊपरी मस्तिष्क एवं आंख।

अभिनय दर्पण छठीं-सातवीं सदी का एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। जैसा कि ग्रन्थ के नाम से ही ज्ञात हो जाता है, यह अभिनय से सम्बन्धित रचना है। मुद्रा विषयक यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें वर्णित अधिकांश मुद्राओं का उल्लेख भरत नाट्य शास्त्र में भी मिलता है। तदुपरान्त इनका पुनर्उल्लेख करने का कारण इसका विस्तृत स्वरूप वर्णन है। इस वर्णन के माध्यम से इन्हें समझने एवं आचरित करने में सुविधा होगी। नाटक, नृत्य आदि में रुचि रखने वाले लोग इनके वर्णन के आधार पर अपने रोगों का शीघ्र निदान कर सकेंगे।

सन्दर्भ-सूची

1. *अभिनय दर्पण, श्लोक 89-92*
2. *अभिनय दर्पण, श्लोक 172-75*
3. *अभिनय दर्पण, श्लोक 204-15*
4. *अभिनय दर्पण, श्लोक 116-25*
5. *अभिनय दर्पण, श्लोक 103*
6. *द मिरर ऑफ गेश्वर, 28*
7. *अस्मिननामिकांगुष्ठौ, श्लिष्टौ चान्याः प्रसारिताः।*
   मयूर हस्तः कथितः, करटीकाविचक्षणैः॥
   अभिनय दर्पण, श्लोक 108
8. *द मिरर ऑफ गेश्वर, 29*
9. (क) *सूच्यामंगुष्ठमोक्षे तु करश्चन्द्रकला भवेत।*
   अभिनय दर्पण, श्लोक 132
   (ख) *द मिरर ऑफ गेश्वर, 32*
10. (क) *मध्यमानामिका ग्राभ्यामंगुष्ठौ मिश्रितौ यदि।*
    शेषौ प्रसारितौ यत्र, स सिंहास्य-करो भवेत॥
    अभिनय दर्पण, श्लोक 142-143
    (ख) *द मिरर ऑफ गेश्वर, 34*
11. (क) *निकुंचनयुतांगुष्ठ, कनिष्ठस्तु त्रिशूलकः।*
    अभिनय दर्पण, श्लोक 165
    (ख) *द मिरर ऑफ गेश्वर, 38*

12. कनिष्ठिकांगुष्ठनमने, मृगशीर्षकरे तथा।
व्याघ्रहस्तः स विज्ञेयो, भरतागमकोविदैः ॥
अभिनय दर्पण, श्लोक 166

13. कपित्थे तर्जनी ऊर्ध्वसारणे त्वर्धसूचिकः।
अभिनय दर्पण, श्लोक 167

14. सन्दंशे ऽप्यूर्ध्वभागे तु मध्यमानामिकान्वया।
कटको हस्त उच्यते।
अभिनय दर्पण, श्लोक 168-169

15. मयूरे तर्जनीपृष्ठो, मध्यमेन युतो यदि।
पल्लिहस्तः स विज्ञेयः, पल्लयर्थे विनियुज्यते ॥
अभिनय दर्पण, श्लोक 170-171

16. वामोऽर्धचन्द्रो विन्यस्तः, शिखरः शिवलिंगकः।
अभिनय दर्पण, श्लोक 186

17. कर्तरीस्वस्तिकाकारा, कर्तरी स्वस्तिको भवेत्।
अभिनय दर्पण, श्लोक 188

18. भ्रमरे मध्यमांगुष्ठप्रसाराच्छकटो भवेत्।
अभिनय दर्पण, श्लोक 189

19. शिखरान्तर्गतांगुष्ठ, इतराङ्गुष्ठसंगतः।
तर्जन्या युत आश्लिष्टः, शंखहस्त प्रकीर्तितः ॥
अभिनय दर्पण, श्लोक 190-191

20. यत्रार्धचन्द्रौ तिर्यंचवन्योन्य-तलसंस्पृशौ।
चक्रहस्तः स विज्ञेयश्चक्रार्थे विनियुज्यते ॥
अभिनय दर्पण, श्लोक 192

21. कुंचितां गुलयश्चक्रे, प्रोक्तः सम्पुटहस्तकः।
अभिनय दर्पण, श्लोक 193

22. सूच्यां निकुंचिते श्लिष्टे, तर्जन्यौ पाश ईरितः।
अभिनय दर्पण, श्लोक 194

23. कनिष्ठे कुंचिते श्लिष्टे, मृगशीर्षस्तु कीलकः।
अभिनय दर्पण, श्लोक 195

24. *द मिरर ऑफ गेश्चर, 41*

25. *करपृष्ठोपरि न्यस्तो, यत्र हस्तस्त्वधोमुखः ।*
किंचित् प्रसारितांगुष्ठ, कनिष्ठो मत्स्यनामकः ।।
अभिनय दर्पण, श्लोक 196

26. *मृगशीर्षे त्वन्यतरे, स्वोपर्येकः स्थिते यदि ।*
कनिष्ठांगुष्ठयोर्योगाद्वराहकर ईरितः ।।
अभिनय दर्पण, श्लोक 198-99

27. *तिर्यकतलस्थितावर्ध चन्द्रावंगुष्ठयोगतः ।*
गरुऽहस्त इत्याहु, र्गरुडार्थे नियुज्यते ।।
(क) अभिनय दर्पण, श्लोक 200
(ख) द मिरर ऑफ गेश्चर, 41
(ग) GDE, 181

28. *सर्पशीर्षस्वस्तिकं च, नागबन्ध इतीरितः ।*
(क) अभिनय दर्पण, श्लोक 201
(ख) द मिरर ऑफ गेश्चर, 41

29. *चतुरे चतुरं न्यस्य, तर्जन्यंगुष्ठ-मोक्षतः ।*
खट्वाहस्तो भवेदेष, खट्वाशिविकयोः स्मृतः ।।
अभिनय दर्पण, श्लोक 201

30. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 41*

31. *अभिनय दर्पण, श्लोक 21*

●

अध्याय-5

भारतीय परम्परा में प्रचलित मुद्राओं की विधि एवं उद्देश्य

आर्य देश में सर्वप्रथम भरत नाट्य में वर्णित मुद्राओं का नाट्यकला आदि में प्रयोग होता था। उसके पश्चात इसी नाट्य शास्त्र का अनुसरण करते हुए राजा भोज, सोमेश्वर, राजा कुम्भकर्ण आदि विद्वानों ने मुद्राओं पर अनुसंधान किया और लगभग भरत नाट्य की मुद्राओं को ही यथावत रूप में स्वीकार किया है। हाँ! नन्दिकेश्वर ने अभिनय दर्पण में कुछ अतिरिक्त मुद्राओं का भी वर्णन किया है।

इसके अनन्तर काल क्रम में अन्य अनेक मुद्राएँ भी नाट्यकला को दर्शाने हेतु अस्तित्त्व में आई और उसकी वजह से भारतीय नाट्यकला का गौरव उत्तरोत्तर बढ़ता गया। प्रस्तुत अध्याय में उन्हीं मुद्राओं का स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. अधो मुष्टि-मुकुल मुद्रा

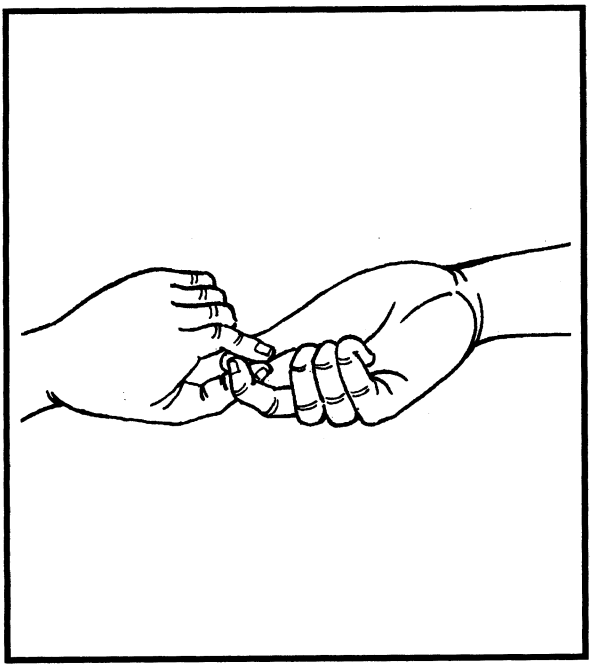
यह मुद्रा तीन शब्दों के मेल से निष्पन्न है। इसमें अधो-नीचे की तरफ, मुष्टि-मुट्ठी, मुकुल शब्द कली अर्थ का वाचक है। इसका अभिप्राय होता है कि जिस मुद्रा में दोनों हाथ मुट्ठी के रूप में बंधे हुए, नीचे की तरफ मुख किये हुए हों और जिसकी आकृति विकसित कली की भाँति दिखाई देती हों उसे अधोमुष्टि मुकुल मुद्रा कहते हैं।

यह मुद्रा नाटकों में और नृत्यों मे धारण की जाती है। जैन परम्परा में वर्णित श्रृंखला मुद्रा इस मुद्रा के तुल्य भासित होती है।

विधि

दोनों हथेलियों को एक–दूसरे के अभिमुख करें, फिर मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को हथेली के अंदर मुट्ठी रूप में मोड़ दें, अंगूठा

और तर्जनी के अग्रभागों को जोड़कर वर्तुलाकार बनायें, फिर दोनों को एक-दूसरे में चैन की तरह संयुक्त कर देने पर अधोमुष्टि मुकुल मुद्रा बनती है।[1]



अधोमुष्टि मुकुल मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर, अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ी तंत्र, आँतें, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण प्रणाली, मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

2. अजमुख मुद्रा

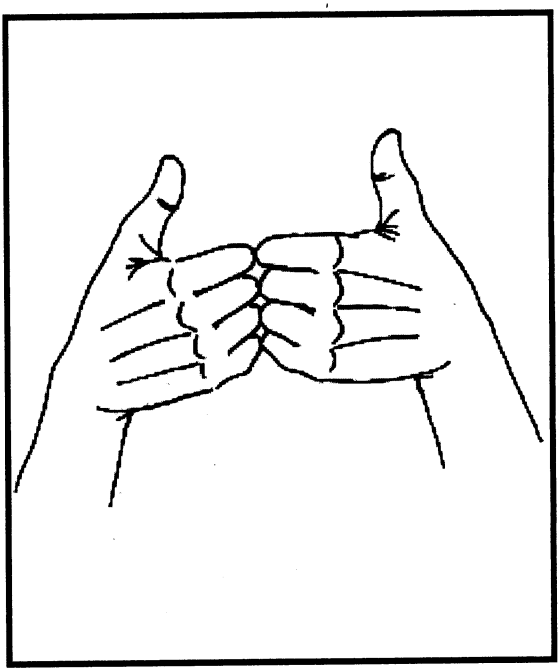
बकरा अथवा बकरी के मुख को दर्शाने वाली मुद्रा अजमुख मुद्रा कहलाती है। प्राचीन किवदन्तियों के अनुसार एक बार किसी यज्ञ में शिव-पार्वती को आमन्त्रित किया गया, वहाँ शिव का अपमान होने पर पार्वती ने देहत्याग कर

दिया, यज्ञकर्त्ता वीरभद्र ने पार्वती के पिता दक्ष एवं उसके यज्ञ का ध्वंस कर दिया परन्तु शिव आज्ञा से दक्ष को जीवित करने के लिए उसके ऊर्ध्व भाग पर बकरे का सिर लगा दिया गया। अनुमानतः इस घटना के सन्दर्भ में अजमुख मुद्रा दिखायी जाती होगी।

इस मुद्रा का प्रयोग नाटकों एवं नृत्यों में भावों को दर्शाने के लिए होता है।

विधि

दोनों हथेलियों को मुट्ठी रूप में बांधकर अंगूठों को ऊपर की तरफ करें। फिर दोनों हाथों की अंगुलियों के मध्य भाग (पृष्ठ भाग के दूसरे पोर) को एक-दूसरे से स्पर्शित करवाने पर अजमुख मुद्रा बनती है।[2]



अजमुख मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग,

मेरूदण्ड, पाँव, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

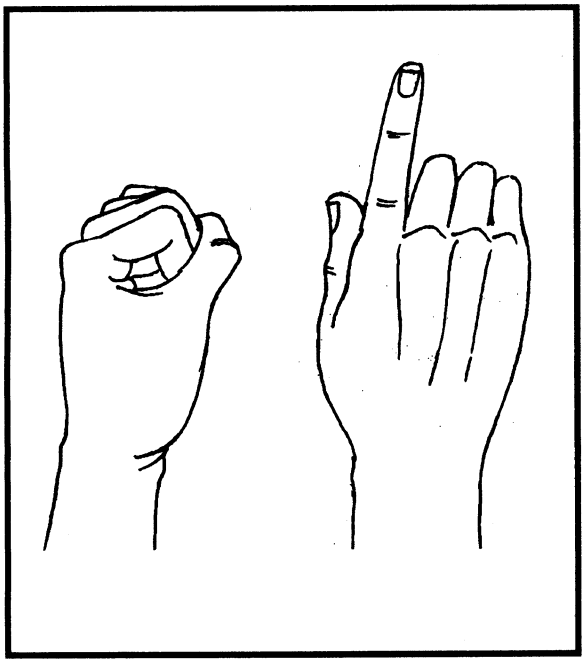
3. अंगारख मुद्रा

दहकता हुआ अथवा बुझा हुआ कोयला अंगारक कहलाता है। निर्धूम अग्नि भी अंगारक वाची है। अंगारख का एक अर्थ मंगलग्रह है। अंगारख की भाँति मंगल ग्रह उष्ण स्वभावी है। अत: इसे मंगलग्रह की सूचक मुद्रा कहा गया है।

यह मुद्रा नाटकों आदि में प्रयुक्त होती है और दोनों हाथों को मिलाकर की जाती है।

विधि

दायीं हथेली को शरीर के अग्रभाग में स्थिर करते हुए अंगुलियों को अंदर की ओर मोड़ें तथा अंगूठे को अंगुलियों के प्रथम पोर के ऊपर रखें। बायीं हथेली को सामने की ओर करते हुए तर्जनी और अंगूठे को ऊपर की ओर करें तथा शेष अंगुलियों को हथेली में मोड़ने पर अंगारख मुद्रा बनती है।[3]



अंगारख मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, आँतें, नाक, कान, मुख, गला, स्वर तंत्र।

4. अराल-कटक मुख मुद्रा

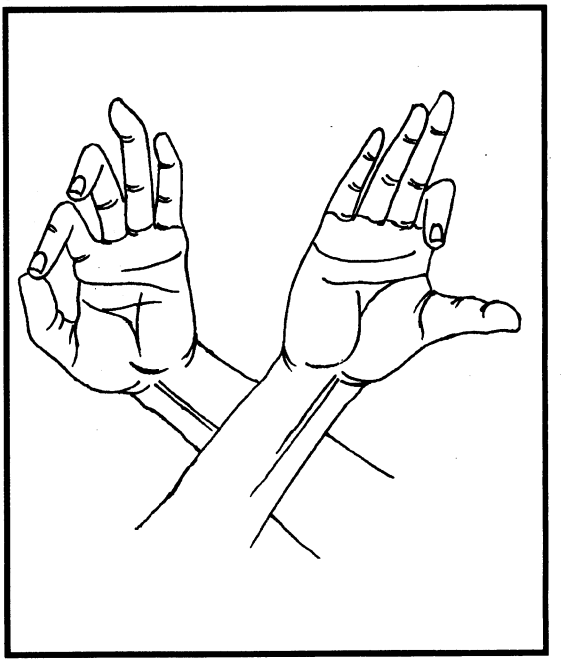
अराल के विभिन्न अर्थों में यहाँ उन्मत्त हाथी को अराल कहा गया मालूम होता है। कटक शब्द से दल, सेना आदि का बोध होता है। प्रसंगानुसार कहा जा सकता है कि जिस मुद्रा के द्वारा उन्मत्त हाथियों के समूह को दर्शाया जाता है उसे अराल-कटक-मुख मुद्रा कहते हैं।

विद्वानों के अनुसार यह मुद्रा चिंता, भय आदि भावों को प्रकट करती है। उन्मत्त (पागल) हाथियों के समूह को देखकर चिंतित और भयभीत होना स्वाभाविक है अत: यह मुद्रा नामोचित गुण से युक्त है। नाटक आदि में यह मुद्रा भावाभिव्यक्ति के लिए की जाती है।

विधि

दायीं हथेली को सामने की ओर अभिमुख करते हुए मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को ऊपर की ओर उठायें, अंगूठे को बलपूर्वक सीधा रखें तथा तर्जनी अंगुली को हथेली की ओर झुकाते हुए रखें।

बायीं हथेली को भी आगे की ओर



अराल कटक मुख मुद्रा

स्थिर करते हुए तर्जनी के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से संयोजित करें, मध्यमा को हथेली की तरफ झुकाते हुए रखें तथा अनामिका एवं कनिष्ठिका को हल्की सी हथेली की तरफ मोड़ते हुए रखने से अराल कटक मुख मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा में दोनों हाथों को कलाई के स्तर पर Cross करते हुए रखना चाहिए, तब ही मदमत्त हाथियों के दल जैसा दृश्य भासित हो सकता है।[4]

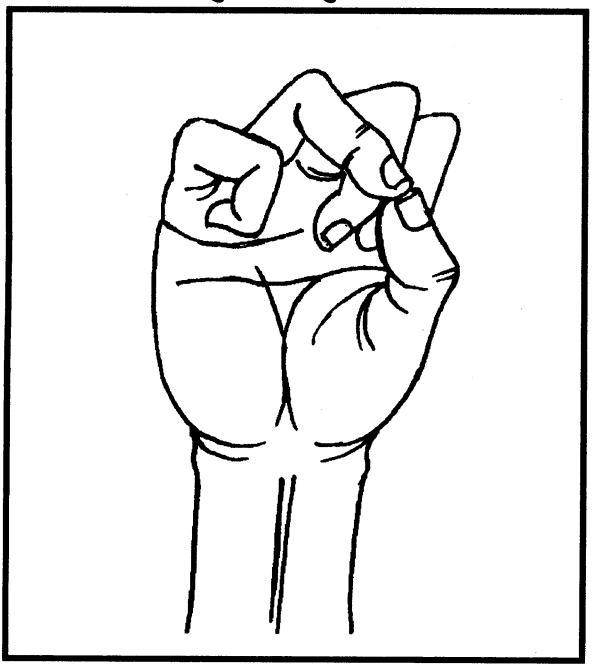
लाभ

चक्र– विशुद्धि एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाक, कान, गला, मुँह, स्वर तंत्र, ऊपरी मस्तिष्क एवं आंख।

5. अर्धमुख मुद्रा

अर्धमुख का सीधा सा अर्थ है आधा मुख। इस मुद्रा को बनाने पर हथेली का आधा भाग ही दिखायी देता है अत: इसे अर्धमुख मुद्रा कहा जा सकता है।

यह मुद्रा विशेषतया नाटक आदि में प्रयोग की जाती है। इस संदर्भ में अनुमान किया जाता है कि जब नाटक में दो व्यक्ति परस्पर बातचीत करते हैं तब उन दोनों का मुख एक-दूसरे की ओर रहता है लेकिन



अर्धमुख मुद्रा

अभिनय देखने वालों को उन दोनों का अर्धमुख ही दृष्टिगोचर होता है। इसलिए भी इस मुद्रा को अर्धमुख कहा गया है।

यह मुद्रा किसी भी एक हाथ से की जाती है।

विधि

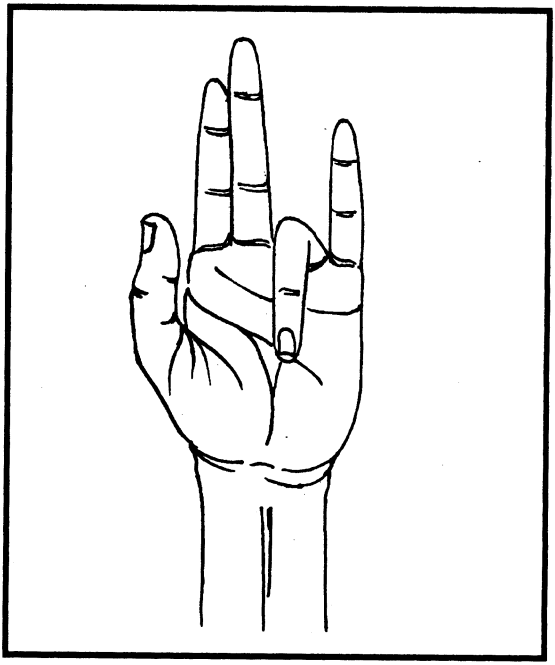
दायीं अथवा बायीं हथेली को सामने की ओर अभिमुख करते हुए तर्जनी, मध्यमा और कनिष्ठिका अंगुलियों को हथेली के अंदर मोड़ें तथा अंगूठे के अग्रभाग को अनामिका के अग्रभाग से स्पर्शित करने पर अर्धमुख मुद्रा बनती है।[5]

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थियां **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, आँतें, मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग।

6. अर्जुन मुद्रा

यहाँ अर्जुन मुद्रा, कुन्ती से उत्पन्न तृतीय पुत्र अर्जुन से सम्बन्धित है। अर्जुन शब्द उज्ज्वल अर्थ को भी प्रकट करता है। इस अर्थ को पांडव अर्जुन के साथ भी घटित किया जा सकता है। क्योंकि अपने कार्यों में पवित्र और विशुद्ध होने के कारण ही वह अर्जुन कहलाया।



अर्जुन मुद्रा

पाँचों पांडवों में अर्जुन सबसे अधिक पराक्रमी, उदार, गंभीर और उच्च विचारों का धनी था अत: इस मुद्रा से अर्जुन के समस्त गुणों का सूचन होता है।

अर्जुन की विशेषताओं को ज्ञापित करने के लिए इस मुद्रा का प्रयोग नाटकों में बहुलता से होता है।

विधि

दायीं अथवा बायीं हथेली को बाहर की ओर अभिमुख करें। तदनन्तर अनामिका अंगुली को हथेली की तरफ मोड़ते हुए अंगूठे सहित शेष अंगुलियों को ऊपर की ओर सीधा रखें तथा हथेली को क्रमश: आगे-पीछे करते रहने से अर्जुन मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा कंधों के स्तर पर धारण की जाती है और त्रिपताका मुद्रा के समान ही है।[6]

लाभ

चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि

केन्द्र– आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजा, रक्त संचरण तंत्र, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

7. अशोक मुद्रा

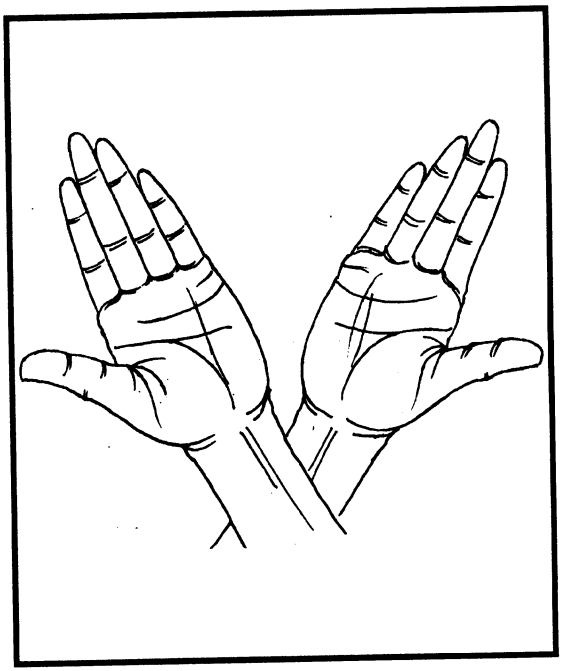
अशोक का शाब्दिक अर्थ होता है जहाँ किसी प्रकार का शोक, दु:ख, दारिद्रय न हो।

अशोक नाम का एक वृक्ष भी है जो अत्यन्त सुन्दर और हरा भरा होता है। शुभ अवसरों पर अशोक वृक्ष के पत्तियों की बंदनवारे बांधी जाती है।

प्रसंगानुरूप यह मुद्रा अशोक वृक्ष की सूचक है।

विधि

दोनों हथेलियों को अपने से आगे की ओर सीधा रखते हुए उन्हें छाती के स्तर पर धारण करें, अंगुलियों एवं अंगूठों को ऊपर की ओर उठायें, दोनों हाथों को कलाई पर Cross करते हुए रखें तथा उन्हें आगे पीछे हिलाते रहने से अशोक मुद्रा बनती है।[7]



अशोक मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान, विशुद्धि एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** जल, वायु एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायरॉइड, पेराथायरॉइड, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य, विशुद्धि एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग, नाक, कान, गला, मुँह, स्वर यंत्र, पाचन तंत्र, यकृत, तिल्ली, नाड़ी तंत्र।

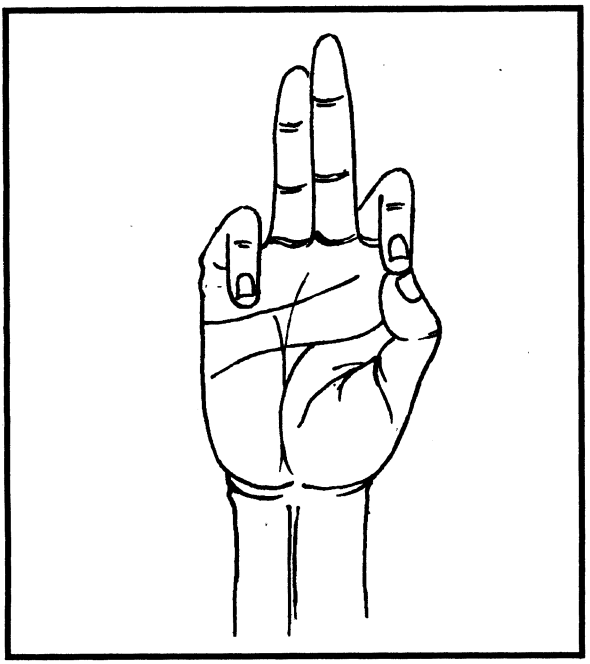
8. बक मुद्रा

यहाँ बक शब्द का अर्थ सारस (बगुला) है। बगुला धूर्त पक्षी माना जाता है अत: यह पक्षियों की सूचक मुद्रा है। इस मुद्रा चित्र में बगुला की आकृति प्रतिभासित होती है इसलिए इसे बक मुद्रा कहा जाता है।

यह भारतीय मुद्रा नाटक आदि में अधिक प्रयुक्त होती है। संभवत: सारस पक्षी के स्वरूप अथवा गुणों को व्यक्त करने के प्रयोजन से यह मुद्रा की जाती है।

विधि

दायें अथवा बायें हाथ के अंगूठे और तर्जनी के प्रथम पोर को परस्पर स्पर्शित करें, मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को ऊपर की ओर सीधा रखें तथा कनिष्ठिका को हथेली से योजित (स्पर्शित) करके रखने पर बक मुद्रा बनती है।[8]



बक मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर, अनाहत एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** अग्नि, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायमस एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस आनंद एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, आँतें, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँखें।

9. भीम मुद्रा

यह मुद्रा नाम के अनुसार पाँच पांडवों में से भीम से सम्बन्धित है। ऐतिहासिक वृत्त के आधार पर भीम अत्यन्त पराक्रमी, बलवान और महान योद्धा था, यह मुद्रा भीम के इन्हीं गुणों को सूचित करती है।

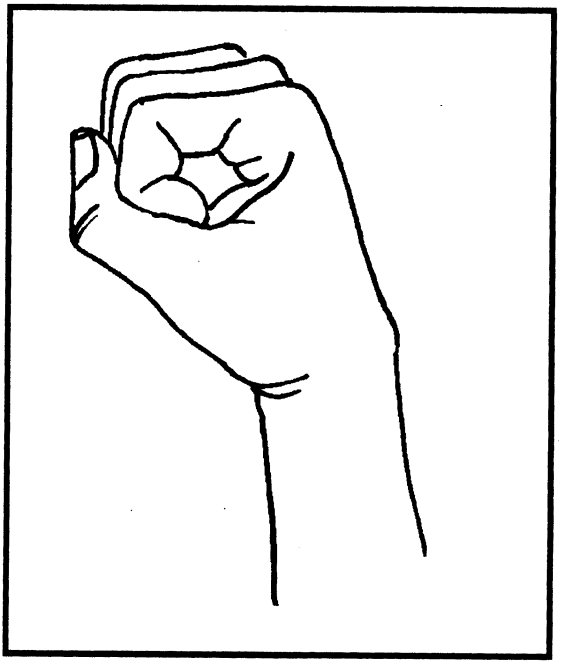
सामान्यतया इस तरह की मुद्राएँ नाटकों आदि में नृतकों एवं कलाकारों के द्वारा की जाती है।

यह असंयुक्त मुद्रा एक हाथ से की जाती है।

विधि

दायीं अथवा बायीं हथेली को शरीर के मध्यभाग की ओर अभिमुख करें, अंगुलियों को मुट्ठी रूप में बांध दें तथा अंगूठे को अंगुलियों के दूसरे पोरों का स्पर्श करवाते हुए रखने पर भीम मुद्रा बनती है।

यह छाती के स्तर पर धारण की जाती है। इस मुद्रा में हाथ को आगे-पीछे किया जाता है।[9]



भीम मुद्रा

लाभ

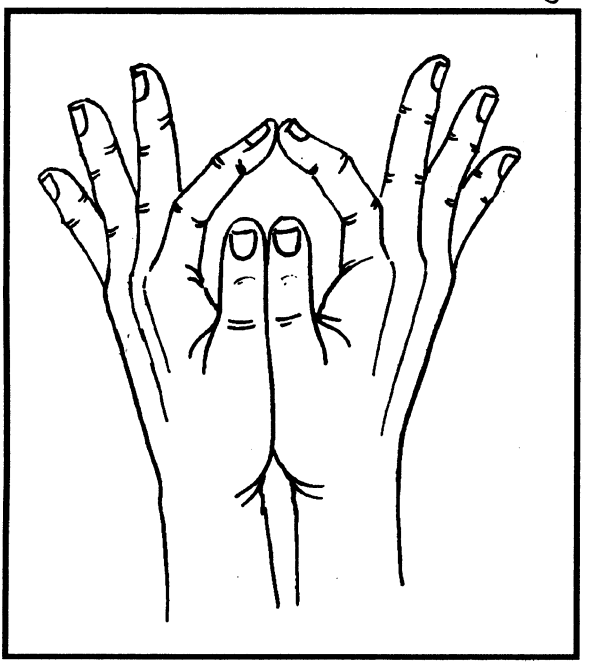
चक्र– मणिपुर, आज्ञा एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** अग्नि, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, पीयूष, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, दर्शन एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, आँतें, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, नाक, कान, गला, मुख एवं स्वर यंत्र।

10. भिन्नांजली मुद्रा

जहाँ दो अंजलियाँ भिन्न-भिन्न हों उसे भिन्नांजलि कहते हैं। यहाँ भिन्नांजलि शब्द का अभिप्रेत गधा से है। विद्वानों के अनुसार यह मुद्रा जानवरों की सूचक है।

दर्शाये चित्र में भिन्न-भिन्न दो अंजलि प्रतिभासित हो रही हैं। अत: इस मुद्रा को भिन्नांजली मुद्रा कहा जा सकता है।

यह मुद्रा नाटक आदि में कलाकारों के द्वारा की जाती है।



भिन्नांजली मुद्रा

विधि

दोनों हाथों को एक-दूसरे के निकट लायें, तर्जनी अंगुलियों को थोड़ा सा मोड़ते हुए उनके अग्रभागों को परस्पर में स्पर्शित करें, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को ऊपर की ओर उठायें तथा अंगूठों को बाह्य किनारों से मिलने पर भिन्नांजली मुद्रा बनती हैं।[10]

लाभ

चक्र– अनाहत,सहस्रार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस, पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद, ज्योति एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, रक्त संचरण तंत्र, भुजाएं, मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, आँख।

11. ब्रह्म मुद्रा

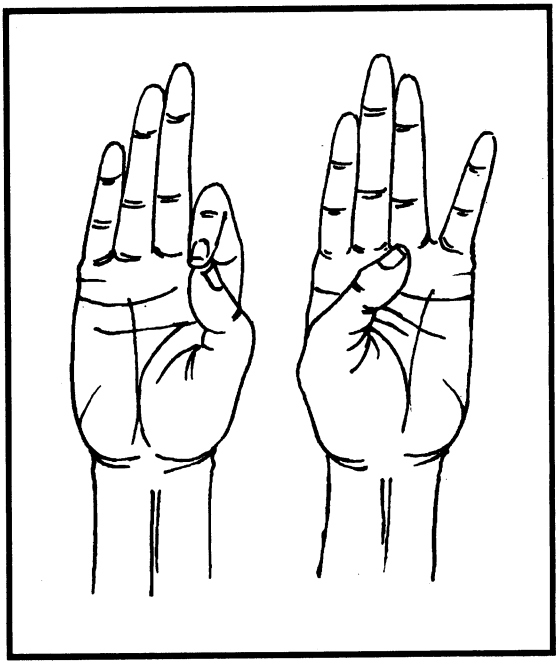
इस मुद्रा के नाम से ही सूचित होता है कि यह मुद्रा ब्रह्मदेवता से सम्बन्धित है। वैदिक परम्परा के अनुसार ब्रह्मा सृष्टि के निर्माता माने जाते हैं।

इस मुद्रा के द्वारा ब्रह्मा की विशेषताओं को दर्शाया जाता है। यह संयुक्त मुद्रा नाटकों आदि में दोनों हाथों से धारण की जाती है।

विधि

दोनों हथेलियों को बाहर की ओर अभिमुख करें, दायें हाथ का अंगूठा और तर्जनी के प्रथम पोर को परस्पर में स्पर्श करवायें तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका– इन तीनों अंगुलियों को अलग-अलग फैलाते हुए ऊपर की ओर करें।

बायें हाथ की चारों अंगुलियों को ऊपर की ओर सीधी रखें, कनिष्ठिका अंगुली को थोड़ा सा अलग रखें तथा अंगूठे के अग्रभाग को



ब्रह्म मुद्रा

अनामिका के मूल भाग (अंतिम पोर) पर रखने से ब्रह्म मुद्रा बनती है।[11]

यह मुद्रा कंधों के स्तर पर धारण की जाती है।

लाभ

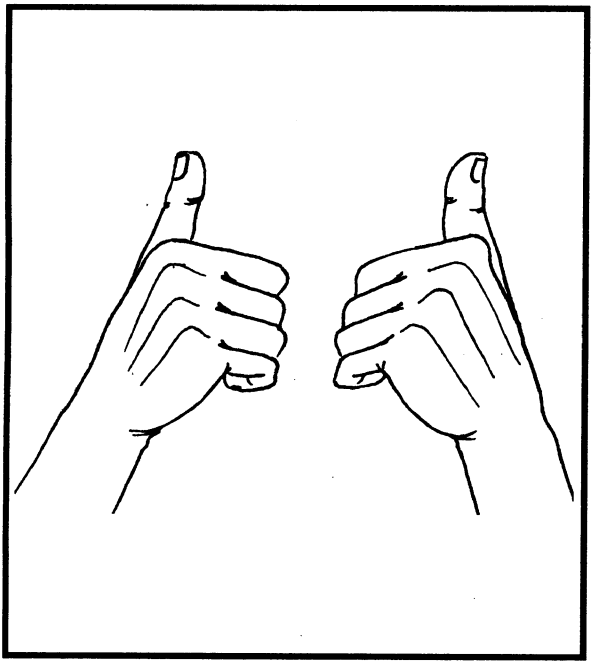
चक्र– मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, नाक, कान, गला, मुँह एवं स्वर तंत्र।

12. ब्राह्मण मुद्रा

यह मुद्रा अपने नाम के अनुसार ब्राह्मण जाति की सूचक है। ब्राह्मण जाति को पवित्र और शुद्ध माना जाता है। जो पठन-पाठन, पूजन-ज्ञानोपदेश का कार्य करते हैं उसे ब्राह्मण कहा गया है। संस्कृत कोश के अनुसार ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न को ब्राह्मण कहते हैं।

इस मुद्रा द्वारा ब्राह्मण जाति के महत्त्व को दर्शाया जाता है। यह मुद्रा नाटकों आदि में दोनों हाथों से धारण की जाती है।

इस मुद्रा में दाहिने हाथ को आगे-पीछे करते हैं।



ब्राह्मण मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को शरीर के मध्यभाग की ओर अभिमुख करें। अंगुलियों को हथेली की तरफ मोड़ते हुए मुट्ठी रूप में बांध दें तथा अंगूठों को ऊपर की तरफ

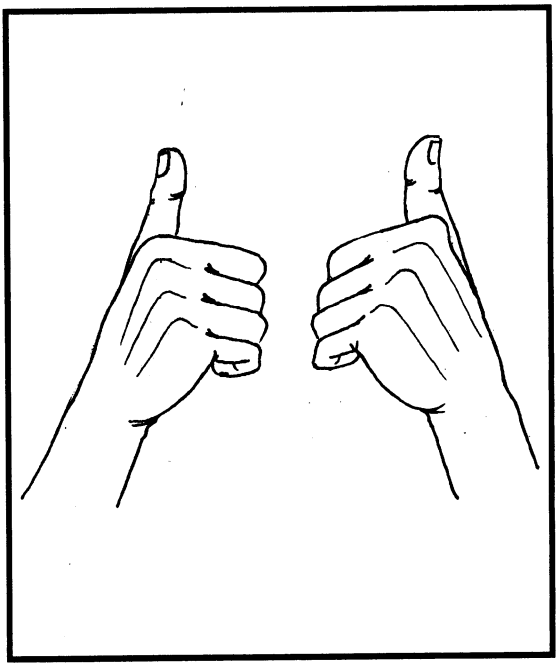
करने पर ब्राह्मण मुद्रा बनती है।[12]

लाभ

चक्र– मूलाधार, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, मस्तिष्क, स्नायुतंत्र एवं आँखें।

13. बृहस्पति मुद्रा

बृहस्पति गुरू को कहते हैं। यह मुद्रा नौ ग्रहों में से गुरू ग्रह की सूचक है अत: इसका नाम बृहस्पति मुद्रा है।



बृहस्पति मुद्रा

विधि

इस मुद्रा को ब्राह्मण मुद्रा के समान ही करते हैं, केवल दायें हाथ को आगे-पीछे नहीं किया जाता है।

मुद्रा बनाने का तरीका पूर्ववत समझें।[13]

लाभ

चक्र– मूलाधार, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, मस्तिष्क, स्नायुतंत्र एवं आंखें।

14. छग मुद्रा

छग बकरा का वाच्य है।

बकरे की कुछ निजी विशेषताएँ हैं– उसे जो मिले खा लेता है। वह साहसी और चालाक होता है।

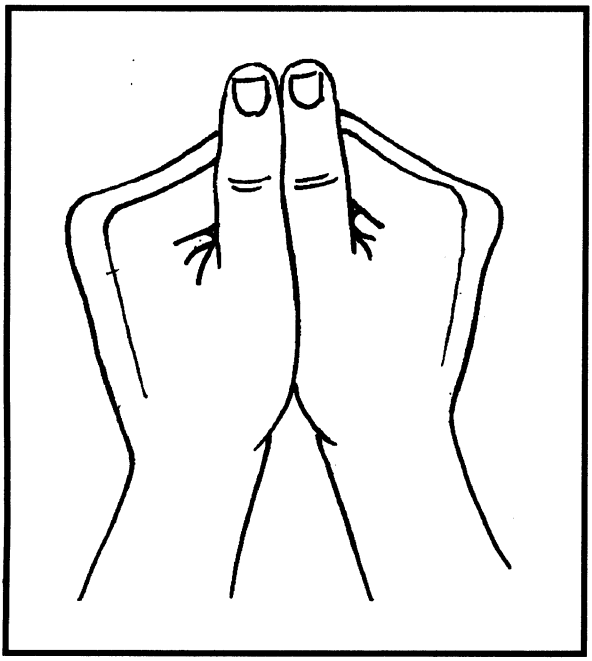
वैदिक काल से स्मृति काल तक और आज भी वैदिक परम्परा में बकरे को बलि के लिए श्रेष्ठ माना जाता है।

यह मुद्रा पशुओं की सूचक और शिखर मुद्रा के समान है।

निम्न चित्र में बकरे जैसी आकृति भासित होती है अत: इसे छग मुद्रा कहा गया है।

विधि

दोनों हथेलियों को आमने-सामने करते हुए निकट लायें और उन्हें मध्यभाग में स्थिर करें। फिर अंगुलियों को हथेली में मोड़कर मुट्ठी रूप में बांधें तथा अंगूठों को ऊपर की ओर करके उन्हें परस्पर संस्पर्शित करने से छग मुद्रा बनती है।[14]



छग मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, स्वर तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाक, कान, गला एवं मुख।

15. चक्रवाक मुद्रा

चक्रवाक शब्द चकवा पक्षी का द्योतक है। यह मुद्रा चकवा पक्षी की ओर इंगित करके दिखाई जाती है। चकवा अपने जोड़े से बहुत प्रेम करता है, वियोग होने पर दोनों की दशा करूण हो जाती है।

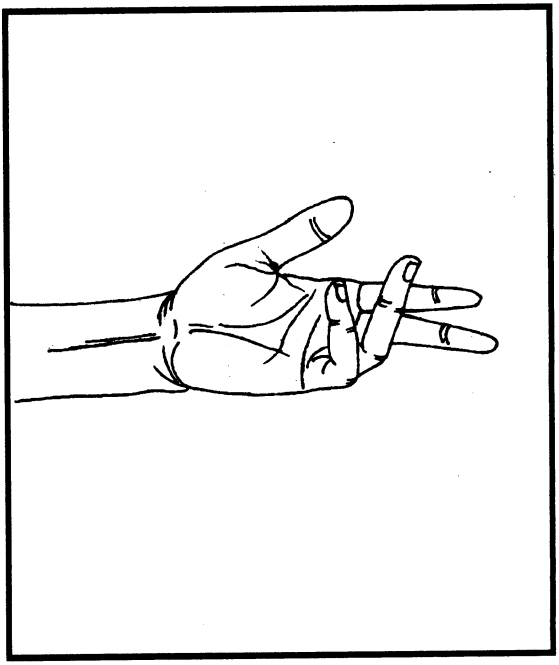
पुराने समय से ऐसा सुना जाता है कि रात्रि के समय चकवा-चकवी अलग-अलग रहते हैं और दिन में प्राय: साथ रहते हैं। कवियों ने इनके वियोग के सम्बन्ध में कई रचनाएँ की है। प्रेमियों के विरह दशा को व्यक्त करने में सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाली यह उपमा है।

यह मुद्रा नाट्य आदि में एक हाथ से की जाती है।

विधि

दायीं अथवा बायीं हथेली को ऊपर की तरफ इस तरह घुमाये कि अंगुलियों पर तनाव पड़े और वे अलग-अलग तथा कड़क दिखने लगे। इसमें कनिष्ठिका 90^0 कोण पर और अनामिका 45^0 कोण की दूरी पर रहें तब चक्रवाक मुद्रा बनती है।

यह सोला पद्म मुद्रा के समान है।[15]



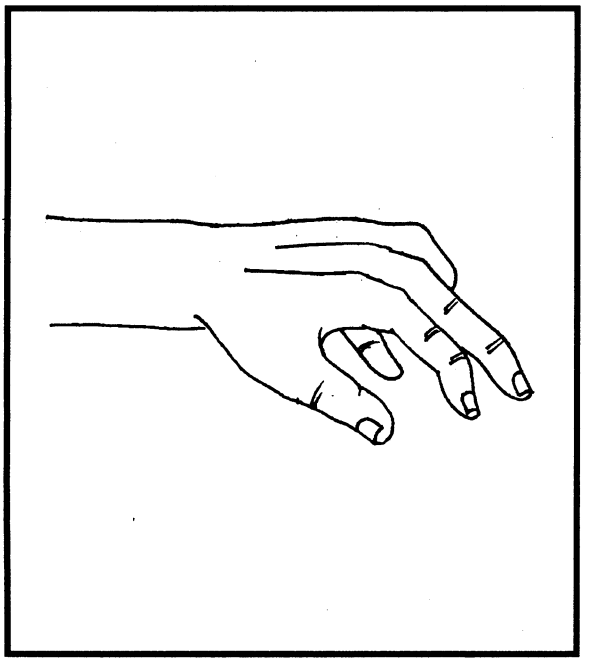
चक्रवाक मुद्रा

16. चंपक मुद्रा

अपने नाम के अनुरूप यह मुद्रा चंपक वृक्ष की सूचक है। वृक्षों में यह वृक्ष उत्तम माना जाता है। इस वृक्ष के फूलों की यह खासियत है कि उन पर भौंरे नहीं बैठते।

नाटक आदि में यह मुद्रा चंपक वृक्ष की गरिमा को दिखाने के प्रयोजन से की जाती है।

एक हाथ से की जाने वाली यह मुद्रा पद्मकोष मुद्रा के समान हैं।



चंपक मुद्रा

विधि

दायीं हथेली को नीचे की तरफ करते हुए अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा और कनिष्ठिका को हल्के से घुमाएं तथा अनामिका को नीचे झुकी हुई हथेली की ओर स्वाभाविक रूप से रखने पर चंपक मुद्रा बनती है।[16]

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, नाक, कान, गला, मुँह एवं स्वर तंत्र।

17. चन्द्र मुद्रा

यह नाट्य मुद्रा नवग्रहों में से चन्द्रग्रह की सूचक है। चन्द्रमा रमणीय, आनंददायक, आकाश में चमकने वाला एक उपग्रह है जो विज्ञान के अनुसार महिने में एक बार धरती की प्रदक्षिणा देता है।

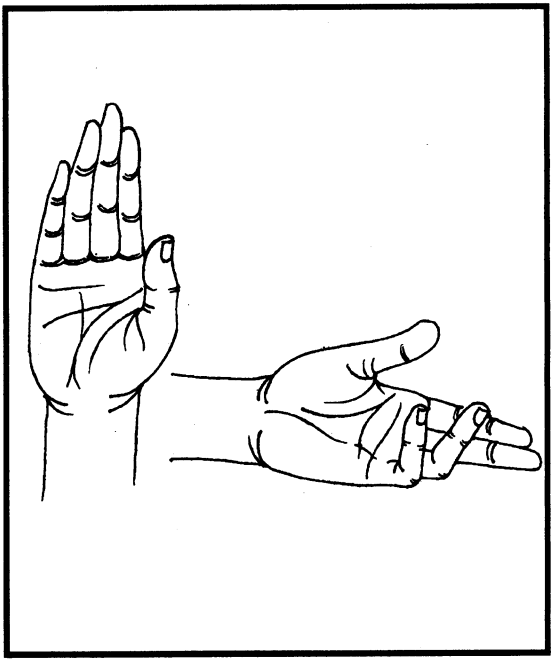
चंद्र अपने गुणों के लिए विशेष जाना जाता है तथा समास एवं उपमा में भी इसका प्रयोग श्रेष्ठता के लिए होता है जैसे मुखचंद्र, पूनमचंद्र आदि।

यह संयुक्त मुद्रा दोनों हाथों से की जाती है।

विधि

दायीं हथेली को सामने की ओर अभिमुख करते हुए अंगुलियों एवं अंगूठे को एक साथ ऊपर उठायें तथा हथेली शिथिल और थोड़ी सी झुकी हुई रहे।

बायें हाथ को ऊपर की तरफ करते हुए अंगुलियों एवं अंगूठा पर तनाव दें, ताकि वे एक-दूसरे से पृथक रह सकें। इस कड़क मुद्रास्थिति में कनिष्ठिका हथेली से 90^0 कोण पर और अनामिका 45^0 कोण पर रहे।[17]



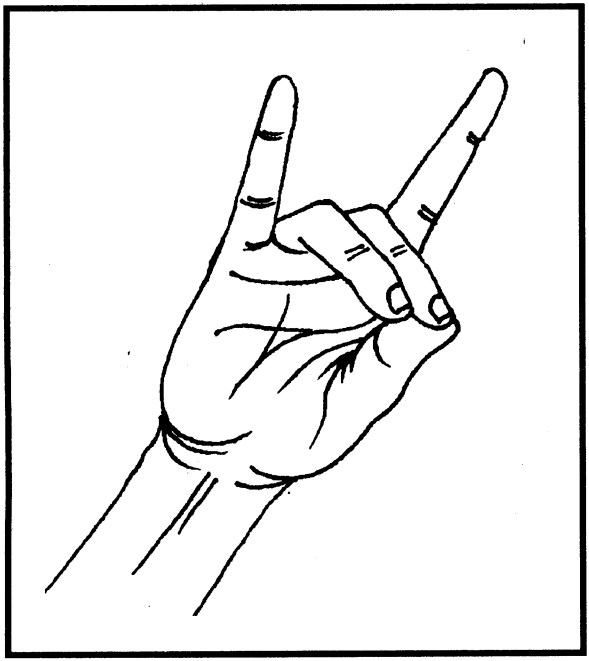
चन्द्र मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान, अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य, आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण तंत्र, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

18. चंद्र मृग मुद्रा

चन्द्रमा को लांछन युक्त मानते हैं क्योंकि मृग को लांछन रूप माना गया है। चन्द्रमा के लांछन (धब्बे) के विषय में भिन्न-भिन्न कथाएँ प्रसिद्ध है। कुछ लोग कहते हैं कि दक्ष प्रजापति के श्राप से चंद्रमा को राजयक्ष्मा रोग हुआ; उसकी शांति के लिए वे अपनी गोद में एक हिरन लिए रहते हैं। किन्हीं के मत से चंद्रमा ने अपनी–गुरूपत्नी के साथ गमन किया था; इसी कारण शापवश उनके शरीर पर काला दाग पड़ गया है। कहीं-कहीं यह भी लिखा है कि जब इन्द्र ने अहिल्या का सतीत्व भंग किया था, तब चंद्रमा ने इंद्र को सहायता दी थी। उस समय गौतमऋषि ने क्रोधवश उन्हें अपने कमंडल और मृगचर्म से मारा, जिसका दाग उनके शरीर पर पड़ गया।



चंद्र मृग मुद्रा

यह मुद्रा लांछन युक्त चन्द्रमा से सम्बन्धित है तथा विद्वानों के अनुसार शाही मृग की सूचक है।

विधि

दायीं अथवा बायीं हथेली को सामने की ओर अभिमुख करें। तत्पश्चात मध्यमा और अनामिका को तीसरे पोर से मोड़ते हुए अंगुठे के अग्रभाग से स्पर्श करवायें तथा कनिष्ठिका और तर्जनी को ऊपर की ओर करने से चंद्रमृग मुद्रा बनती है।[18]

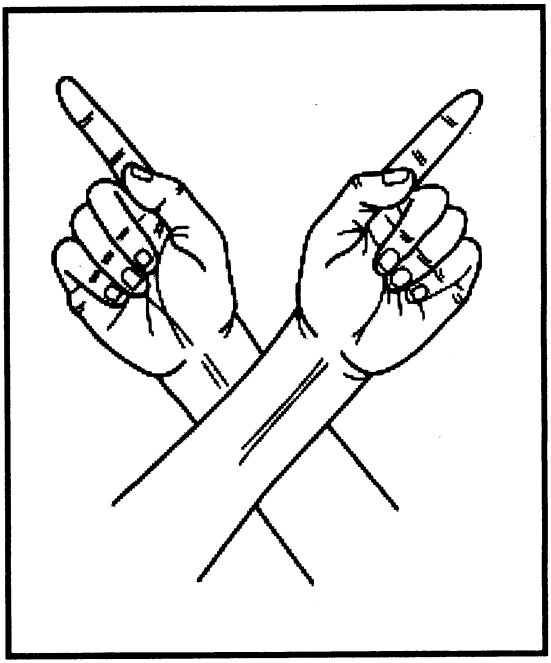
लाभ

चक्र– मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी,जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, स्वस्थ्य एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण तंत्र।

19. गर्दभ मुद्रा

गधा का संस्कृत रूप गदर्भ है। गधा शब्द मूर्ख, नासमझी, कम अक्ल के विषय में प्रयुक्त किया जाता है। गधा कभी भी दिमाग का सही उपयोग नहीं करता। यह मुद्रा नाटक आदि में मूर्खता के सूचनार्थ की जा सकती है।

विद्वानों ने इस संयुक्त मुद्रा को खच्चर की सूचक बतलाया है। यह मुद्रा नागबंध मुद्रा के समान है।



गर्दभ मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को आगे की तरफ करें, अंगूठों को तर्जनी अंगुलियों के

निचले हिस्से के Oppose में रखें, तर्जनी ऊपर की ओर सीधी रहे, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली के आधे भाग तक मोड़ें तथा दोनों हाथों को कलाई पर Cross करते हुए रखने पर गर्दभ मुद्रा बनती है।[19]

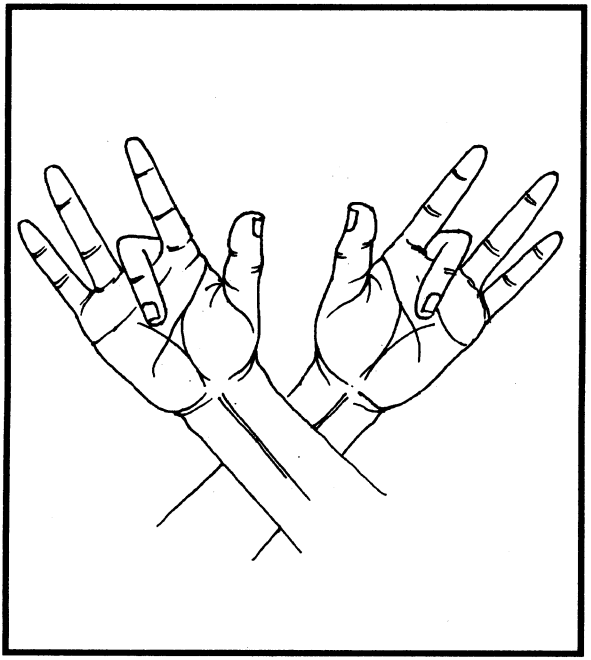
लाभ

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाड़ी संस्थान, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली।

20. इन्द्र मुद्रा

ऐश्वर्यवान्, विभूति सम्पन्न, देवी-देवताओं का राजा इन्द्र कहलाता है।

यह संयुक्त मुद्रा नाटक आदि में किसी विशिष्ट देव को सूचित करती है।



इन्द्र मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को आगे की तरफ करें, तर्जनी, मध्यमा, कनिष्ठिका और अंगूठे को ऊपर की ओर फैलायें, अनामिका को हथेली की तरफ मोड़ें तथा हाथों को कलाई के स्तर पर Cross करते हुए रखने पर इन्द्र मुद्रा बनती है।[20]

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व

ग्रन्थि– प्रजनन एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, मस्तिष्क।

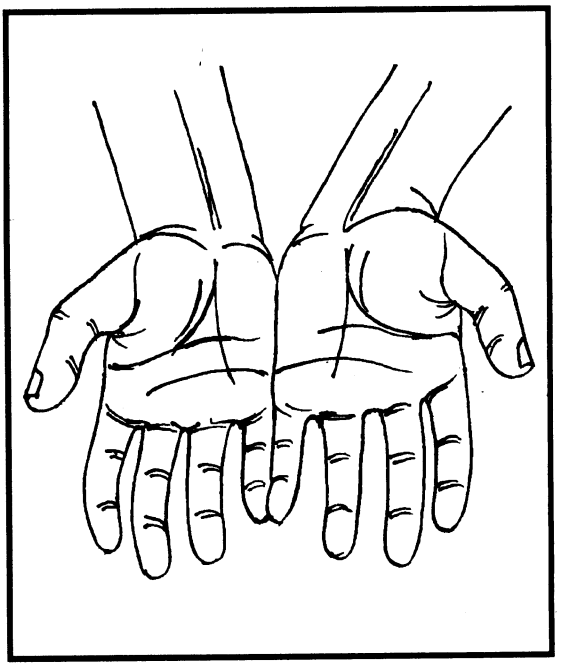
21. कंदंजली मुद्रा

कन्द और अंजली इन दो शब्दों के योग से यह शब्द निष्पन्न है। कन्द के कई अर्थ हैं। यहाँ कन्द का अभिप्राय वैदिक परम्परा के ऋषियों का आहार हो सकता है।

विद्वानों ने इस नाटक मुद्रा को ऊँट की सूचक कहा है।

विधि

दोनों हाथों को समीप लाकर हथेलियों की किनारियों को मिलायें, अंगुलियों को किंचित झुकाते हुए सामने की ओर फैलायें तथा अंगूठों को भी अंगुलियों की भाँति ही रखें। फिर अंगूठों को ऊपर-नीचे करते रहने पर कंदंजली मुद्रा बनती है।[21]



कंदंजली मुद्रा

लाभ

चक्र– विशुद्धि एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** कान, नाग, गला, मुख, स्वर यंत्र, मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव।

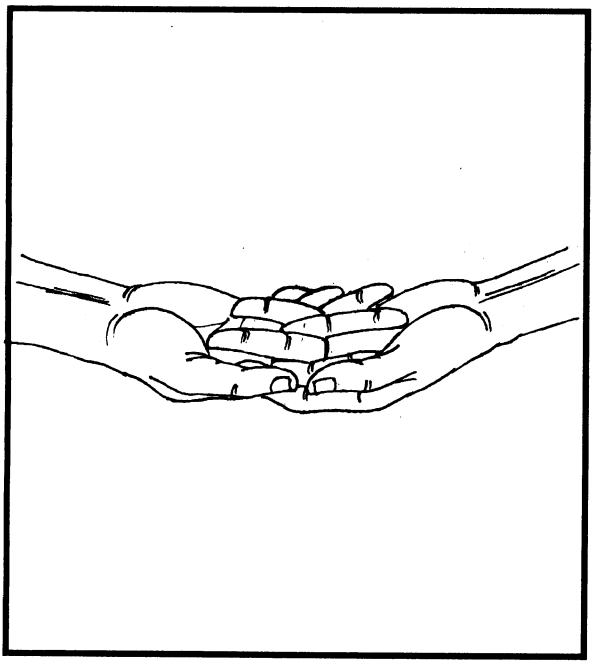
22. करकट मुद्रा

यहाँ करकट का अभिप्राय केकड़ा है। यह मुद्रा नाटक आदि में दोनों हाथों से धारण की जाती है।

विद्वज्ञों के अभिमत से यह समूह, प्रणय भावना, काम भावना और पेड़ की किसी शाखा के झुकने की सूचक है। यह मुद्रा ग्रथितम् मुद्रा के समान ही है।

विधि

दोनों हाथों की अंगुलियों को ग्रथितम् मुद्रा के समान अन्तर्ग्रथित करते हुए मुट्ठी बनायें। फिर कोहनियों को बाहर की तरफ निकालते हुए अन्तर्ग्रथित हाथों को घुमायें ताकि हथेलियाँ बाहर की तरफ अभिमुख हो सकें। यह करकट मुद्रा कहलाती है।[22]



करकट मुद्रा

लाभ

चक्र– आज्ञा एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन एवं तैजस केन्द्र **विशेष**

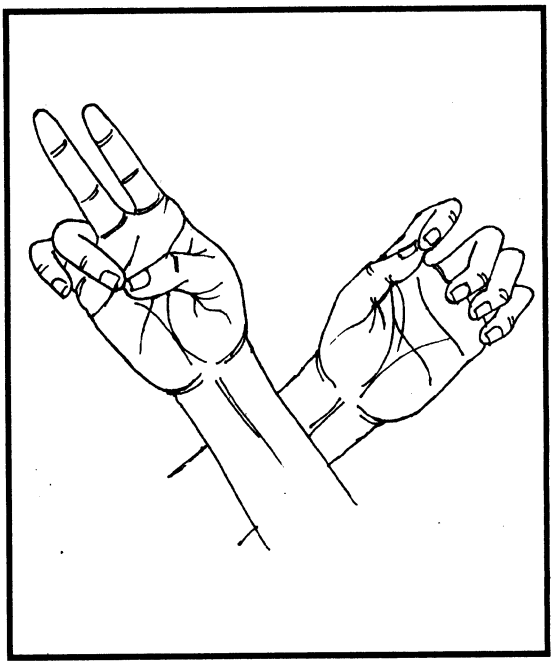
प्रभावित अंग– निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें।

23. करतरी दण्ड मुद्रा

यह नाट्य मुद्रा दोनों हाथों से की जाती है। इसे डुनडुफ का सूचक माना गया है।

विधि

दायीं हथेली सामने की ओर, तर्जनी और मध्यमा कुछ पृथक-पृथक ऊपर की तरफ फैली हुई, कनिष्ठिका किंचित झुकी हुई तथा अनामिका अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्श करती हुई रहे।



करतरी दण्ड मुद्रा

बायीं हथेली मध्य भाग में, अंगुलियाँ भीतर की तरफ मुड़ी हुई तथा तर्जनी का अग्रभाग अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्श करते हुए रहने पर करतरी दण्ड मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा में दायां हाथ बायें हाथ पर रखा जाता है।[23]

लाभ

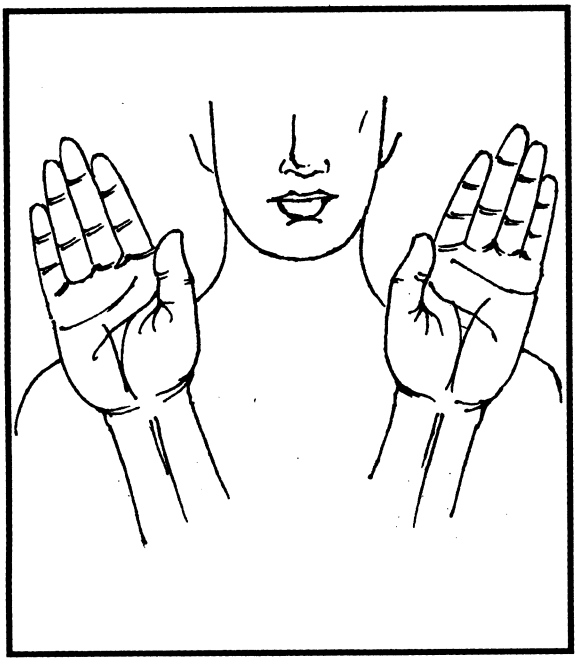
चक्र– स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य केन्द्र एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, कान, नाक, गला, मुँह, स्वर यंत्र।

24. कार्त्तवीर्य मुद्रा

कृतवीर्य का पुत्र कार्त्तवीर्य कहलाता है। कार्त्तवीर्य नाम का राजा तन्त्रशास्त्र का आचार्य माना जाता था, उसके हजार हाथ थे। कहते हैं उसे परशुराम ने मारा था। कार्त्तवीर्य उस युग का प्रसिद्ध शासक था, यह मुद्रा उसी कार्त्तवीर्य की सूचक है।[24]

विधि

दोनों हाथों को पताका मुद्रा की भाँति बनाकर, उन्हें कंधों के सम स्तर पर धारण करने से कार्त्तवीर्य मुद्रा बनती है।



कार्त्तवीर्य मुद्रा

लाभ

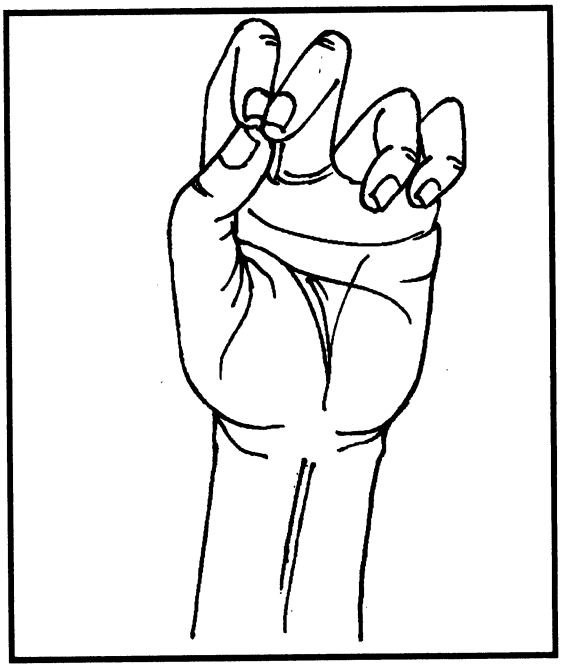
चक्र– मूलाधार एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, यकृत, तिल्ली, आँतें, पाचन तंत्र।

25. कटक मुद्रा (प्रथम)

यह नाट्य मुद्रा एक हाथ से की जाती है। इस मुद्रा का अभिप्राय गोपनीय एवं रहस्य पूर्ण है।

विधि

दायीं हथेली मध्यभाग में, तर्जनी और मध्यमा अंगूठे के अग्रभाग का स्पर्श करते हुए तथा अनामिका और कनिष्ठिका हथेली की तरफ मुड़ी हुई रहने पर कटक मुद्रा बनती है।[25]



कटक मुद्रा-1

लाभ

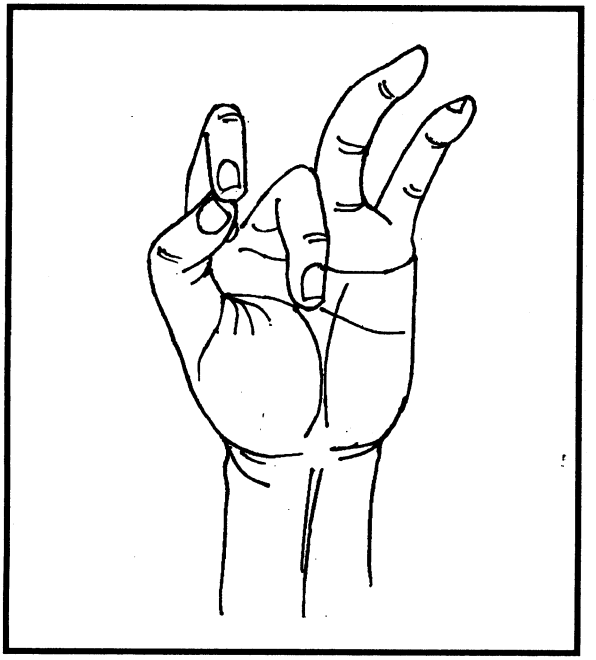
चक्र– स्वाधिष्ठान, आज्ञा एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** जल, आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, पीयूष एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य, दर्शन एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचार तंत्र।

26. कटक मुद्रा (द्वितीय)

नाटक आदि में कटक मुद्रा का एक अन्य प्रकार भी दिखाया जाता है। यह प्रकारान्तर मुद्रा भी एक हाथ से की जाती है।

विधि

बायीं हथेली सामने की ओर, तर्जनी का अग्रभाग अंगूठे से स्पर्श करता हुआ, मध्यमा हथेली के अंदर झुकी हुई तथा अनामिका और कनिष्ठिका बढ़ते हुए क्रम से किंचित मुड़ी हुई रहने पर द्वितीय प्रकार की कटक मुद्रा बनती है।[26]



कटक मुद्रा-2

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** जल एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव।

27. केतकी मुद्रा

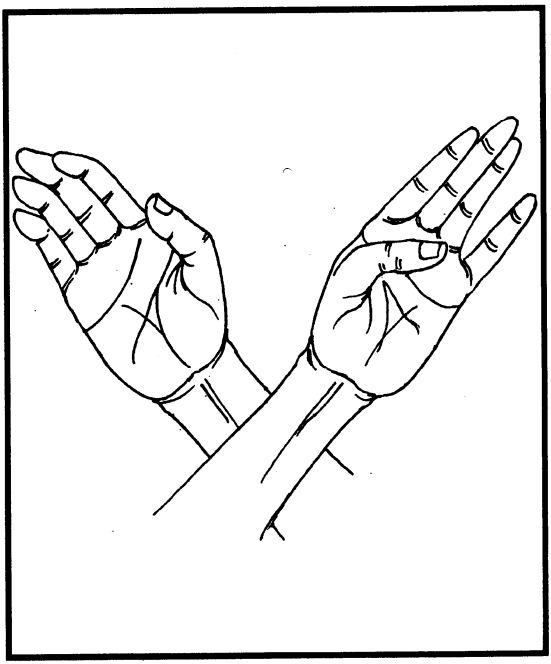
केतकी शब्द अनेकार्थक है। इसका एक अर्थ केवड़ा है। विद्वानों के मतानुसार यह मुद्रा केतकी या केवड़ा वृक्ष की सूचक है।

यह मुद्रा नाटक-नृत्य में दोनों हाथों से की जाती है।

विधि

दाहिनी हथेली को बाहर की तरफ अभिमुख करें, अंगुलियों और अंगूठे को शिथिल रूप से ऊपर की ओर फैलायें और किंचित झुकायें।

बायीं हथेली को भी सामने की तरफ करते हुए अंगुलियों को एक साथ ऊपर की ओर फैलायें, कनिष्ठिका को हल्की सी अलग करें, अंगूठे के अग्रभाग को अनामिका के निचले हिस्से से स्पर्श करवायें तथा दोनों हाथों को कलाई पर Cross करते हुए रखने पर केतकी मुद्रा बनती है।[27]



केतकी मुद्रा

लाभ

चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित**

अंग– हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली, स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क।

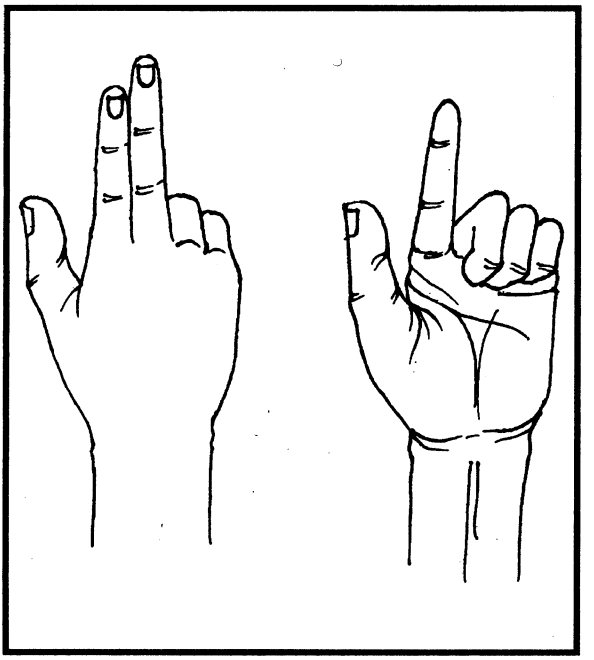
28. केतु मुद्रा

यह मुद्रा नवग्रहों में से चन्द्र की घटती हुई कलाओं को दर्शाती है तथा नाटक-नृत्यादि में उभय हाथों से की जाती है।

विधि

दायीं हथेली को भीतर की ओर अभिमुख करें, तर्जनी, मध्यमा और अंगूठे को ऊपर की ओर प्रसरित करें तथा अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली की तरफ झुकायें।

बायीं हथेली को सामने की ओर अभिमुख करें, तर्जनी और अंगूठे को ऊर्ध्वमुख करें तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली के अन्दर मोड़ने पर केतु मुद्रा बनती है।[28]



केतु मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

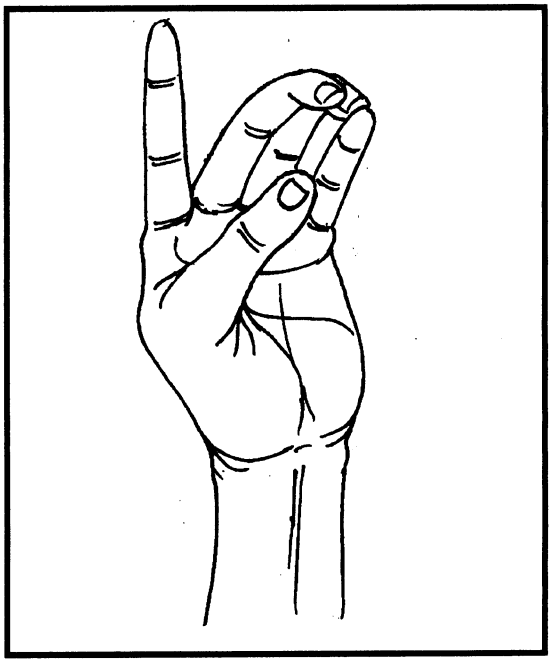
29. खड्ग-मुकुल मुद्रा

खड्ग अर्थात तलवार, मुकुल अर्थात कलि। जिस खड्ग को कलि के रूप में दर्शाया गया हो वह खड्ग-मुकुल मुद्रा कहलाती है।

यह मुद्रा नाटक आदि में एक हाथ से की जाती है।

विधि

दायीं हथेली को बाहर की ओर अभिमुख करें, फिर तर्जनी को ऊर्ध्व प्रसरित कर आगे-पीछे करते रहें तथा शेष अंगुलियों को अंगूठे के अग्रभाग के निकट लाने पर खड्ग-मुकुल मुद्रा बनती है।[29]



खड्ग-मुकुल मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एड्रीनल एवं पेन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र।

30. अर्घ मुद्रा

इस मुद्रा को अक्क-इन मुद्रा के समान माना गया है। जल, दूध, कुशान्त, दही, सरसों, तंदुल और जव को मिश्रित कर देवी-देवता को अर्पित करना अर्घ कहलाता है। इस मुद्रा के द्वारा समागत देवों को जल आदि अर्पण किया जाता है और भीतर से स्वयं की अशुद्धियों का निवारण करते हैं।

31. आश्चर्य मुद्रा

यह विस्मय मुद्रा का ही एक प्रकारान्तर है। इस मुद्रा की अभिव्यक्ति विस्मय के सन्दर्भ में की जाती होगी।

32. अश्वत्थ मुद्रा

यहाँ अश्वत्थ शब्द का अभिप्राय पीपल नामक वृक्ष से है। अत: यह मुद्रा पीपल वृक्ष की सूचक होनी चाहिए। मुद्रा स्वरूप के अनुसार यह मुद्रा अलपद्म मुद्रा के समान है।

33. भागीरथ मुद्रा

गंगा की एक धारा जो बंगाल में बहती है वह भागीरथ कहलाती है। सूर्यवंशी राजा दिलीप का पुत्र, जिसने कठिन तपस्या द्वारा गंगा को धरती पर लाया था। यह मुद्रा भागीरथ की सूचक मुद्रा ज्ञात होती है।

34. डमरू मुद्रा

चमड़े से बना हुआ एक छोटा बाजा, जो मध्यभाग में पतला होता है और हिलाने पर उसमें लगी घंटियों से बजता है। यह शिवजी के द्वारा धारण किया गया है तथा मदारियों द्वारा बंदर, भालू आदि जानवरों को नचाने के लिए भी उपयोग में आता है।

इस मुद्रा के द्वारा संभवत: शिव स्वरूप की अभिव्यक्ति की जाती है।

35. दान मुद्रा

देने की क्रिया, दी गई वस्तु या दयावश किसी को कोई वस्तु प्रदान करना दान कहलाता है।

यह मुद्रा दान देने अथवा किसी दानवीर को सूचित करती है। इस मुद्रा की विधि वरदमुद्रा के समान है और उसी का नामान्तर है।

36. दिलीप मुद्रा

इक्ष्वाकु वंश के प्रसिद्ध राजा, जिन्होंने नंदिनी नामक गाय को प्रसन्न करके पुत्र प्राप्त किया था।

यह मुद्रा उस राजा दिलीप के जीवन चरित्र का दिग्दर्शन करवाती है तथा पताका मुद्रा के समान है।

37. दीप मुद्रा

दीप अर्थात दीपक, रोशनी, चिराग। यह मुद्रा **तो-म्यो-इन्** मुद्रा के समान है। इस मुद्रा के द्वारा अंधेरे में रोशनी के भाव, पूजा आदि में दीपक की आरती के भाव या दीपक पूजा के भाव व्यक्त किये जा सकते हैं।

38. गंगा मुद्रा

भारत की प्रसिद्ध और पवित्र नदी, जिसको भागीरथ ने तपस्या के द्वारा धरती पर उतारा था, ऐसी मान्यता है। कहते हैं कि गंगा नदी तीनों लोकों में हैं तथा काशी, प्रयाग आदि कई प्रधान तीर्थ इस नदी के किनारे हैं।

संभवत: गंगा नदी या नदी भाव को दर्शाने हेतु यह मुद्रा की जाती है।

39. हरिश्चन्द्र मुद्रा

यह मुद्रा त्रेतायुग के सूर्यवंशीय 24वें राजा, जो त्रिशंकु के पुत्र थे तथा अपनी उदारता और सत्यवादिता के लिए प्रसिद्ध थे, ऐसे हरिश्चन्द्र से सम्बन्धित है।

नाटक-नृत्य के दरम्यान यह मुद्रा राजा हरिश्चन्द्र के जीवन सौन्दर्य को दिखाने के लिए की जाती होगी।

40. कृष्ण-मृग मुद्रा

हिन्दी बृहद् कोश के अनुसार कृष्णसार मृग, काला हिरन, काले धब्बे वाला हिरन कृष्णमृग कहलाता है।

यह मुद्रा कृष्ण मृग की सूचक है।

41. क्रोध मुद्रा

चित्त का तीव्र उद्वेग, जो किसी अनुचित कार्य को होते हुए देखकर अथवा इच्छापूर्ति न होने पर उत्पन्न होता है, क्रोध कहलाता है।

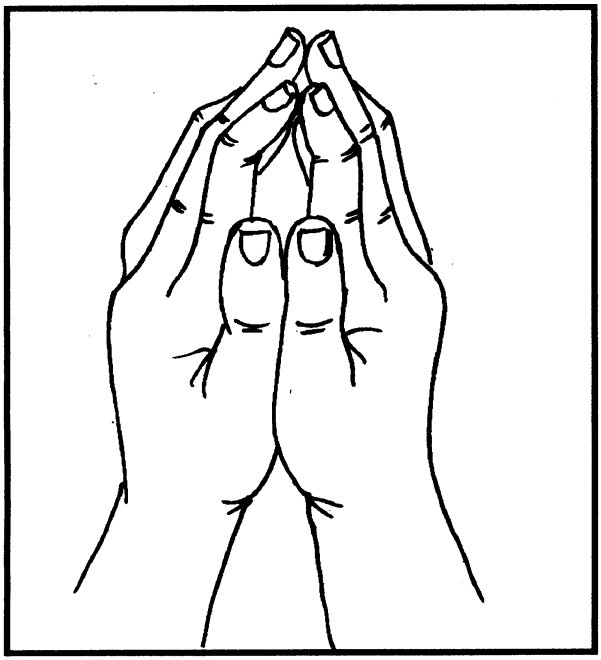
नाटक आदि में इस मुद्रा के द्वारा क्रोध भाव को दर्शाया जाता है।

42. खड्ग मुद्रा

खड्ग का प्रचलित नाम तलवार है अत: यह मुद्रा तलवार की सूचक है। इस मुद्रा को नाटक आदि में दोनों हाथों से करते हैं।

विधि

दोनों हथेलियाँ मध्यभाग की ओर, अंगूठे ऊपर उठे हुए और परस्पर स्पर्श करते हुए रहें। मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका एक-दूसरे के अग्रभाग को स्पर्श करती हुई तथा तर्जनी प्रथम जोड़ पर मुड़ती हुई और अग्रभाग को स्पर्श करती हुई रहने पर खड्ग मुद्रा बनती है।[30]



खड्ग मुद्रा

लाभ

चक्र– आज्ञा, सहस्रार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष, पिनियल एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन, ज्योति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, आंख, स्नायु तंत्र, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

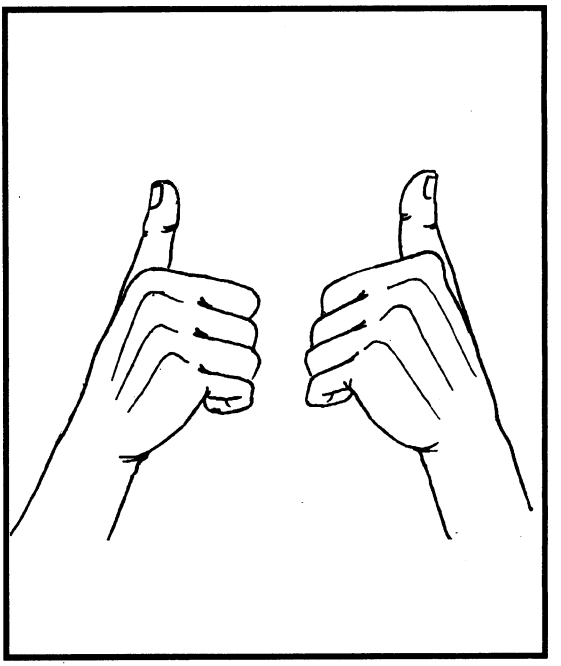
43. क्षत्रिय मुद्रा

हिन्दुओं के चार वर्णों में से दूसरा वर्ण क्षत्रिय कहलाता है। क्षत्रिय का मुख्य कार्य देश का शासन और शत्रुओं से उसकी रक्षा करना है। मनु के अनुसार इस वर्ण जाति का कर्त्तव्य वेदाध्ययन, प्रजापालन, दान और यज्ञ आदि करना है।

पुराणों के अनुसार इनके दो वंश थे चन्द्र और सूर्य। वर्तमान में कई भेद मिलते हैं। प्राय: इन्हें ठाकुर कहा जाता है।

क्षत्रियों के सम्बन्ध में एक मान्यता यह भी है कि सृष्टि निर्माण के समय यह ब्रह्मा की भुजाओं से उत्पन्न हुए थे।

यह नाट्य मुद्रा क्षत्रिय जाति एवं उनके वीरता और पराक्रम की सूचक है। इस मुद्रा में गति होती है।



क्षत्रिय मुद्रा

विधि

इस मुद्रा को बनाते समय दायीं हथेली मध्यभाग की तरफ रखें, अंगुलियों को मुट्ठी रूप में बाँध दें और अंगूठे को ऊपर की तरफ प्रसरित करें।

बाएं हाथ को भी मध्यभाग की तरफ रखें, अंगुलियों को मुट्ठी रूप बनाते हुए अंगूठे को उन्मुख रखने पर क्षत्रिय मुद्रा बनती है। इसमें बायां हाथ आगे-पीछे होता रहता है।[31]

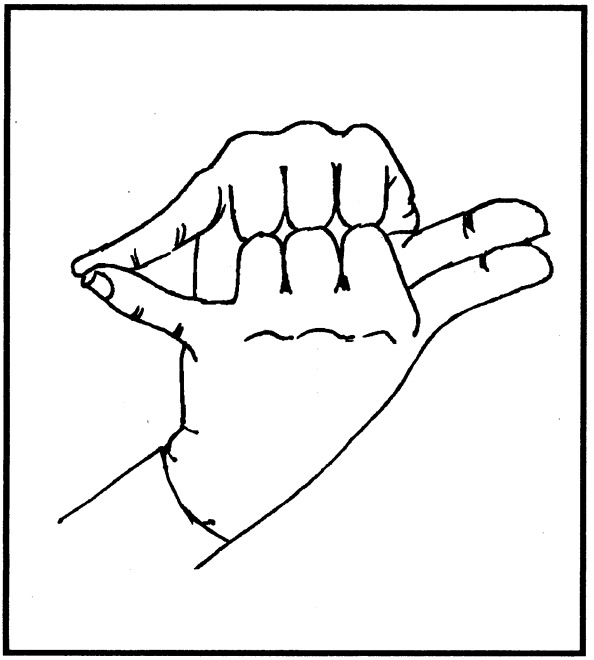
लाभ

चक्र– मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क आदि।

44. कूर्म मुद्रा

कूर्म अर्थात कच्छप। कछुएँ के ऊपर ढाल की तरह कड़ी खोपड़ी होती है। इस खोपड़ी के नीचे वह अपना सिर और हाथ-पैर सिकोड़ लेता है अत: इन्द्रिय गोपन के लिए कूर्म का उदाहरण दिया जाता है।

यह मुद्रा दोनों हाथों से की जाती है तथा भगवान विष्णु के कच्छप अवतार की सूचक है।



कूर्म मुद्रा

विधि

दोनों हाथों की कनिष्ठिका और अंगूठों को बाहर की तरफ फैलाते हुए शेष अंगुलियों की मुट्ठी बांधें। फिर मुट्ठी रूप में अवस्थित दायें हाथ को बायें हाथ पर रखने से कूर्म मुद्रा बनती है।

इसमें कनिष्ठिका और अंगूठे परस्पर में संयुक्त रहते हैं।[32]

लाभ

चक्र– मूलाधार, अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, आनंद

एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्तसंचार प्रणाली, स्नायु तंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

45. कुरूवक मुद्रा

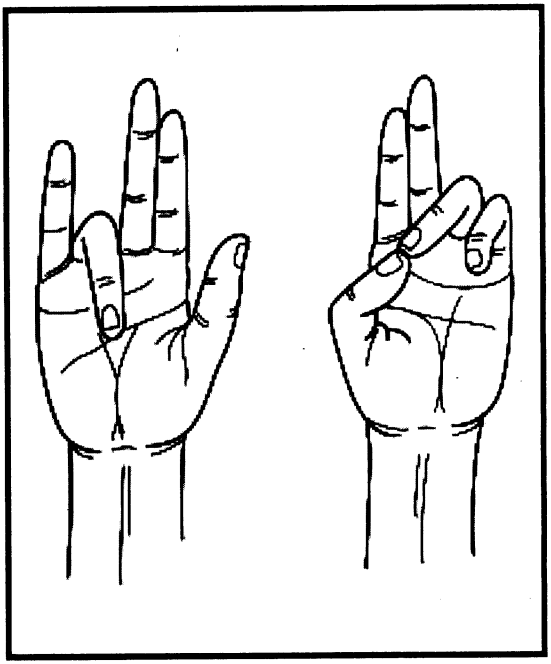
नाटक आदि में प्रयुक्त यह मुद्रा कुरूवक वृक्ष की सूचक है।

विधि

दायीं हथेली सामने की ओर छाती के स्तर पर धारण की हुई, अनामिका को छोड़कर शेष अंगुलियाँ ऊपर की ओर फैली हुई, अनामिका नीचे की ओर मुड़ी हुई रहे।

बायीं हथेली सामने की ओर, तर्जनी और मध्यमा ऊपर की तरफ फैली हुई हल्की सी दूरी पर, कनिष्ठिका झुकी हुई तथा अंगूठे का अग्रभाग अनामिका के अग्रभाग से स्पर्श करता हुआ रहने पर कुरूवक मुद्रा बनती है।[33]

इसमें बायीं अनामिका हथेली तरफ मुड़ी हुई रहती है।



कुरूवक मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस केन्द्र एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क।

46. कुबेर मुद्रा

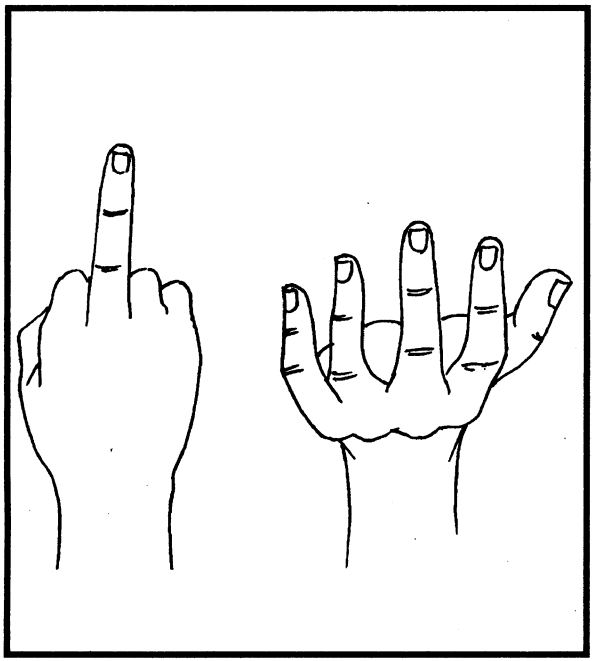
कुबेर नाम के एक देवता है जो इन्द्र की नव निधियों के भंडारी और महादेवजी के मित्र समझे जाते हैं। यह सम्पूर्ण संसार के धन के स्वामी माने जाते हैं।

यह मुद्रा धन के देवता कुबेर की सूचक है। हिन्दु और बौद्ध द्विविध परम्पराओं में इसे Secretary (सचिव) माना गया है।

यह मुद्रा वैश्रवण से भी संबंधित है जो आठ दिशाओं के प्रधानों में से एक है।

विधि

दायें हाथ को गदा मुद्रा की भाँति बनायें तथा बायीं हथेली को ऊर्ध्वमुख रखते हुए अंगुलियों और अंगूठे को अलग-अलग कर किंचित अंदर की तरफ मोड़ने पर कुबेर मुद्रा बनती है। इसमें दोनों हाथ कंधे के स्तर पर धारण किये जाते हैं।[34]



कुबेर मुद्रा

लाभ

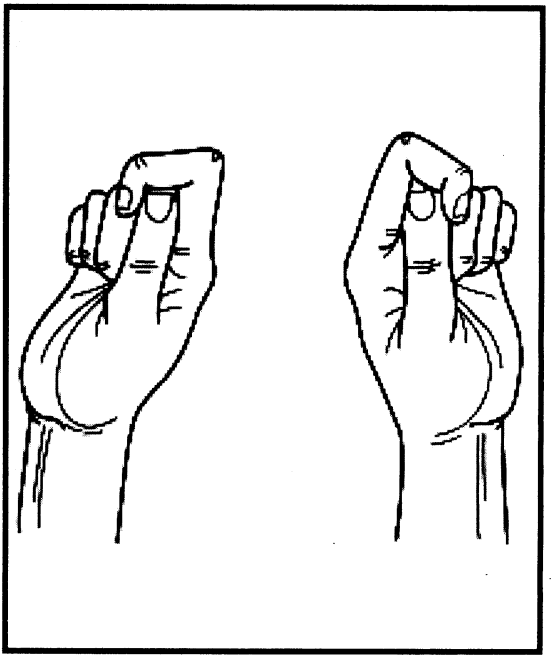
चक्र– मूलाधार एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

47. लक्ष्मी मुद्रा

हिन्दु परम्परा की प्रसिद्ध देवी लक्ष्मी, विष्णु की पत्नी और धन की अधिष्ठात्री मानी जाती है।

पुराणों में इसके विषय में अनेक कथाएँ मिलती है। कहते हैं समुद्र मंथन के समय चौदह रत्न निकले थे उनमें से यह एक है। दीपावली, धनतेरस के दिन इनकी सर्वत्र पूजा की जाती है।

यह नृत्य मुद्रा लक्ष्मी देवी की सूचक है।



लक्ष्मी मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को एक-दूसरे से विमुख मध्यभाग पर रखें। फिर मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को हथेली की तरफ मोड़ें, अंगूठों को मध्यमा के प्रथम पोर पर रखें तथा तर्जनी को उसके ऊपर से घुमाकर मोड़ने पर लक्ष्मी मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा कंधो के स्तर पर धारण की जाती है।[35]

लाभ

चक्र– अनाहत, मणिपुर एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** वायु, अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद, तैजस एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्तसंचार प्रणाली, नाड़ी संस्थान, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, मेरूदण्ड, गुर्दे आदि।

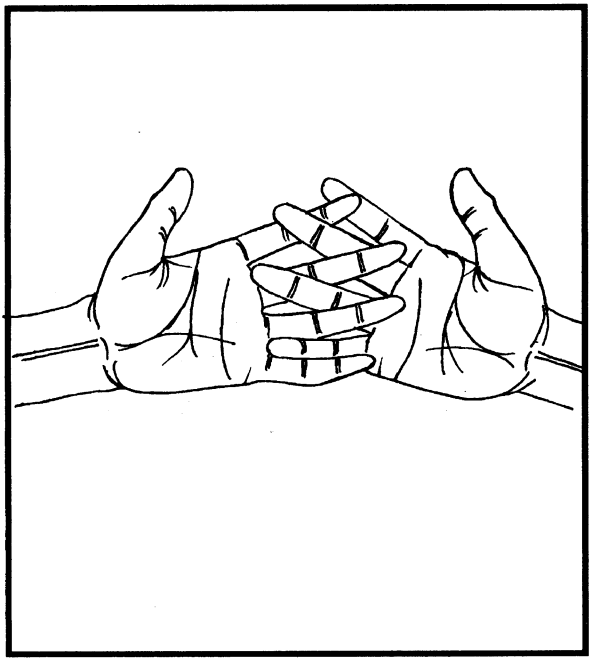
48. लीन कर्कट मुद्रा

लीन का अर्थ है– लय को प्राप्त, तन्मय, मग्न और कर्कट का अर्थ है केकड़ा।

यह मुद्रा शिकार आदि में निमग्न केकड़े की सूचक है। नाटक आदि में इस मुद्रा का प्रयोग उपरोक्त अर्थ के सन्दर्भ में होना चाहिए। यह संयुक्त मुद्रा है।

विधि

दोनों हथेलियों को ऊर्ध्वाभिमुख रखें तथा अंगुलियों को परस्पर गुम्फित करते हुए हथेलियों को समभाग में रखने पर लीन कर्कट मुद्रा बनती है।[36]



लीन कर्कट मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, कान, नाक, गला, मुंह, स्वर यंत्र।

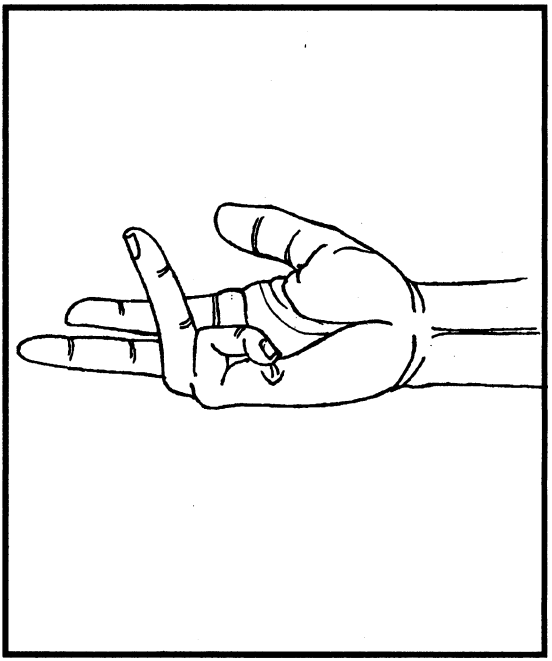
49. लीनाल पद्म मुद्रा

यह मुद्रा अलपद्म मुद्रा के समान ही खिले हुए पद्म की सूचक है अथवा नालयुक्त पद्म की भी प्रज्ञापक हो सकती है।

यह नाटकीय मुद्रा एक हाथ से की जाती है।

विधि

दायीं हथेली को सामने की ओर रखते हुए अंगुलियों एवं अंगूठे को सख्ती से पृथक्-पृथक् करें, कनिष्ठिका को हथेली की तरफ मोड़ें और अनामिका हथेली से 45^0 कोण पर रहें। इस स्थिति में लीनाल पद्म मुद्रा बनती है।[37]



लीनाल पद्म मुद्रा

लाभ

चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्तसंचार प्रणाली, स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क।

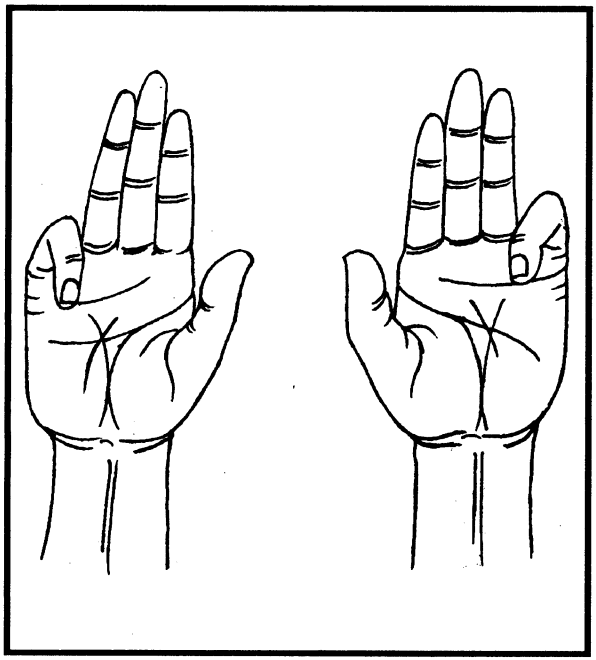
50. मध्य पताका मुद्रा

मुद्रा स्वरूप के अनुसार इस मुद्रा में बीच की तीन अंगुलियों के द्वारा पताका दर्शायी जाती है अत: इसका नाम मध्य पताका है।

यह नाट्य मुद्रा दोनों हाथों से बनाई जाती है।

विधि

दोनों हथेलियों को ऊपर उठाकर सामने की ओर करें। फिर तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और अंगूठों को ऊर्ध्व प्रसरित करें और किंचित झुकायें तथा कनिष्ठिका को हथेली के भीतर मोड़ने पर मध्य पताका मुद्रा बनती है।[38]



मध्य पताका मुद्रा

51. मन्मथ मुद्रा

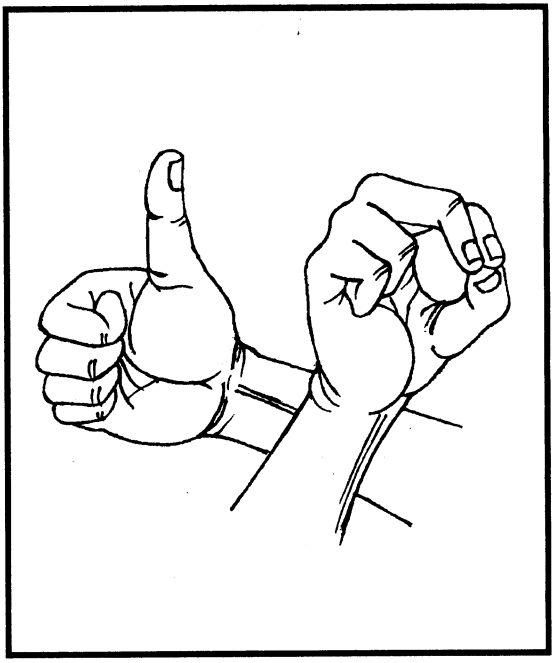
मन्मथ शब्द का एक अर्थ है कामदेव। विद्वज्ञों के अनुसार यह मुद्रा कामदेव की सूचक है। कामदेव रति पति है और इन्हें रति या काम का देव माना गया है।

नाटक आदि में इस मुद्रा के द्वारा काम वासना, प्रेम आदि दर्शाया जाता है।

विधि

दायां हाथ मध्य भाग की ओर, तर्जनी एवं मध्यमा का अग्रभाग अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्श करता हुआ तथा अनामिका और कनिष्ठिका हथेली के भीतर मुड़ी हुई रहें।

बायां हाथ मध्यभाग में, अंगुलियाँ मुट्ठी रूप में तथा अंगूठा ऊर्ध्वाभिमुख रहने पर मन्मथ मुद्रा बनती है।[39]



मन्मथ मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर, स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि, जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, प्रजनन एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र,

यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क।

52. नैर्ऋति मुद्रा

नैर्ऋत्य कोण के अधिपति (दिक्पाल) नैर्ऋत देव है। यह मुद्रा नैर्ऋत देव को सूचित करती हुई नाटक आदि में युग्म पाणि से धारण की जाती है।

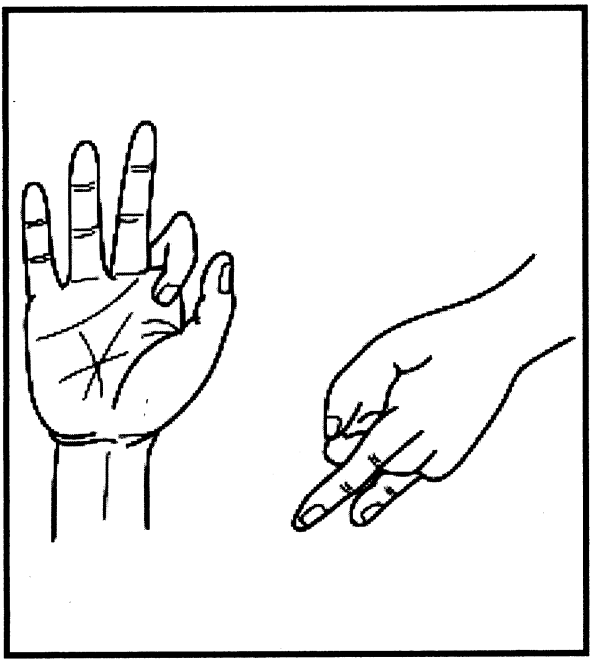
विधि

दायीं हथेली आगे की ओर, तर्जनी अंगुली हथेली के भीतर की ओर मुड़ी हुई तथा मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठिका और अंगूठा ऊपर की तरफ फैले हुए रहें।

बायीं हथेली अधोभाग की ओर, मध्यमा और अनामिका हथेली की तरफ मुड़ी हुई तथा अंगूठा इन दोनों अंगुलियों के दूसरे जोड़ को स्पर्श करता हुआ रहे।

फिर तर्जनी और कनिष्ठिका को नीचे की तरफ प्रसरित करने पर नैर्ऋति मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा कंधो के स्तर पर धारण की जाती है।[40]



नैर्ऋति मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं ज्ञान केन्द्र **विशेष**

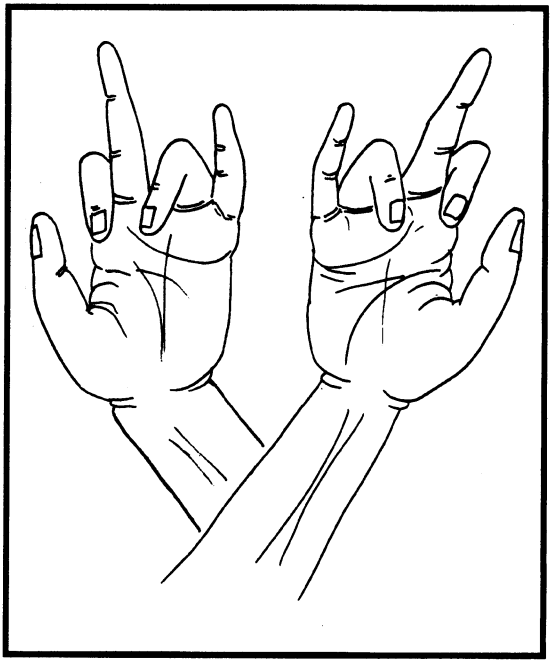
प्रभावित अंग– प्रजनन अंग, मल-मूत्र अंग, गुर्दे, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

53. निम्बसल मुद्रा

इस विश्व में निम्बसल नाम का एक वृक्ष है। यह नाट्य मुद्रा कलाकारों के द्वारा निम्बसल वृक्ष के भाव को दर्शाने के प्रयोजन से की जाती है। इस मुद्रा को दोनों हाथों से करते हैं।

विधि

दोनों हथेलियों को बाहर की तरफ रखें। फिर मध्यमा, कनिष्ठिका और अंगूठे ऊपर उठे हुए, तर्जनी और अनामिका हथेली की तरफ मुड़ी हुई रहें तथा हाथों को कलाई पर Cross करते हुए रखने पर निम्बसल मुद्रा बनती है।[41]



निम्बसल मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर, स्वाधिष्ठान एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** अग्नि, जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** गोनाड्स, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, स्वास्थ्य एवं ज्ञान केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन

संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ी तंत्र, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँखें।

54. वरूण मुद्रा

यह मुद्रा नाट्य कला में एक विशेष देव वरुण की सूचक मानी गई है।

पुराणों के अनुसार वरूण देवता पश्चिम दिशा का अधिपति है, इसकी गणना दिक्पालों में की जाती है।

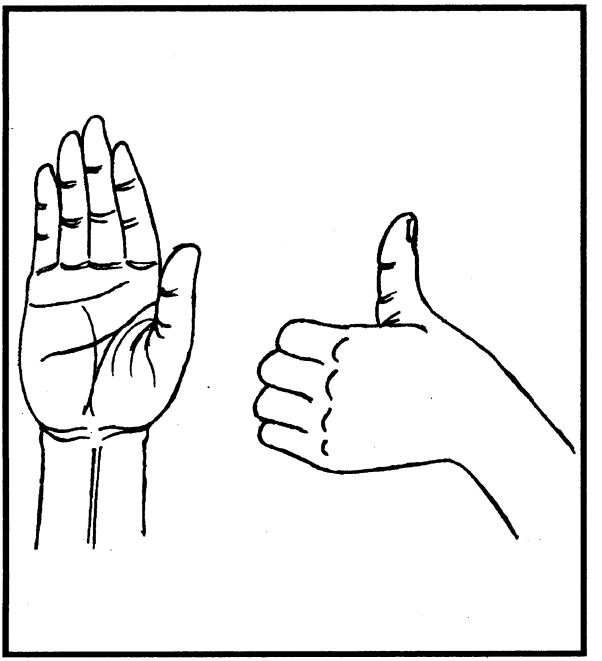
यह मुद्रा दिक्पाल (दिशा रक्षक) वरूण देवता से सम्बन्धित है।

विधि

दायीं हथेली सामने की तरफ, अंगुलियाँ और अंगूठा एक साथ ऊपर की तरफ फैले हुए और हल्के से झुके हुए रहें।

बायीं हथेली मध्यभाग की तरफ, अंगुलियाँ मुट्ठी रूप में तथा अंगूठे को ऊपर की ओर सीधा रखने पर वरूण मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा कंधे के स्तर पर धारण की जाती है।[42]



वरुण मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, कान, नाक, गला, मुँह, स्वर यंत्र।

55. वायु मुद्रा

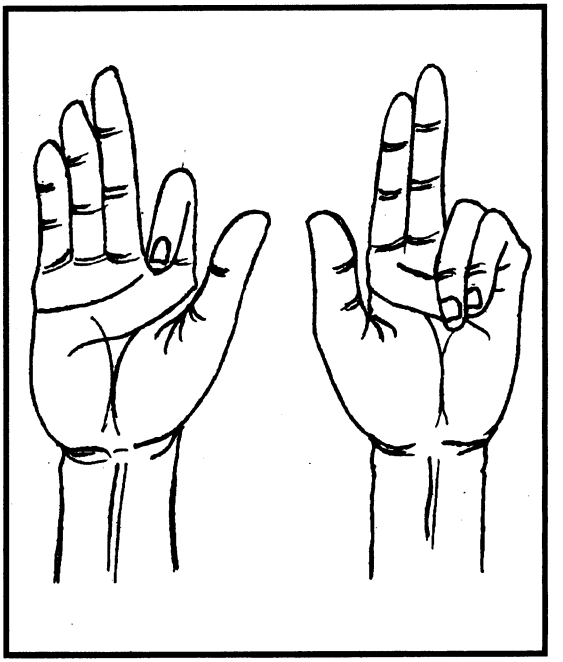
इस संयुक्त मुद्रा के द्वारा वायु देव को सूचित किया जाता है।

विधि

दायीं हथेली सामने की तरफ रहें। अंगूठा, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका ऊपर की तरफ फैली हुई रहें और तर्जनी हथेली तरफ किंचित मुड़ी हुई रहे।

बायीं हथेली भी सामने की तरफ रहें, तर्जनी, मध्यमा और अंगूठा ऊपर की तरफ फैले हुए रहें तथा अनामिका और कनिष्ठिका हथेली के भीतर मुड़ी हुई रहने पर वायु मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा में दोनों हाथ कंधों के स्तर पर धारण किये जाते हैं।[43]



वायु मुद्रा

लाभ

चक्र– अनाहत एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** वायु एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण प्रणाली, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

56. व्हलो मुद्रा

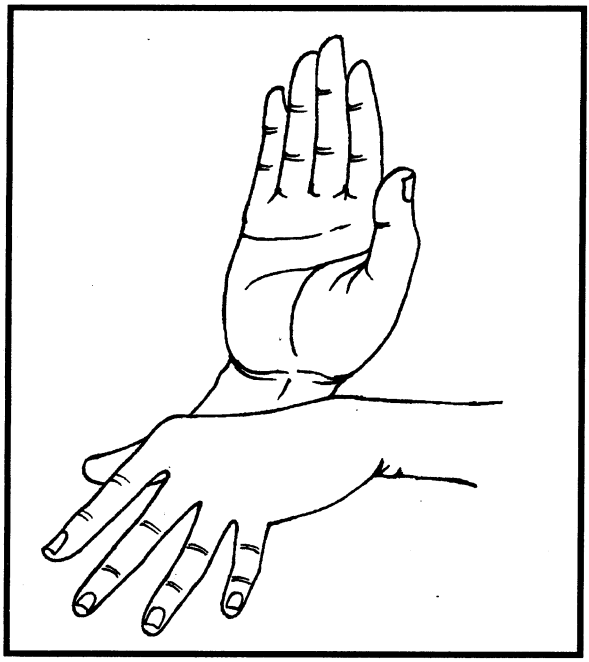
यह नाट्य मुद्रा संयुक्त मुद्रा के रूप में प्रयुक्त होती है। विद्वानों के अनुसार यह मुद्रा रीछ की सूचक है।

विधि

दायीं हथेली को बाहर की तरफ रखें, फिर अंगुलियों एवं अंगूठे को शिथिल रूप से ऊपर की ओर करते हुए किंचित झुकायें।

बायीं हथेली को नीचे की तरफ रखें। फिर अंगुलियों, और अंगूठे को पृथक्-पृथक् करते हुए कुछ भीतर की ओर मोड़ें।

तत्पश्चात दायीं हथेली की एड़ी को बायीं हथेली के पृष्ठ भाग पर रखने से व्हलो मुद्रा बनती है।[44]



व्हलो मुद्रा

लाभ

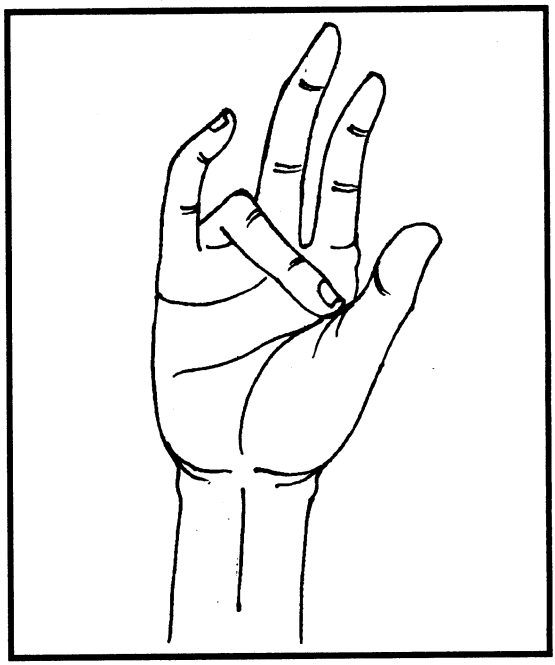
चक्र– सहस्रार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, ऊपरी मस्तिष्क, आँख।

57. व्याली मुद्रा

यह नाट्य मुद्रा अपने नाम के अनुसार व्याली नामक पक्षी की सूचक है।

विधि

दायीं हथेली बाहर की तरफ, तर्जनी और मध्यमा हल्की सी मुड़ी हुई, अनामिका का अग्रभाग अंगूठे के मूल सतह से स्पर्श करता हुआ और कनिष्ठिका किंचित मुड़ी हुई रहने पर व्याली मुद्रा बनती है।[45]



व्याली मुद्रा

लाभ

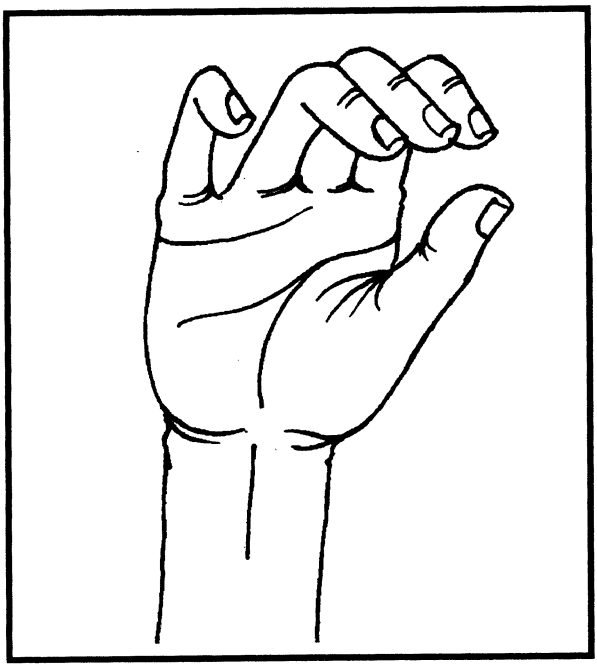
चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाड़ी संस्थान, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

58. परदिष मुकुल मुद्रा

यह मुद्रा नाटक आदि में कलाकारों के द्वारा एक हाथ से धारण की जाती है।

विधि

हथेली को बाहर की तरफ करते हुए तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और अंगूठे के अग्रभागों को निकट में लायें, किन्तु परस्पर अस्पर्शित रखें तथा कनिष्ठिका को पृथक करते हुए हल्की सी झुकाने पर परदिष मुकुल मुद्रा बनती है।[46]



परदिष मुकुल मुद्रा

लाभ

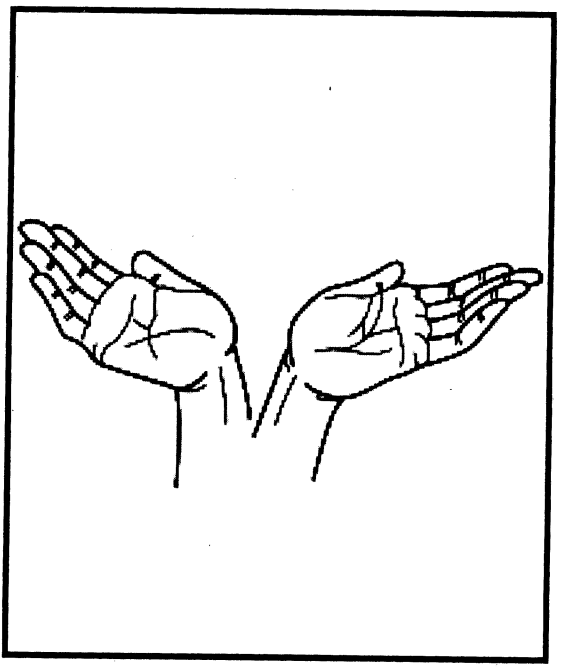
चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** आनन्द एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र, स्नायु तंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

59. पारीजात मुद्रा

एक देव वृक्ष जो स्वर्ग लोक में इन्द्र के नंदन वन में है। इस वृक्ष के फूल अपने नाम के अनुरूप अनेक तरह की गंध प्रसरित कर सकते हैं।

इसकी भिन्न-भिन्न शाखाओं में अनेक प्रकार के रत्न लगते हैं। यह वृक्ष समुद्र मंथन के समय निकला था तथा विशेष गुणों से युक्त है। यह मुद्रा उसी पारीजात वृक्ष की सूचक है।

इस नाट्य मुद्रा को त्रिज्ञान मुद्रा के समान जानना चाहिये।



पारीजात मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर, अनाहत एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** अग्नि, वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** तैजस, आनंद एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायमस एवं पिनियल ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, यकृत, तिल्ली, नाड़ी तंत्र, आँतें, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँखें।

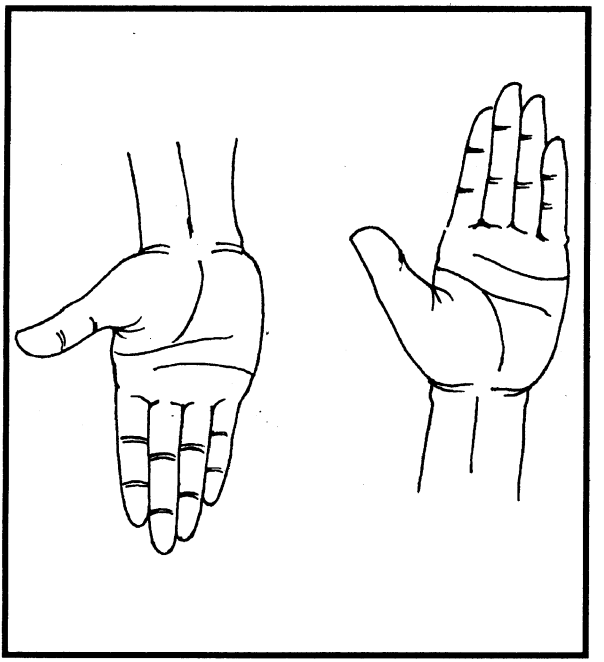
60. पार्वती मुद्रा

हिमालय पर्वत की कन्या, शिव की अर्धाङ्गिनी देवी पार्वती कहलाती है। यह देवी गौरी, दुर्गा, शिवा, भवानी, आदि अनेक नामों से पूजी जाती है। नाट्य परम्परा की यह मुद्रा पार्वती देवी की प्रतीक है। इस मुद्रा को दोनों हाथों से सम्पादित करते हैं।

विधि

दायीं हथेली बाहर की तरफ, अंगुलियाँ शिथिल रूप में एक साथ नीचे की ओर फैली हुई और अंगूठा अंगुलियों से दूर रहे।

बायीं हथेली सामने की तरफ, अंगुलियाँ एक साथ ऊपर की ओर फैली हुई तथा अंगूठा अगुलियों से दूर रहने पर पार्वती मुद्रा बनती है।[47]



पार्वती मुद्रा

लाभ

चक्र– अनाहत एवं सहस्त्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली, आँख एवं ऊपरी मस्तिष्क।

61. पाटली मुद्रा

पाटली शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है। यहाँ पाटली मुद्रा पाटली वृक्ष से सम्बन्धित है। यह नाटक आदि में इस वृक्ष को दर्शाने हेतु धारण की जाती है।

इस मुद्रा को शुकतुण्ड मुद्रा के समान समझना चाहिए।

पुरुकुत्स मुद्रा

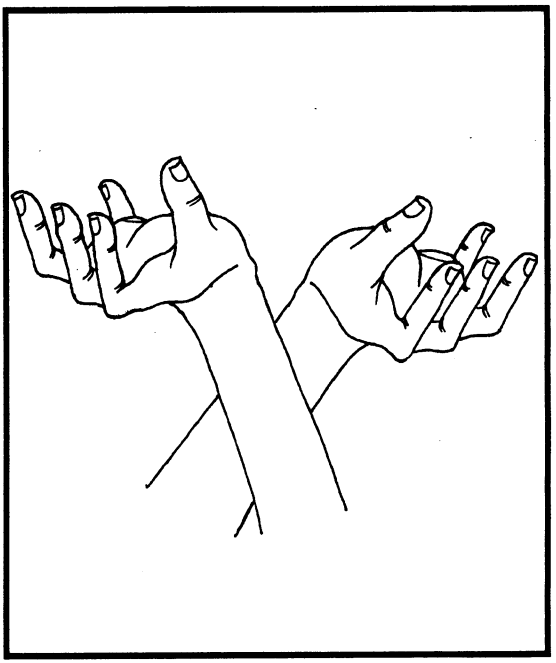
यह नाट्य मुद्रा एक वीर शासक पुरुकुत्स की सूचक है। इसे अलपद्म मुद्रा के समान जानना चाहिये।

पुरुरवस् मुद्रा

यह मुद्रा प्रसिद्ध योद्धा पुरुरवस् की सूचक है तथा इसे मुष्टि मुद्रा के समान माना गया है।

62. पूग मुद्रा

यह नाटक परम्परा की प्रसिद्ध मुद्रा है। इसे संयुक्त हाथों से धारण करते हैं। विद्वानों के अनुसार यह मुद्रा सुपारी या पुंगीफल के वृक्ष की सूचक है। संस्कृत में सुपारी को पूग कहते हैं अत: यह सुपारी के भाव को दर्शित करती है।



पूग मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियाँ ऊपर की तरफ, अंगुलियाँ और अंगूठे अलग-अलग किये हुए और हल्के से अन्दर की तरफ घूमते

हुए रहें तथा हाथों को कलाई पर Cross करते हुए रखने पर पूग मुद्रा बनती है।[48]

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान, आज्ञा एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** जल, आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, पीयूष, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य, दर्शन एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, नाक, कान, गला, मुँह, स्वर यंत्र।

63. पुन्नाग मुद्रा

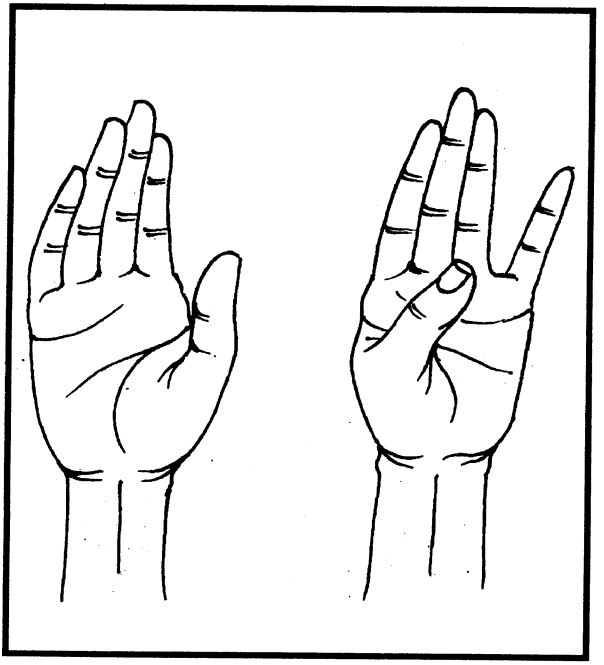
पुन्नाग एक श्रेष्ठ वृक्ष का नाम है। यह दक्षिण में अधिक पाया जाता है। समुद्र तट की रेतीली भूमि में जहाँ अन्य कोई पेड़ नहीं रहता वहाँ यह अपने फल-फूल की बहार दिखाता है। वैद्यक में इसे मधुर, शीतल, सुगंधित और पित्तनाशक माना गया है।

नाट्य परम्परा की यह मुद्रा पुन्नाग वृक्ष की सूचक मानी गयी है।

विधि

दायीं हथेली को छाती के स्तर पर सामने की ओर रखें, अंगुलियों और अंगूठे को शिथिलता से ऊपर की तरफ फैलायें और किंचित झुकायें।

बायीं हथेली को भी बाहर की तरफ रखें, अंगुलियों को एक साथ ऊर्ध्व प्रसरित करें, कनिष्ठिका को



पुन्नाग मुद्रा

हल्के से पृथक करें तथा अंगूठे के अग्रभाग से अनामिका अंगुली के निचले हिस्से को स्पर्शित करने पर पुन्नाग मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा पताका मुद्रा और चतुर मुद्रा को सम्मिलित कर बनाई गयी है।[49]

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी संस्थान, पाचन संस्थान, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

64. राहु मुद्रा

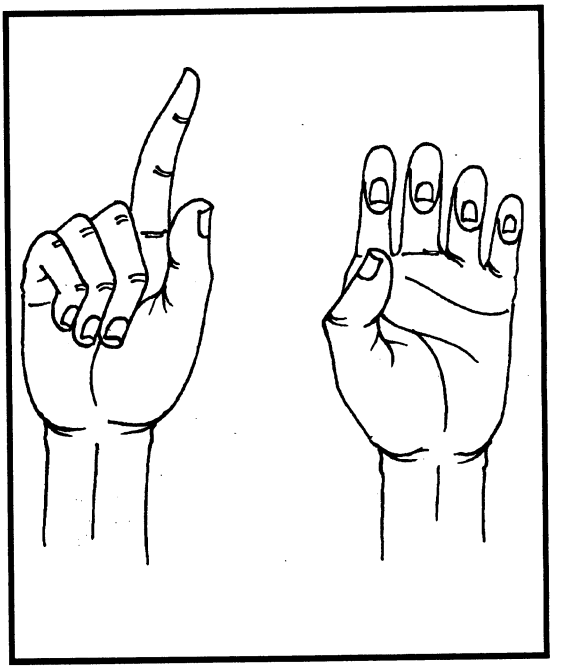
नाटक आदि में यह मुद्रा कलाकारों द्वारा दोनों हाथों से धारण की जाती है।

नौ ग्रहों में से एक ग्रह का नाम राहु है। इस मुद्रा से राहु ग्रह एवं चन्द्रमा की बढ़ती हुई कलाओं का बोध किया जाता है।

विधि

दायीं हथेली को अपनी तरफ करते हुए तर्जनी और अंगूठे को ऊपर उठायें तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली में मोड़े हुए रखें।

बायीं हथेली को बाहर की तरफ रखें, अंगूठा तर्जनी के निचले हिस्से के विपरीत रहें तथा तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली



राहु मुद्रा

तरफ किंचित झुकाने पर राहु मुद्रा बनती है।[50]

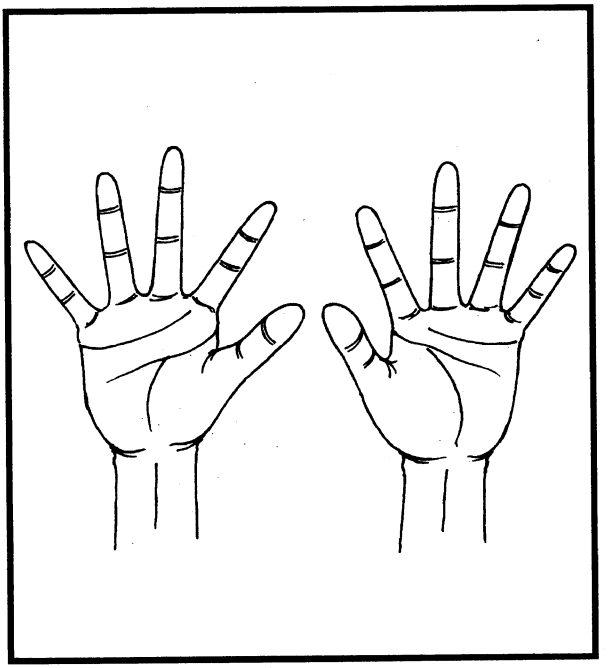
लाभ

चक्र– मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग।

65. रावण मुद्रा

नाट्य परम्परा में इस मुद्रा का अत्यधिक महत्त्व है। यह संयुक्त मुद्रा राक्षस रावण की सूचक है। वह प्रसिद्ध शासकों और योद्धाओं में से एक ऐसा अद्वितीय पुरुष था, जिसने नारी की इच्छा के विरुद्ध अनाचार का सेवन नहीं किया।

इसे दशानन भी कहा जाता है क्योंकि इसके दस मस्तक थे।



रावण मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियाँ छाती के स्तर पर अपनी तरफ रहें, अंगुलियाँ और अंगूठे अलग-अलग ऊर्ध्व प्रसरित रहें तथा हाथ कंधों के पार्श्व में रहें, तब रावण मुद्रा बनती है।[51]

लाभ

चक्र– मणिपुर, आज्ञा एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** अग्नि, आकाश एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, पीयूष एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–**

तैजस, दर्शन एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क, मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव।

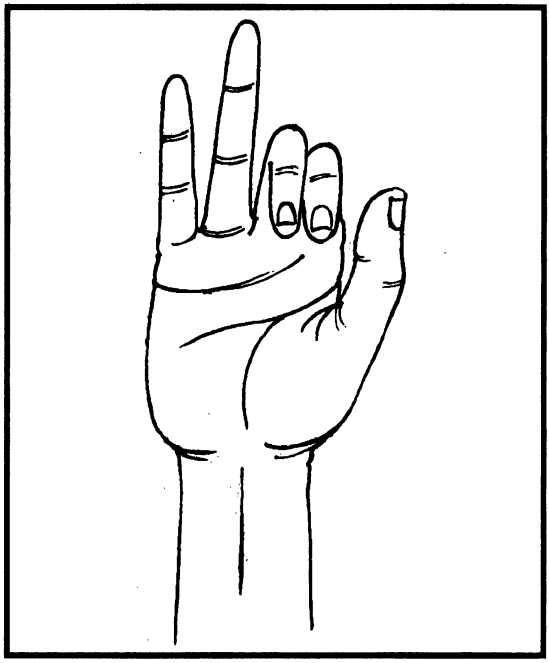
66. संयम नायक मुद्रा

यह मुद्रा वृक्ष से सम्बन्धित है। विद्वानों ने इस मुद्रा को अमलक वृक्ष का सूचक कहा है।

नाट्यकला के समय यह मुद्रा एक हाथ से दिखायी जाती है।

विधि

दायीं हथेली सामने की ओर अभिमुख, तर्जनी और मध्यमा हथेली में मुड़ी हुई तथा अंगूठा, अनामिका और कनिष्ठिका ऊपर की ओर सीधी रहने पर संयम नायक मुद्रा बनती है।[52]



संयम नायक मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **विशेष**

प्रभावित अंग– मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

67. संकीर्ण मुद्रा

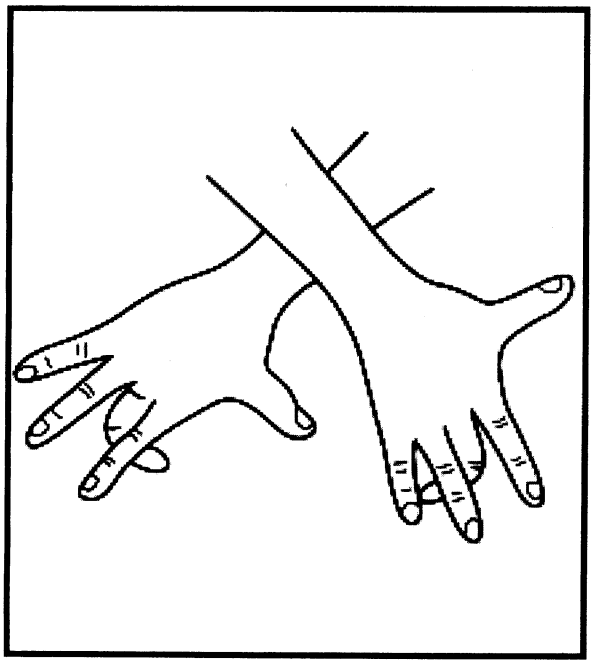
यहाँ संकीर्ण मुद्रा से तात्पर्य पशुओं से है। यह मुद्रा विशेषकर गाय की सूचक है। इस मुद्रा के द्वारा गाय जाति को दर्शाया जाता है।

यह संयुक्त मुद्रा नाटक करते वक्त अधिक प्रयुक्त होती है। इसकी विधि निम्न है–

विधि

दायीं हथेली नीचे की तरफ, अंगुलियाँ हल्की सी अलग की हुई एवं बाहर की तरफ फैलती हुई, मध्यमा हथेली तरफ झुकी हुई रहे, अंगूठा अंगुलियों से 90^0 कोण पर रहे। बायीं हथेली को भी इसी मुद्रा में बनायें। तदनन्तर दायें हाथ को बायें हाथ पर रखने से संकीर्ण मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा कमर के स्तर पर करते हैं।[53]



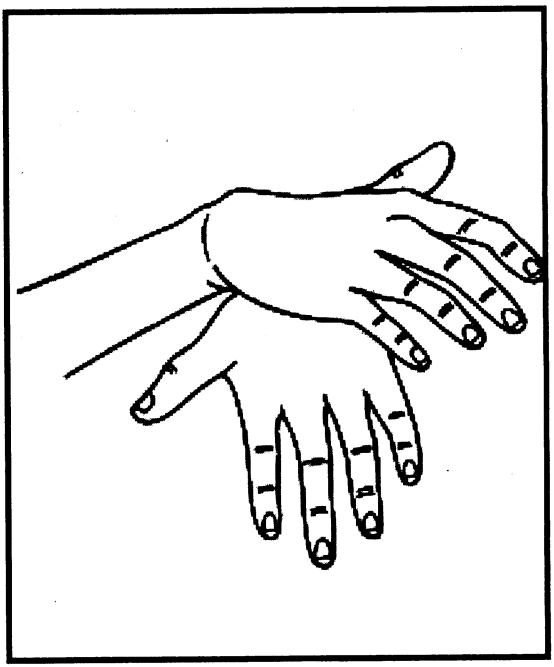
संकीर्ण मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ीतंत्र, पाचन तंत्र, स्वर तंत्र, नाक, कान, गला, मुँह।

68. संकीर्ण मकर मुद्रा

यह नाट्य मुद्रा सूअर (वराह) की सूचक है। इस मुद्रा को संयुक्त हाथों से धारण करते हैं। इसकी सामान्य विधि यह है–



संकीर्ण मकर मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियाँ नीचे की तरफ, अंगुलियाँ हल्की सी अलग की हुई एवं बाहर की ओर फैली हुई और अंगूठें अंगुलियों से 90^0 कोण पर रहें।

तत्पश्चात दायीं हथेली को बाएं हाथ के पृष्ठ भाग पर रखने से संकीर्ण मुकुल मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा में हाथों को कमर तक ऊँचा रखा जाता है।[54]

लाभ

चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

69. सरस्वती मुद्रा

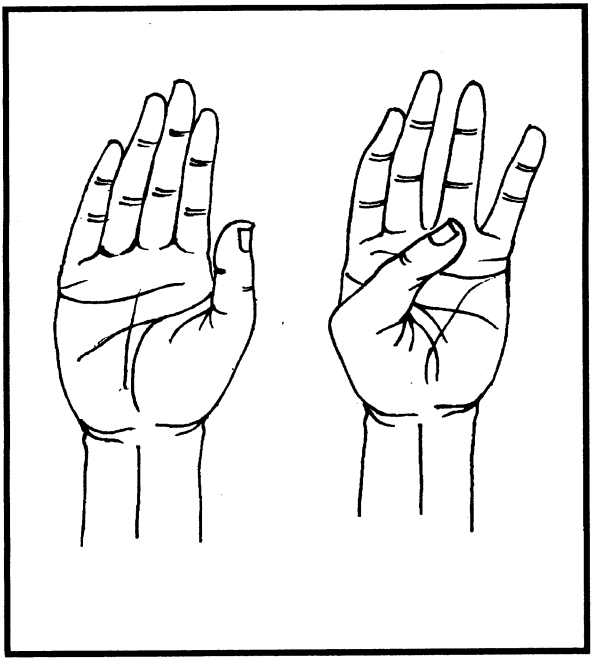
यह मुद्रा सरस्वती नाम की प्रसिद्ध नदी की सूचक है। सामान्य धारणा के अनुसार गंगा, यमुना और सरस्वती ये तीनों नदियाँ सदा बहती रहती है इसलिए सर्वाधिक पवित्र मानी गई है।

इस मुद्रा में पताका मुद्रा और चतुर मुद्रा का सम्मिश्रित रूप है।

विधि

दायीं हथेली छाती के स्तर पर स्वयं की तरफ, अंगुलियाँ और अंगूठा एक साथ ऊपर की तरफ फैले हुए एवं किंचित झुके हुए हों।

बायीं हथेली ऊपर की तरफ फैली हुई, कनिष्ठिका हल्की सी अलग, अंगूठे का अग्रभाग अनामिका के निचले हिस्से पर रहने से सरस्वती मुद्रा बनती है।[55]



सरस्वती मुद्रा

लाभ

चक्र– आज्ञा, विशुद्धि एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** आकाश, वायु एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष, थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन,

विशुद्धि एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, नाक, कान, गला, मुँह, स्वर यंत्र, मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव।

70. शैव्य मुद्रा

यह मुद्रा शैव्य नामक एक प्रसिद्ध शासक की सूचक है।

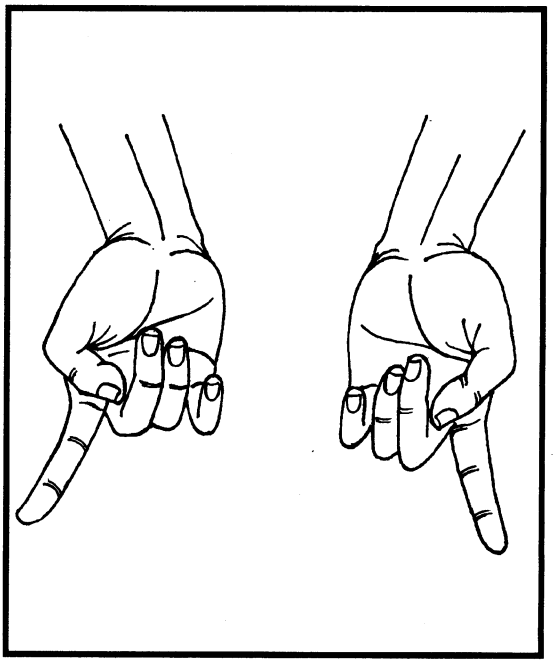
इसे नाटक करते वक्त संयुक्त हाथों से दिखाते हैं। इसकी विधि निम्न प्रकार है–

विधि

दोनों हाथों में समान मुद्रा होती है। हथेलियाँ ऊपर की तरफ, तर्जनी नीचे की ओर फैली हुई, मध्यमा और अनामिका हथेली में मुड़ी हुई, कनिष्ठिका किंचित झुकी हुई और अंगूठा मध्यमा को स्पर्श करता हुआ रहने पर शैव्य मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा कंधों के स्तर पर धारण की जाती है।

इस मुद्रा को एक हाथ से करने पर सुचि मुद्रा बनती है।[56]



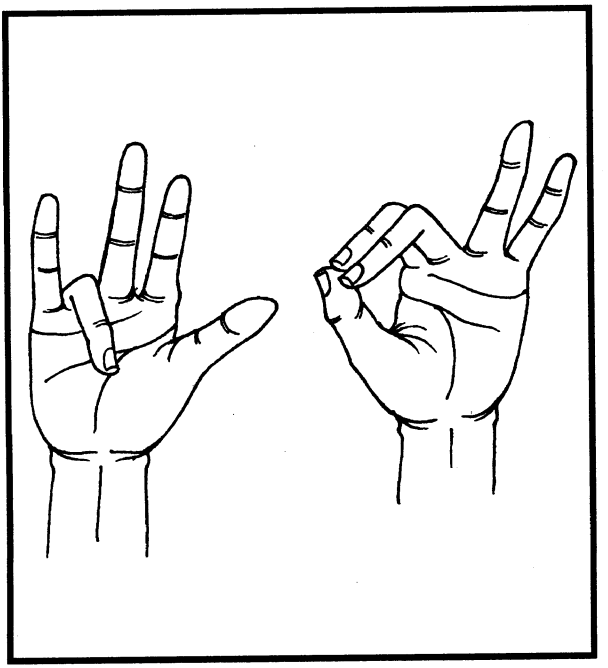
शैव्य मुद्रा

लाभ

चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** आनन्द एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र, स्नायु तंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

71. शम्भु मुद्रा

यह मुद्रा नृत्य-नाटक आदि में एक विशेष देवता को दर्शाने के प्रयोजन से की जाती है। स्वरूपत: यह शिव भगवान की सूचक है।



शम्भु मुद्रा

विधि

दायीं हथेली बाहर की ओर, तर्जनी, मध्यमा, कनिष्ठिका और अंगूठा एक साथ ऊपर की तरफ, अनामिका हथेली के भीतर झुकी हुई रहें।

बायीं हथेली भी सामने की तरफ, मध्यमा और तर्जनी अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्श किये हुए तथा अनामिका और कनिष्ठिका उर्ध्वाभिमुख रहने पर शम्भु मुद्रा बनती है।[57]

लाभ

चक्र– सहस्रार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** ज्योति एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** स्नायु तंत्र, आंख एवं मस्तिष्क।

72. शनैश्चर मुद्रा

इस मुद्रा के नाम से ही सुस्पष्ट होता है कि यह शनि ग्रह से सम्बन्धित मुद्रा है।

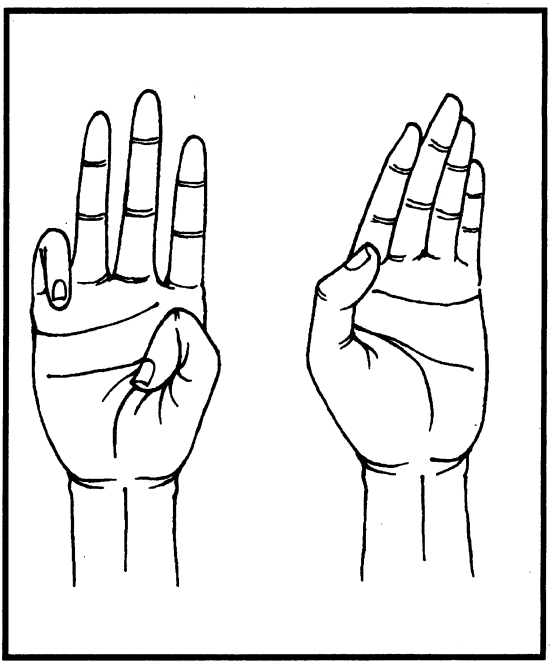
शनि की गति मन्द है। वह धीरे-धीरे चलता है अत: शनै: शनै: गमन करने वाला होने से इसका नाम शनैश्चर है।

यह मुद्रा नाटक आदि में शनि ग्रह को सूचित करती है।

विधि

दायीं हथेली को स्वयं की तरफ रखें। तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को हल्के से पृथक करते हुए ऊर्ध्वमुख करें तथा कनिष्ठिका और अंगूठे को हथेली की तरफ मोड़ें।

बायीं हथेली को आगे की तरफ करते हुए अंगूठे को तर्जनी के निचले हिस्से के विपरीत रखें तथा तर्जनी आदि सभी अंगुलियों को सर्प के फण के समान मोड़ने पर शनैश्चर मुद्रा बनती है।[58]



शनैश्चर मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं आनंद केन्द्र।

73. शमी मुद्रा

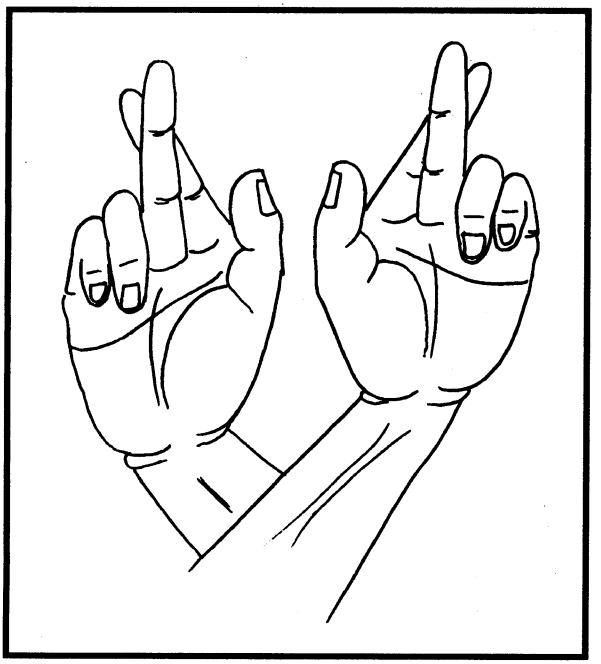
यह मुद्रा शमी नामक वृक्ष से सम्बन्धित है। शमी वृक्ष का फल एवं छाल अति उपयोगी है। दुर्भिक्ष के समय में इसकी छाल के आटे की रोटी बनाकर उपयोग में ली जाती है। अतिसार के समय में इसका काढ़ा एवं गठिया पर इसकी छाल पीसकर एवं उसे गरम करके लगाने से ठीक होता है। विजयादशमी आदि कुछ विशिष्ट अवसरों पर इसका पूजन भी करते हैं।

नाटक आदि में यह मुद्रा इसी शमी वृक्ष के गुणों का बोध कराती है।

विधि

दोनों हाथों में एक समान मुद्रा होती है।

हाथ ऊपर उठे हुए हों, तर्जनी, मध्यमा और अंगूठा ऊपर की तरफ फैले हुए हों, तर्जनी और मध्यमा एक-दूसरे को Cross करते हुए हों, अनामिका और कनिष्ठिका हथेली की तरफ मुड़ी हुई हों तथा दोनों हाथों को कलाई पर Cross करते हुए रखने पर शमी मुद्रा बनती है।



शमी मुद्रा

यह मुद्रा छाती के स्तर पर धारण की जाती है।[59]

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** गोनाड्स, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज **केन्द्र–** शक्ति एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें।

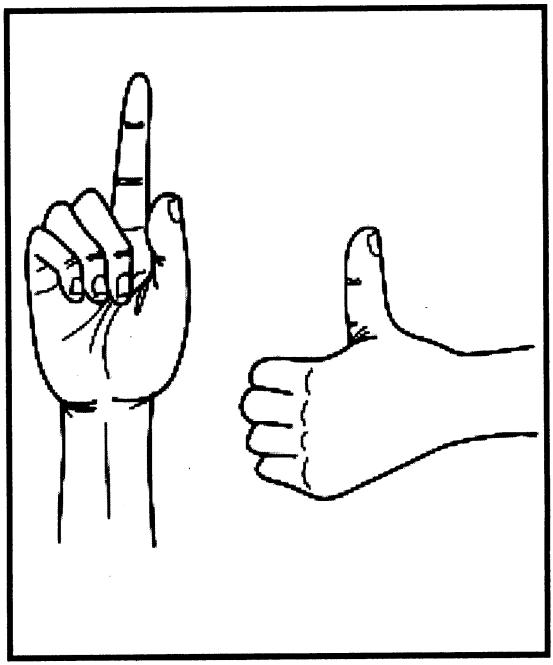
74. शुद्र मुद्रा

यह मुद्रा नाटक परम्परा की विशिष्ट मुद्राओं में से एक है। मुद्रा नाम के अनुसार यह चार जातियों में से शुद्र जाति की सूचक है। इस संयुक्त मुद्रा की रचना निम्न प्रकार से होती है।

विधि

दायीं हथेली बाहर की तरफ, तर्जनी और अंगूठा एक साथ ऊपर की तरफ फैले हुए तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका हथेली में मुड़ी हुई रहें।

बायीं हथेली मध्य भाग में, अंगुलियाँ मुट्ठी रूप में बंधी हुई और अंगूठा ऊपर की ओर सीधा रहने पर शुद्र मुद्रा बनती है।[60]



शुद्र मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाड़ी संस्थान, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग एवं प्रजनन अंग।

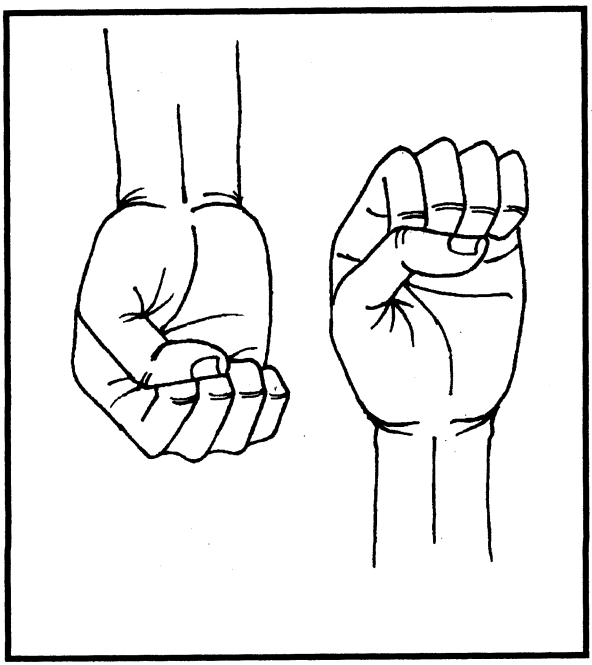
75. शुक्र ग्रह

नाट्य कला की यह मुद्रा नौ ग्रहों से सम्बन्धित है। मुद्रा नाम के अनुसार इसे शुक्र ग्रह का सूचक माना गया है। यह संयुक्त मुद्रा दोनों हाथों में समान होती है।

विधि

दोनों हथेलियों को मध्यभाग के सन्मुख रखते हुए अंगुलियों द्वारा मुट्ठी बनायें, फिर अंगूठों को अंगुलियों के पृष्ठ भाग के प्रथम पोर के ऊपर रखने पर शुक्र मुद्रा बनती है।

इसमें दायां हाथ नीचे की तरफ और बायां हाथ ऊपर की तरफ, इस प्रकार आमने-सामने रहेंगे।[61]



शुक्र ग्रह मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र**– तैजस एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– नाड़ी संस्थान, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, ऊपरी मस्तिष्क एवं आंख।

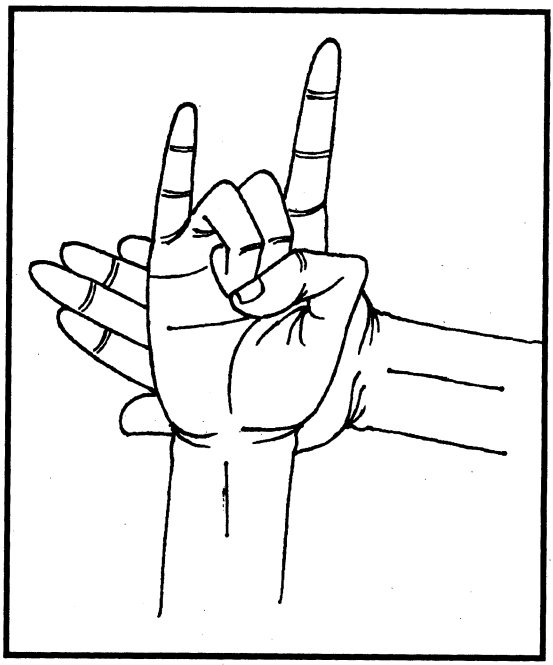
76. सिंह मुद्रा

इस मुद्रा के द्वारा पशुओं में सिंह का अवबोध करवाया जाता है। यह नाट्य मुद्रा संयुक्त हाथों से होती है।

विधि

दायीं हथेली स्वयं की तरफ, तर्जनी और कनिष्ठिका ऊपर की तरफ फैली हुई, मध्यमा और अनामिका हथेली में मुड़ी हुई तथा अंगूठें का प्रथम पोर मध्यमा और अनामिका के प्रथम पोर का स्पर्श करता हुआ रहे।

बायां हाथ ऊपर उठा हुआ, अंगुलियाँ और अंगूठा एक साथ ऊपर की तरफ फैले हुए एवं हल्के से झुके हुए तथा दायें हाथ के पिछले हिस्से को स्पर्श करते हुए रहने पर सिंह मुद्रा बनती है।[62]



सिंह मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

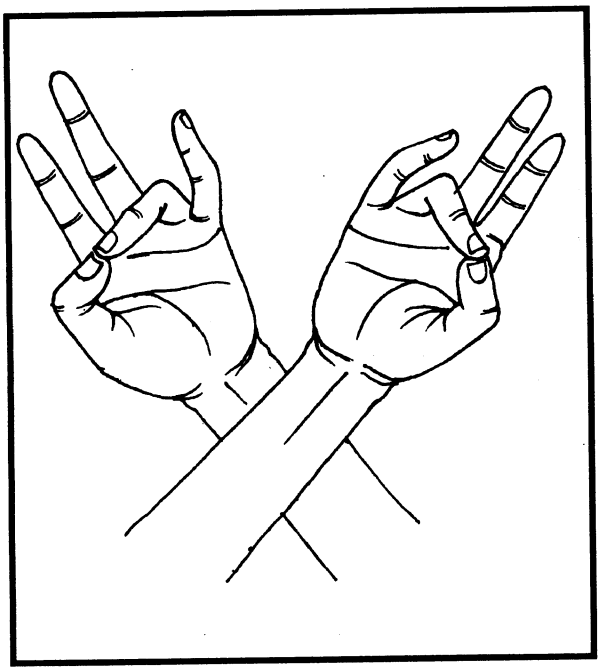
77. सिन्धुवर मुद्रा

यह नाट्य परम्परा की गोपनीय मुद्रा है। विद्वानों के मतानुसार इस मुद्रा का सम्बन्ध सिन्धुवर नामक वृक्ष से है।

यह मुद्रा दोनों हाथों में समान रूप से होती है।

विधि

दोनों हथेलियों को स्वयं की तरफ रखें, अंगूठा और अनामिका के अग्रभागों को परस्पर स्पर्श करवायें, मध्यमा और तर्जनी को हल्के से अलग करते हुए सीधी रखें, कनिष्ठिका को किंचित झुकायें तथा हाथों को कलाई पर Cross करते हुए रखने पर सिन्धुवर मुद्रा बनती है।[63]



सिन्धुवर मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर, अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– अग्नि, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**– तैजस, आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र,

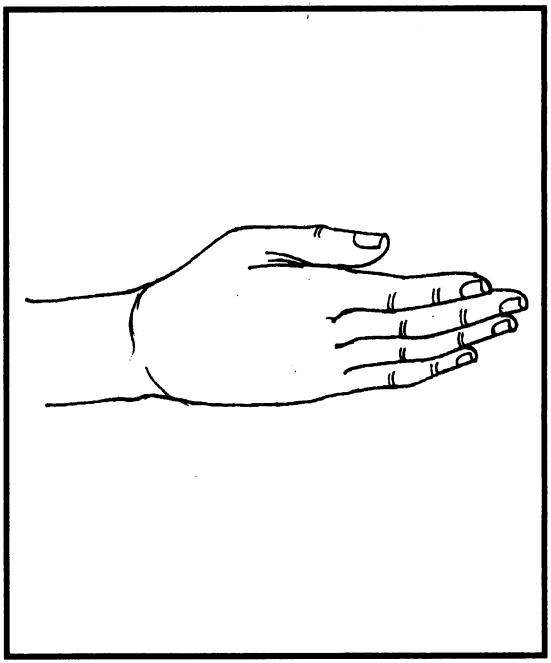
पाचन तंत्र, रक्त संचरण तंत्र, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

78. स्त्री मुद्रा

यह मुद्रा नाटक आदि में एक हाथ से की जाती है। इस मुद्रा में बायें हाथ को कुक्षि के निकटवर्ती क्षेत्र में रखा जाता है अतः यह मुद्रा कुक्षि की सूचक है।

विधि

बायीं हथेली को उदर के नीचले हिस्से पर रखते हुए तथा अंगुलियों और अंगूठे को मध्यभाग की तरफ प्रसारित करने पर स्त्री मुद्रा बनती है।[64]



स्त्री मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, मल-मूत्र अंग एवं प्रजनन अंग।

79. सूर्य मुद्रा

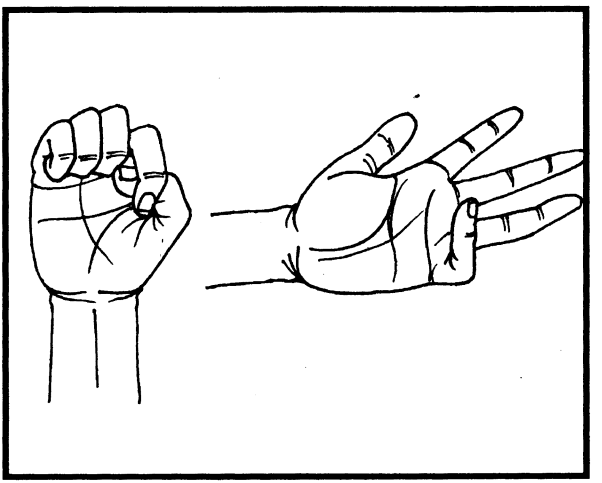
भारतीय नाट्य कला में इस मुद्रा का अप्रतिम महत्त्व है। यह संयुक्त मुद्रा नौ ग्रहों में से सूर्य ग्रह की सूचक है। वैज्ञानिकों के अनुसार सूर्य अंतरिक्ष का सबसे बड़ा ज्वलंत पिंड है जिससे पृथ्वी आदि ग्रहों को गर्मी और रोशनी मिलती है तथा मंगल आदि सभी ग्रह इसकी परिक्रमा करते हैं।

सूर्य की गणना मुख्य देवताओं में की जाती है। प्राय: सभी परम्पराओं में इसकी उपासना होती है।

विधि

दायीं हथेली को मध्यभाग की तरफ रखें। फिर मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका हथेली में मुड़ी हुई, अंगूठा मध्यमा के प्रथम पोर को स्पर्श करता हुआ तथा तर्जनी अंगूठे के ऊपर मुड़ी हुई रहें।

बायीं हथेली ऊपर की तरफ, अंगुलियाँ और अंगूठा तना हुआ एवं कड़क अवस्था में रहने पर सूर्य मुद्रा बनती है। इसमें कनिष्ठिका और हथेली में 90^0 कोण की दूरी रहती है।[65]



सूर्य मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाड़ी संस्थान, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, आंख एवं ऊपरी मस्तिष्क।

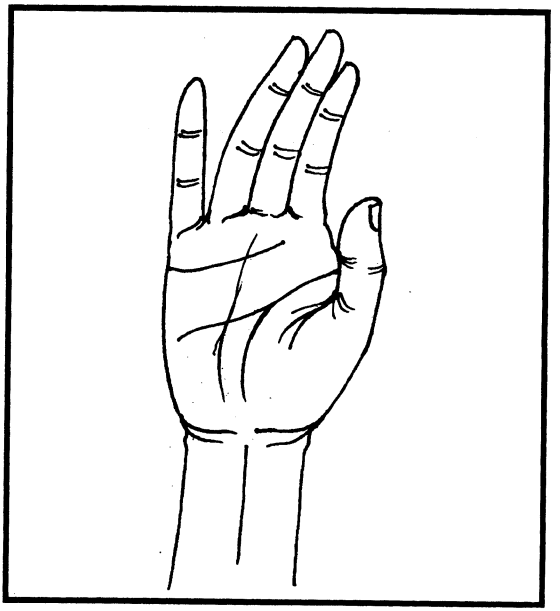
80. ताल पताका मुद्रा

जिस मुद्रा में हाथ के तल से पताका का स्वरूप दर्शाया जाता है उसे ताल पताका मुद्रा कहते हैं। हिन्दी कोश के अनुसार यह मुद्रा एक विशेष प्रकार के नृत्य की सूचक भी हो सकती है।

इस मुद्रा को नाटक आदि में एक हाथ से करते हैं।

विधि

दायीं हथेली को ऊपर उठाते हुए स्वयं की तरफ रखें, अंगुलियों और अंगूठे को शिथिल रूप से उर्ध्व प्रसरित करते हुए किंचित झुकाएं और कनिष्ठिका को सीधी रखने पर ताल पताका मुद्रा बनती है।[66]



ताल पताका मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, कान, नाक, गला, मुँह एवं स्वर तंत्र।

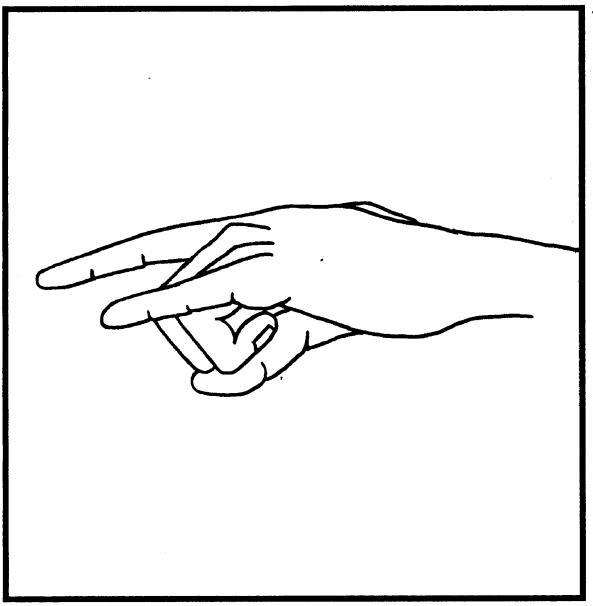
81. ताल सिंह मुद्रा

दर्शाये चित्र में हथेली के तल से सिंह का प्रतिरूप व्यक्त होता दिखता है अत: यह मुद्रा गुण सम्पन्न नाम से युक्त है।

नाट्य कलाकारों के द्वारा इस मुद्रा को एक हाथ से किया जाता है।

विधि

बायीं हथेली को अधोमुख रखते हुए तर्जनी और कनिष्ठिका को ऊपर की तरफ करें, मध्यमा और अनामिका को हथेली के भीतर मोड़ें तथा अंगूठे का अग्रभाग मध्यमा और अनामिका के प्रथम पोर के उस पार रहने पर तालसिंह मुद्रा बनती है।[67]



ताल सिंह मुद्रा

लाभ

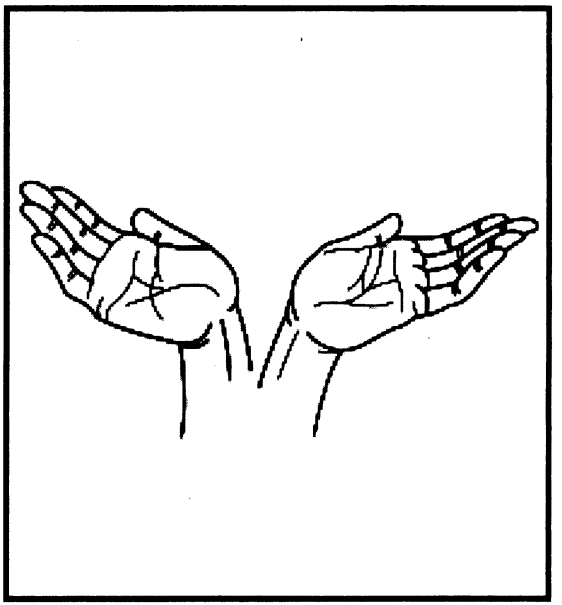
चक्र– आज्ञा, सहस्रार एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष, पिनियल एवं गोनाड्स **केन्द्र–** ज्योति, ज्ञान एवं शक्ति केन्द्र।

82. त्रिज्ञान मुद्रा

यहाँ त्रिज्ञान शब्द तीन लोकों का ज्ञान अथवा त्रैकालिक ज्ञान का वाचक है। यह नाट्य मुद्रा दोनों हाथों में समान रूप से की जाती है।

विधि

दोनों हथेलियों को छाती के स्तर पर धारण करें, तदनन्तर अंगुलियों और अंगूठों को शिथिल रूप से अपनी-अपनी दिशा की तरफ फैलायें तथा किंचित झुकाने पर त्रिज्ञान मुद्रा बनती है।[68]



त्रिज्ञान मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान, सहस्रार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन,पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य, ज्योति एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, मस्तिष्क, आँख एवं स्नायु तंत्र।

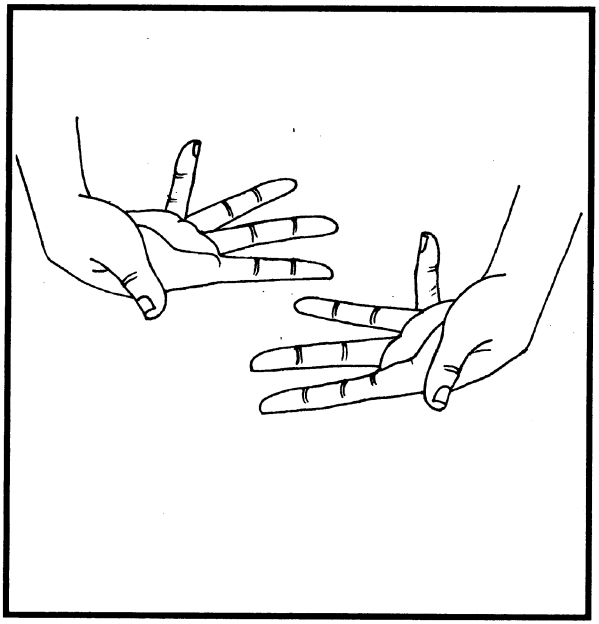
83. उद्वेष्टि ताल-पद्म मुद्रा

उद्वेष्टि अर्थात घिरा हुआ। घिरी हुई वस्तु को हथेली तल से पकड़ने पर हाथ की अंगुलियाँ पद्म के समान बन जाती है अत: इसका नाम उद्वेष्टि ताल-पद्म मुद्रा है।

दर्शाये चित्र के अनुसार यह मुद्रा स्तनों एवं गेंद को पकड़ने के अर्थ का बोध करवाती है।

विधि

इस मुद्रा में दोनों हथेलियाँ ऊपर की तरफ होकर कनिष्ठिका हथेली से 90^0 कोण की दूरी पर और अनामिका हथेली से 45^0 कोण की दूरी पर रहती है। दोनों हाथ छाती के पास होते हैं।[69]



उद्वेष्टि ताल पद्म मुद्रा

लाभ

चक्र– विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** कान, नाक, गला, मुँह, स्वर तंत्र, स्नायु तंत्र एवं आँख।

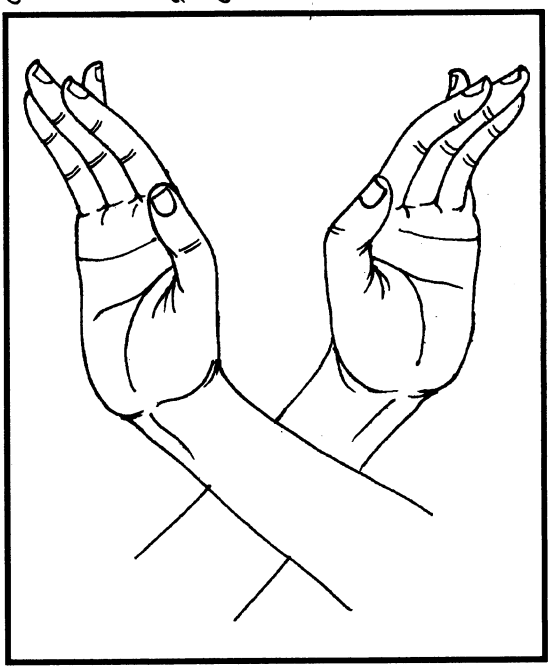
84. उलूक मुद्रा

यह नाट्य मुद्रा स्वनाम को सार्थक करती हुई पक्षी जगत में उल्लू नामक पक्षी को दर्शाती है। उल्लू एक निशाचर प्राणी है जो रात में देख सकता है पर दिन में नहीं। इसे शुभ शकुन के रूप में भी देखा जाता है।

यह मुद्रा दोनों हाथों में समान रूप से बनती है।

विधि

दोनों हाथों को Cross कर हथेलियों को विरूद्ध दिशा में रखें, कनिष्ठिका और अंगूठे सीधे रहें, शेष अंगुलियाँ किंचित झुकी हुई तथा अंगूठे तर्जनी को स्पर्श करते हुए रहने पर उलूक मुद्रा बनती है।[70]



उलूक मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

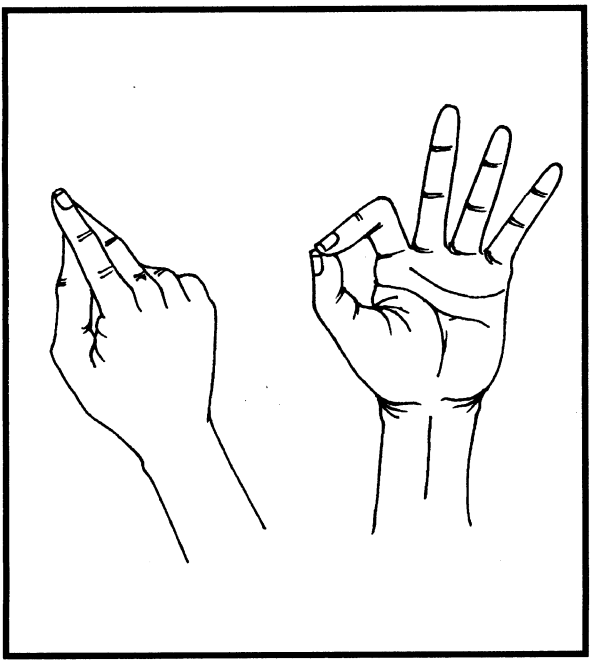
85. वैश्य मुद्रा

यह मुद्रा चार जातियों में से वैश्य जाति को संबोधित करती है।

विधि

दायीं हथेली अन्दर की तरफ, तर्जनी और मध्यमा मुड़ी हुई और उनके अग्रभाग अंगूठे से स्पर्श करते हुए रहें तथा अनामिका और कनिष्ठिका भी हथेली की तरफ मुड़ी हुई रहें।

बायीं हथेली स्वयं की तरफ, अंगूठे का प्रथम पोर तर्जनी से स्पर्श करता हुआ और शेष अंगुलियाँ पृथक्-पृथक् रूप से सीधी रहने पर वैश्य मुद्रा बनती है।[71]



वैश्य मुद्रा

लाभ

चक्र– सहस्त्रार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** ज्योति एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, स्नायु तंत्र एवं आंख।

86. रसाल मुद्रा

यह नाट्य मुद्रा आम के वृक्ष की सूचक है। इसे त्रिपिटक मुद्रा की भाँति जानना चाहिये।

87. रिषभ मुद्रा

यह संयुक्त नाट्य मुद्रा जानवरों की सूचक है। यह मुख्य रूप से वृषभ (बैल) का संकेत करती है। इसे तालसिंह मुद्रा के समान जानना चाहिए।

88. सगर मुद्रा

यह नाट्य मुद्रा असंयुक्त मुद्रा है। इससे एक प्रसिद्ध योद्धा और शासक सगर का बोध होता है तथा अलपद्म मुद्रा के समान है।

89. सहदेव मुद्रा

यह असंयुक्त मुद्रा नाटकों में एक हाथ से की जाती है तथा प्रसिद्ध योद्धा सहदेव की सूचक है। यह शिखर मुद्रा के समान है।

90. सारस मुद्रा

यह नाट्य मुद्रा सारस पक्षी की सूचक है। इसे परदिश मुकुल मुद्रा की भाँति जानना चाहिए।

91. सरयु मुद्रा

यह मुद्रा नाटक आदि में कलाकारों के द्वारा दिखायी जाती है तथा यह सरयु नदी की प्रतीक मुद्रा है। इसे पद्म मुद्रा के समान जानना चाहिए।

92. शशांक मुद्रा

यह मुद्रा नाटक आदि में पशुओं के उद्देश्य से की जाती है। यह असंयुक्त मुद्रा ताल पताका मुद्रा के सदृश है।

93. शिबि मुद्रा

नाट्यकला में इस मुद्रा के द्वारा एक प्रसिद्ध शासक शिबि को दर्शाया जाता है। यह कपित्थ मुद्रा के समान की जाती है।

94. शिंशप मुद्रा

यह मुद्रा शिंशप वृक्ष की द्योतक है तथा नाट्य काल में अर्धचन्द्र मुद्रा के समान धारण की जाती है।

95. श्वान मुद्रा

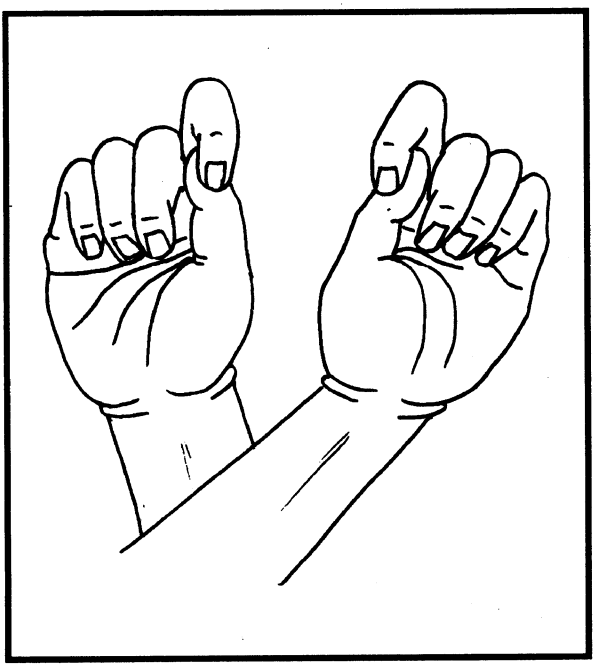
यह नाट्य मुद्रा अपने नाम के अनुसार पशुओं में कुत्ता की सूचक है।

96. भेरूण्ड मुद्रा

यह मुद्रा भेरूण्ड पक्षी की सूचक है और उसके जोड़े को दर्शाती है। निम्न चित्र में भेरूण्ड युग्म की प्रतिकृति परिलक्षित हो रही है इसलिए इसे भेरूण्ड मुद्रा कहा गया है।

विधि

यह संयुक्त मुद्रा है। दोनों हथेलियों को शरीर के मध्य भाग में लाते हुए मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को हथेली की ओर मोड़ें, तदनन्तर अंगूठों के अग्रभाग को तर्जनी के अंतिम पोर पर स्थिर करें तथा तर्जनी को अंगूठों पर मुड़ी हुई रखने से भेरूण्ड मुद्रा बनती है।



भेरूण्ड मुद्रा

इस मुद्रा में दोनों हाथ कलाई पर Cross करते हुए रहते हैं।

लाभ

चक्र– विशुद्धि एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** वायु एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं गोनाड्स **केन्द्र–** विशुद्धि एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाक, कान, गला, मुँह, स्वर यंत्र, मल-मूल अंग, गुर्दे एवं प्रजनन अंग।

सम्बन्ध सूचक मुद्राएँ

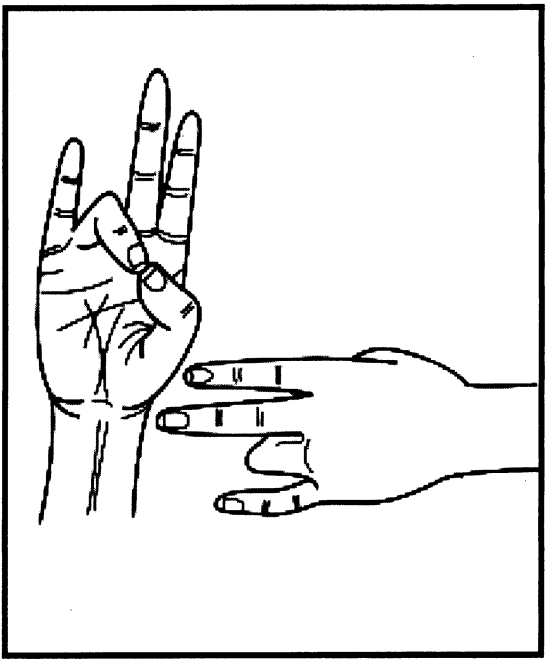
सम्बन्ध सूचक 11 मुद्राओं का सामान्य स्वरूप इस प्रकार है–

1. ज्येष्ठ भ्रातृ मुद्रा

यह मुद्रा बड़े भाई का सम्बन्ध दर्शाने के लिए धारण की जाती है। नाटक आदि में इस मुद्रा का प्रयोग सम्बन्ध अभिव्यक्ति के निमित्त किया जाता है।

विधि

दायीं हथेली को बाहर की ओर अभिमुख करें, अंगूठा और अनामिका के अग्रभाग को परस्पर संयुक्त करते हुए उन्हें बाहर की तरफ बढ़ायें, तर्जनी और मध्यमा को अलग-अलग करते हुए ऊर्ध्व प्रसरित करें तथा कनिष्ठिका को हल्की सी झुकायें।



ज्येष्ठ भ्रातृ मुद्रा

बायीं हथेली को स्वयं के अभिमुख मध्यभाग में रखें, अंगूठा और अनामिका के अग्रभाग को स्पर्शित करते हुए उन्हें अन्दर की तरफ लायें, तर्जनी और मध्यमा को अलग करते हुए सीधी रखें तथा कनिष्ठिका को किंचित झुकाने से ज्येष्ठ भ्रातृ मुद्रा बनती है।[1]

लाभ

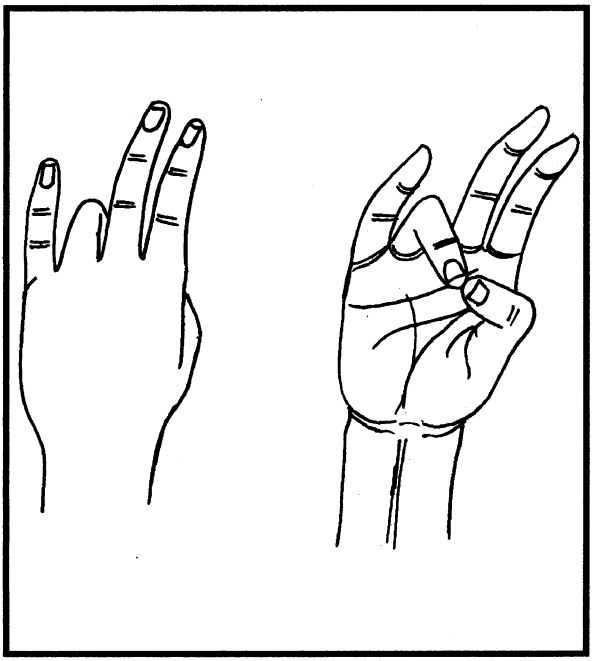
चक्र– आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, आँख।

2. कनिष्ठ भ्रातृ मुद्रा

यह नाटक आदि में सम्बन्ध दर्शाने वाली ग्यारह मुद्राओं में से एक है। यह मुद्रा छोटे भाई का सम्बन्ध दर्शाती है।

विधि

दायीं हथेली को स्वयं के अभिमुख रखें, अंगूठा और अनामिका के अग्रभाग को मिलाते हुए आगे की ओर फैलायें, तर्जनी और मध्यमा को हल्का सा अलग करते हुए ऊर्ध्व प्रसरित करें तथा कनिष्ठिका को किंचित झुकायें।



कनिष्ठ भ्रातृ मुद्रा

बायीं हथेली को बाहर की तरफ करें, अंगूठा और अनामिका के अग्रभाग को संयुक्त करते हुए उन्हें अंदर की ओर लायें, तर्जनी और मध्यमा को पृथक्-पृथक् ऊपर की ओर फैलायें तथा कनिष्ठिका को किंचित झुकाने पर कनिष्ठ भ्रातृ मुद्रा बनती है।[2]

लाभ

चक्र– मूलाधार, विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, विशुद्धि एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, कान, नाक, गला, मुँह, स्वर यंत्र, स्नायु तंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

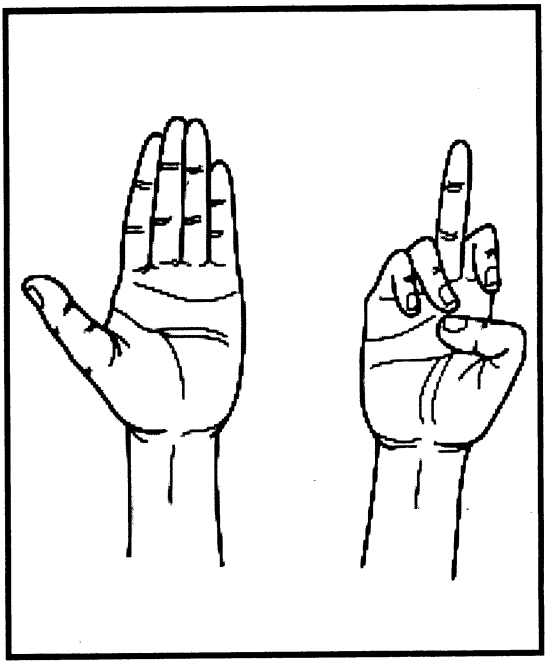
3. मातृ मुद्रा

सम्बन्ध दर्शाने वाली ग्यारह मुद्राओं में से यह एक है। इस मुद्रा के द्वारा माता के सम्बन्ध दिखाये जाते हैं। इस मुद्रा के माध्यम से माँ के वात्सल्य, प्रेम और ममता आदि की अभिव्यक्ति होती है अत: इसका नाम मातृ मुद्रा है।

विधि

बायीं हथेली स्वयं की ओर, अंगुलियाँ एक साथ ऊपर उठी हुई और अंगूठा अंगुलियों से पृथक ऊर्ध्व प्रसरित रहे।

दायीं हथेली ऊपर की ओर अभिमुख, अंगूठा और अंगुलियाँ हल्के से अलग-अलग अन्दर मुड़ी हुई तथा मध्यमा अंगुली सीधी रहने पर मातृ मुद्रा बनती है।[3]



मातृ मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी संस्थान, पाचन संस्थान, स्नायुतंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

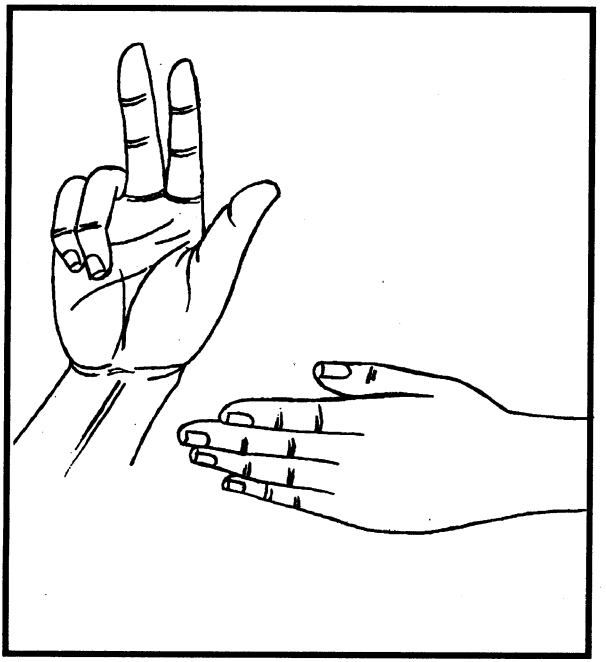
4. ननंद मुद्रा

पति की बहन ननंद कहलाती है। यह ग्यारह मुद्राओं में से ननंद और भाभी के सम्बन्ध को दर्शाती है। इस नाट्य मुद्रा को दोनों हाथों से करते हैं।

विधि

दायीं हथेली को बाहर की तरफ रखें। फिर तर्जनी, मध्यमा और अंगूठा ऊपर उठे हुए, तर्जनी और मध्यमा हल्की सी अलग हुई अवस्था में रहें, अनामिका और कनिष्ठिका हथेली के भीतर झुकी हुई रहें।

बायें हाथ को मध्यभाग के सन्मुख रखें। अंगुलियों एवं अंगूठे को प्रसरित करते हुए उदर के निचले हिस्से पर रखने से ननंद मुद्रा बनती है।[4]



ननंद मुद्रा

लाभ

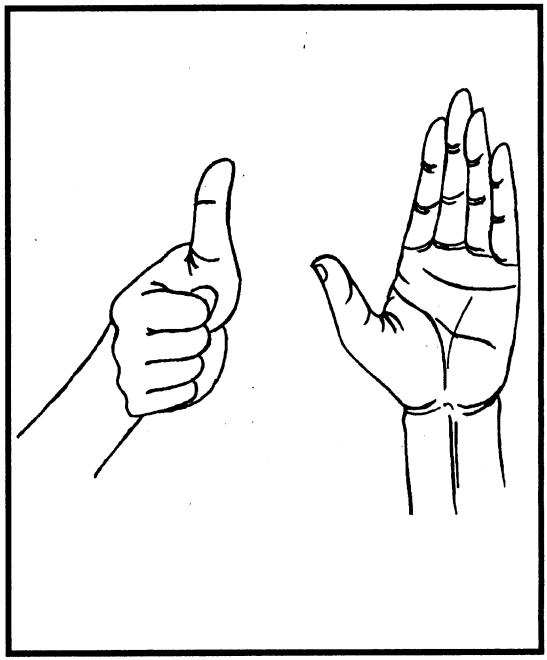
चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** आनन्द एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण तंत्र, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

5. पितृ मुद्रा

नाटक परम्परा की यह मुद्रा युग्म पाणि से वहन की जाती है। इस मुद्रा के माध्यम से पितृ कर्त्तव्यों को दर्शाया जाता है।

विधि

बायीं हथेली सामने की तरफ, अंगुलियाँ शिथिल रूप में एक साथ ऊपर की ओर फैली हुई और अंगूठा अंगुलियों से दूर रहे। दायीं हथेली मध्य भाग में, अंगुलियाँ हथेली के भीतर मुट्ठी रूप में और अंगूठा ऊर्ध्व प्रसरित रहने पर पितृ मुद्रा बनती है।[5]



पितृ मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार, आज्ञा एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, पीयूष एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, दर्शन एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, रक्त संचरण तंत्र, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं।

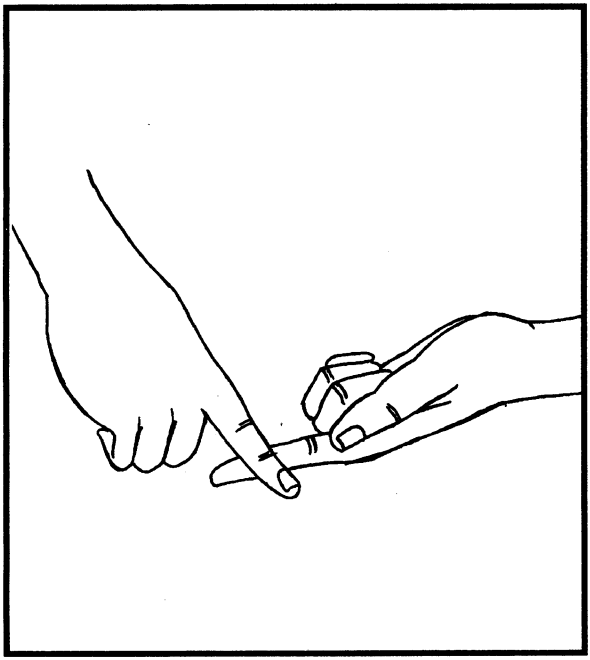
6. सपत्नी मुद्रा

इस मुद्रा के माध्यम से पत्नी, सौत का सम्बन्ध अभिव्यक्त किया जाता है। इस मुद्रा में गति होती है तथा यह दोनों हाथों से सम्पन्न की जाती है।

विधि

दोनों हाथों की तर्जनी और अंगूठों को सीधा रखें, शेष अंगुलियों को हथेली के भीतर मोड़ दें। तदनन्तर दायीं हथेली को अधोमुख रखते हुए उसकी तर्जनी अंगुली से बायीं तर्जनी का स्पर्श करने पर सपत्नी मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा में दोनों हाथ उदर के निम्न भाग में रखे जाते हैं।[6]



सपत्नी मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, रक्त संचरण तंत्र, हृदय, फेफड़ें एवं भुजाएं।

7. श्वश्री मुद्रा

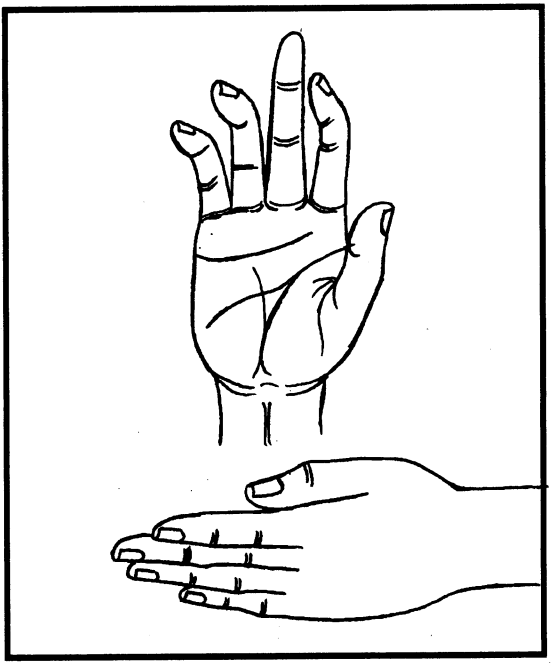
श्वश्री अर्थात सास। यह सम्बन्ध दर्शाने वाली ग्यारह मुद्राओं में से एक है तथा इसके द्वारा सास के सम्बन्ध को दर्शाया जाता है।

नाट्य कला के समय इस मुद्रा को संयुक्त हाथों से करते हैं।

विधि

दायीं हथेली को ऊपर की तरफ रखें, अंगुलियाँ और अंगूठे को हल्के से पृथक करते हुए हथेली की तरफ मोड़ें तथा मध्यमा को सीधा रखे।

बायीं हथेली को उदर के निचले हिस्से पर रखते हुए अंगुलियाँ और अंगूठे को एक साथ मध्य भाग की तरफ फैलाने पर श्वश्री मुद्रा बनती है।[7]



श्वश्री मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, नाक, कान, गला, मुंह एवं स्वर यंत्र।

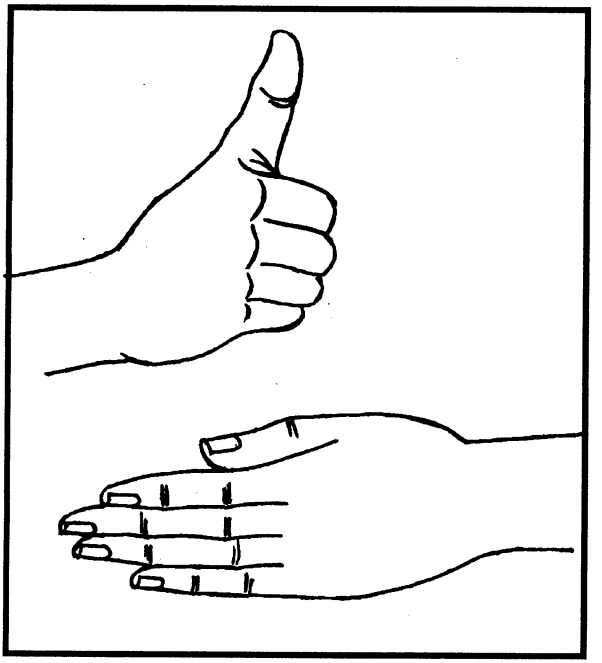
8. श्वसुर मुद्रा

यह मुद्रा नाटक आदि में पारिवारिक सम्बन्ध बताने के उद्देश्य से की जाती है। इस मुद्रा के द्वारा ससुर के सम्बन्ध को दर्शाया जाता है। यह संयुक्त मुद्रा है इसलिए इसे दोनों हाथों से करते हैं।

विधि

दायीं हथेली मध्य भाग की तरफ रहें, अंगुलियाँ मुट्ठी रूप में गुंथी हुई और अंगूठा ऊर्ध्वाभिमुख रहे।

बायीं हथेली उदर के निचले हिस्से पर रहे तथा अंगुलियाँ और अंगूठा मध्यभाग की ओर फैले हुए रहने पर श्वसुर मुद्रा बनती है।[8]



श्वसुर मुद्रा

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**– तैजस एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी संस्थान, पाचन संस्थान, स्नायु तंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

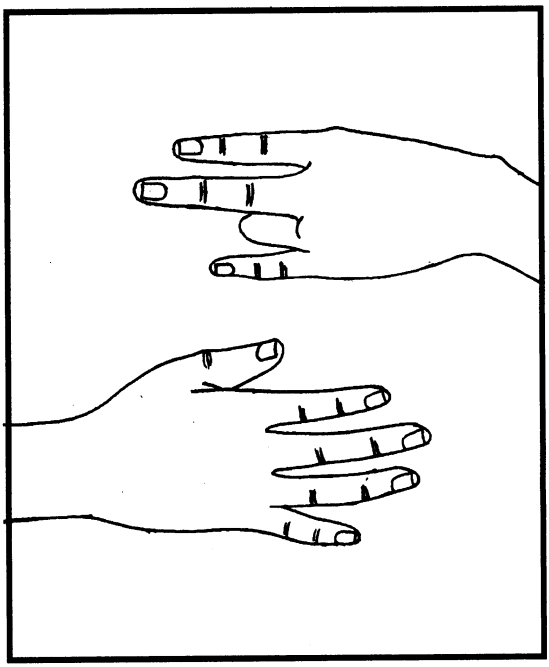
9. स्नुष् मुद्रा

स्नुष् का अर्थ होता है बहु। यह सम्बन्ध ज्ञापित करने वाली मुद्राओं में से एक है। इस मुद्रा के माध्यम से बहू के सम्बन्ध तथा उसके कर्त्तव्यों को दर्शाया जाता है।

विधि

दायीं हथेली को पेट के निचले हिस्से पर रखें। फिर अंगुलियाँ और अंगूठे को एक साथ मध्यभाग की तरफ फैलायें।

बायीं हथेली को मध्यभाग की तरफ रखते हुए अंगूठा और अनामिका के अग्रभाग को मिलायें, तर्जनी और मध्यमा को हल्की सी पृथक करते हुए सीधी रखें तथा कनिष्ठिका को किंचित झुकाने पर स्नुष् मुद्रा बनती है।[9]



स्नुष् मुद्रा

लाभ

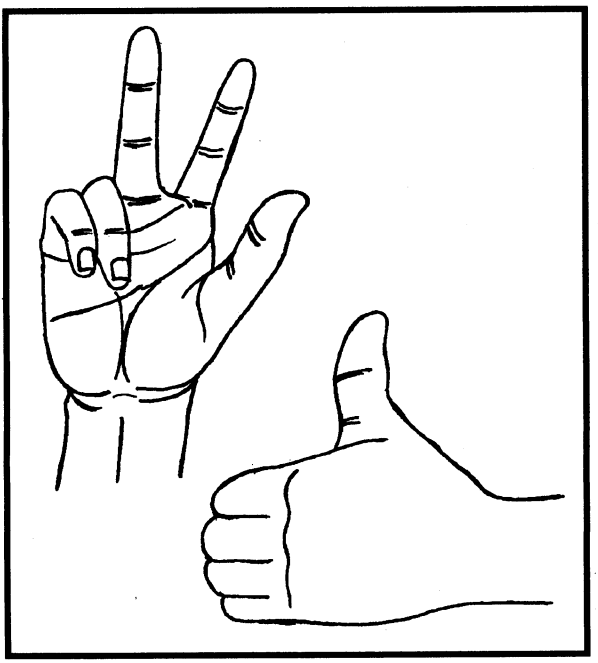
चक्र– आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, आँख एवं स्नायु तंत्र।

10. भर्त्तरि-भ्रातृ मुद्रा

यह मुद्रा ग्यारह मुद्राओं में से एक है जो साला, देवर आदि का रिश्ता दर्शाती है। नाटक-नृत्य आदि में यह मुद्रा कलाकारों के द्वारा की जाती है।

विधि

इस मुद्रा में दायीं हथेली को बाहर की ओर अभिमुख करें, तर्जनी एवं मध्यमा के बीच अन्तर रखते हुए उन्हें ऊपर की तरफ सीधी रखें, अंगूठे को भी सीधा रखें तथा अनामिका एवं कनिष्ठिका को हथेली की ओर झुकाये हुए रखें।



भर्त्तरि भ्रातृ मुद्रा

बायीं हथेली को मध्य भाग में रखते हुए अंगुलियों को मुट्ठी के रूप में बांध दें तथा अंगूठे को ऊपर की ओर करने पर भर्त्तरि भ्रातृ मुद्रा बनती है।[10]

लाभ

चक्र– मूलाधार, आज्ञा एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, दर्शन एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे आदि।

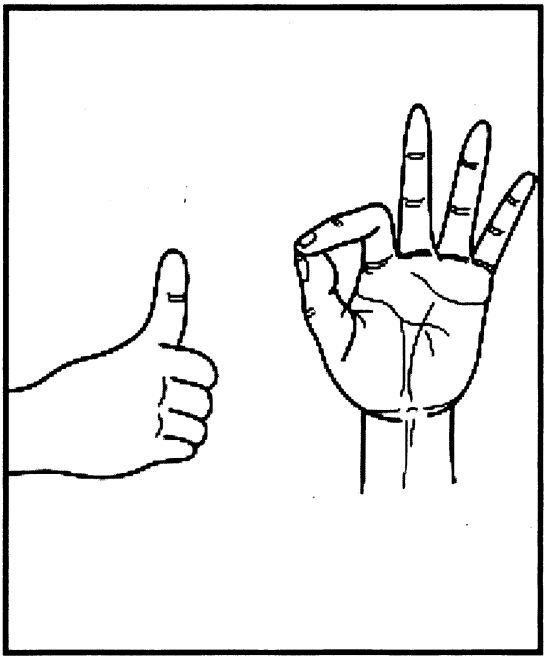
11. भर्त्तार मुद्रा

सांसारिक रिश्तों में पति को भर्त्तार कहते हैं। इस मुद्रा के माध्यम से पति सम्बन्ध को दर्शाया जाता है। यह उन ग्यारह मुद्राओं में से एक है जो रिश्तों का प्रतिनिधित्व करती है।

यह संयुक्त मुद्रा नाटकों आदि में प्रयुक्त की जाती है।

विधि

दायीं हथेली को शरीर के मध्यभाग की ओर अभिमुख करें, अंगुलियों को हथेली के अंदर की ओर मोड़ें तथा अंगूठे को ऊपर की ओर उठायें।



भर्त्तार मुद्रा

बायीं हथेली को स्वयं की तरफ रखें। फिर अंगूठा और तर्जनी के प्रथम पोर को परस्पर स्पर्शित करें तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को अलग-अलग करके ऊपर की ओर सीधी रखने पर भर्त्तार मुद्रा बनती है।[11]

लाभ

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँते, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, हृदय, भुजाएं, फेफड़ें, रक्त संचरण तंत्र आदि।

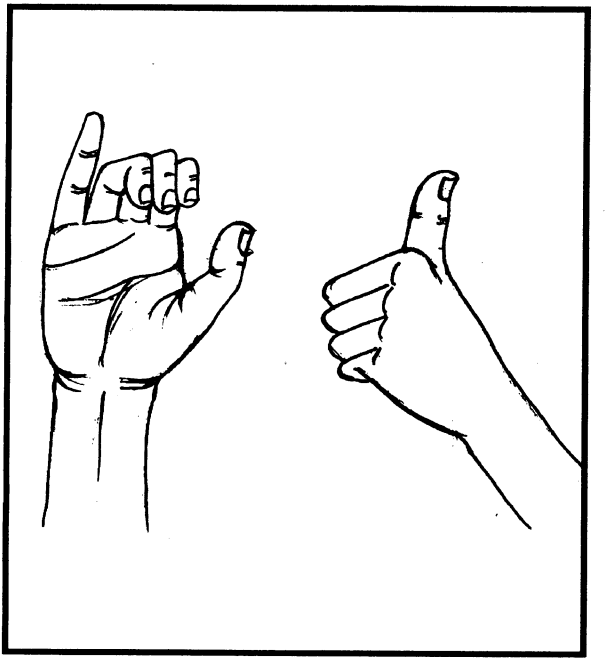
12. दम्पति मुद्रा

यह मुद्रा सम्बन्ध दर्शाने वाली ग्यारह मुद्राओं में से एक है। इससे पति-पत्नी का सम्बन्ध प्रकट किया जाता है।

विधि

इस मुद्रा में दायीं हथेली सामने की ओर अभिमुख रहे। तर्जनी, मध्यमा और अनामिका प्रथम एवं दूसरे जोड़ से मुड़ती हुई, अंगूठा ऊपर उठा हुआ एवं कनिष्ठिका भी ऊपर उठी हुई रहें।

बायां हाथ मध्य भाग में, अंगुलियाँ आदि मुट्ठी रूप में तथा अंगूठा ऊर्ध्व प्रसरित रहने पर दम्पति मुद्रा बनती है।[12]



दम्पति मुद्रा

लाभ

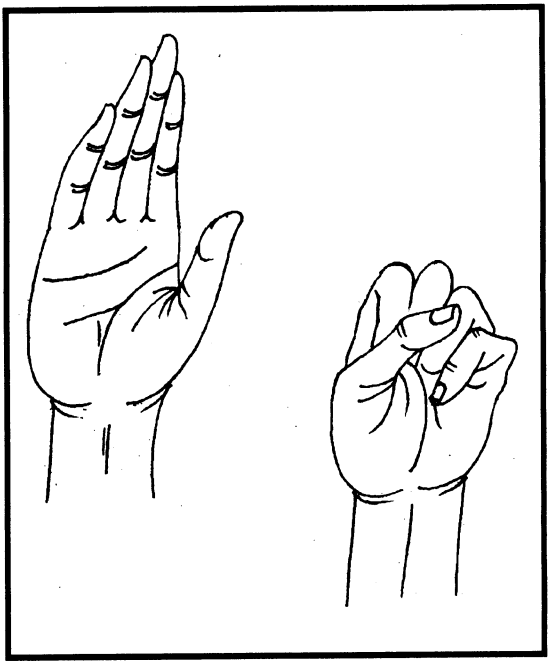
चक्र– मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग आदि।

अवतार सम्बन्धी मुद्राएँ

हिन्दू परम्परा में भगवान विष्णु के 10 अवतार माने जाते हैं उससे सम्बन्धित मुद्राएँ इस प्रकार है-

1. बलरामावतार मुद्रा

यह मुद्रा अपने नाम के अनुरूप कृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलराम की सूचक है। भगवान विष्णु ने दस अवतारों में से एक अवतार बलराम के रूप में प्राप्त किया था। यह मुद्रा उसी व्यक्तित्व को दर्शाती है।



बलरामावतार मुद्रा

विधि

दायीं हथेली को स्वयं की तरफ करें, अंगूठा एवं अंगुलियों को एक साथ ऊपर की ओर करें, हाथ शिथिल एवं थोड़ा सा मुड़ा हुआ रहे।

बायें हाथ को मध्यभाग की ओर अभिमुख करें तथा अंगुलियों को मुट्ठी रूप में बाँधकर उनके ऊपरी पोरों पर अंगूठा रखने से बलरामवतार मुद्रा बनती है।[1]

लाभ

चक्र- मणिपुर, अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व-** अग्नि, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि-** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र-** तैजस, आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग-** यकृत, तिल्ली, आतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र।

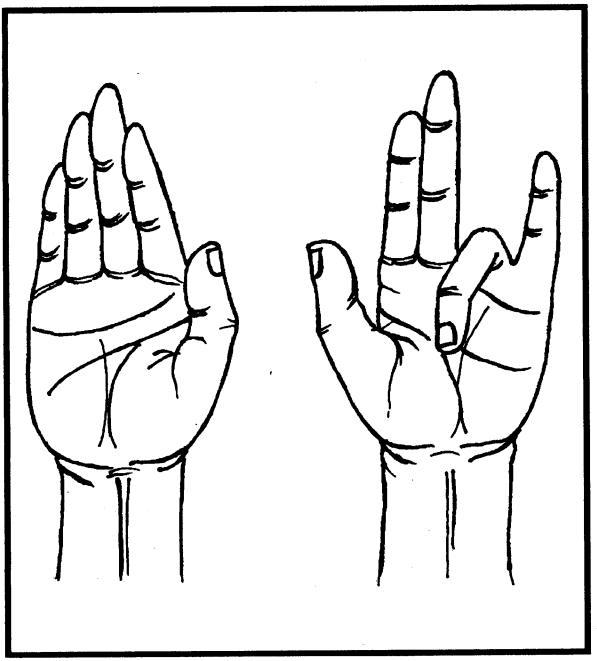
2. कल्कि अवतार मुद्रा

भगवान विष्णु का अंतिम दसवाँ अवतार कल्कि अवतार माना जाता है। इस अवतार काल में उन्होंने शत्रुओं का उद्धार किया तथा दुष्टों का हनन किया था। यह नाट्य मुद्रा दोनों हाथों से की जाती है।

विधि

दोनों हथेलियों को स्वयं की ओर अभिमुख करें, दायीं हथेली को ऊर्ध्व प्रसरित करते हुए किंचित झुकायें तथा हथेली को शिथिल रखें।

बायीं हथेली की अनामिका को हथेली के अंदर मोड़ते हुए शेष अंगुलियों को ऊपर की ओर करने पर कल्कि अवतार मुद्रा बनती है।[2]



कल्कि अवतार मुद्रा

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, आँख एवं ऊपरी मस्तिष्क।

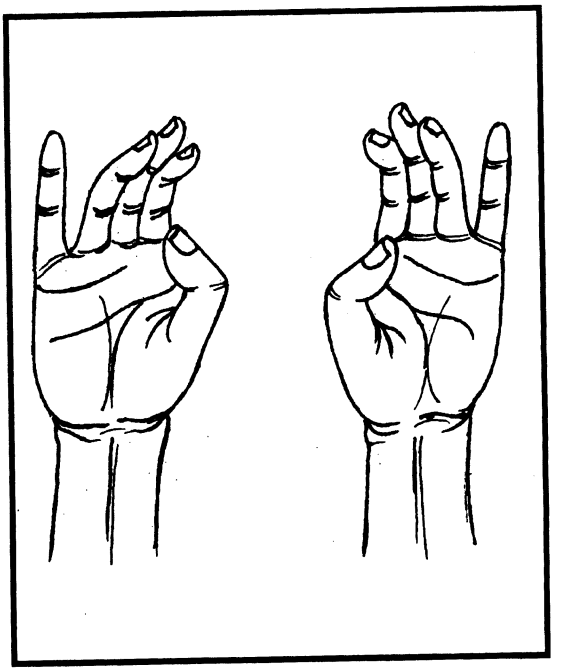
3. कृष्णावतार मुद्रा

भगवान विष्णु आठवें अवतार के समय यदुवंशी वासुदेव की पट्टरानी देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। श्रीकृष्ण देवकी के आठवें पुत्र थे। मान्यता है कि कंस को मारने के लिए उन्होंने यह अवतार लिया था और कई लीलाएँ की।

यह मुद्रा विष्णु के दस अवतारों में से कृष्ण अवतार की सूचक है। यह संयुक्त मुद्रा नाटक आदि में की जाती है।

विधि

दायीं हथेली मध्य भाग की ओर अभिमुख रहे, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुलियाँ प्रथम एवं द्वितीय जोड़ पर हथेली की तरफ मुड़ी हुई रहें, अंगूठा अंदर की तरफ फैला हुआ तथा कनिष्ठिका ऊपर की ओर उठी हुई रहे।



कृष्णावतार मुद्रा

बायीं हथेली भी मध्यभाग की ओर अभिमुख रहे। तर्जनी, मध्यमा और अनामिका पहले एवं दूसरे मोड़ पर हथेली की ओर झुकी हुई, अंगूठा और कनिष्ठिका ऊर्ध्व प्रसरित रहने पर कृष्णावतार मुद्रा बनती है।

यह मुद्रा कंधों के स्तर पर धारण की जाती है।[3]

लाभ

चक्र– अनाहत, मणिपुर एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** वायु, अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–**आनंद, तैजस एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–**हृदय, फेफड़ें,

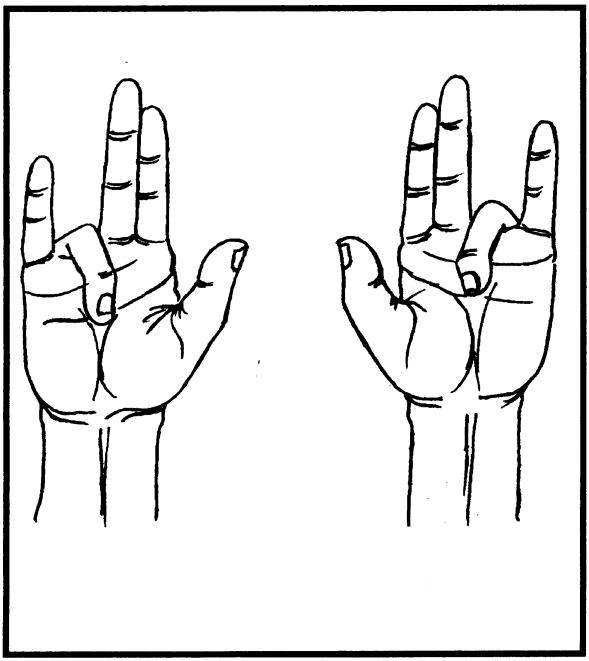
भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, आँख एवं ऊपरी मस्तिष्क।

4. कूर्मावतार मुद्रा

नाटक आदि में दोनों हाथों से धारण की जाने वाली यह मुद्रा भगवान विष्णु के कूर्म अवतार की सूचक है। इस मुद्रा में गति होती है।

विधि

दोनों हथेलियों को स्वयं की ओर अभिमुख करें, तर्जनी, मध्यमा, कनिष्ठिका और अंगूठे को ऊपर की ओर फैलायें तथा अनामिका को हथेली के भीतर मोड़ने पर कूर्मावतार मुद्रा बनती है।[4]



कूर्मावतार मुद्रा

लाभ

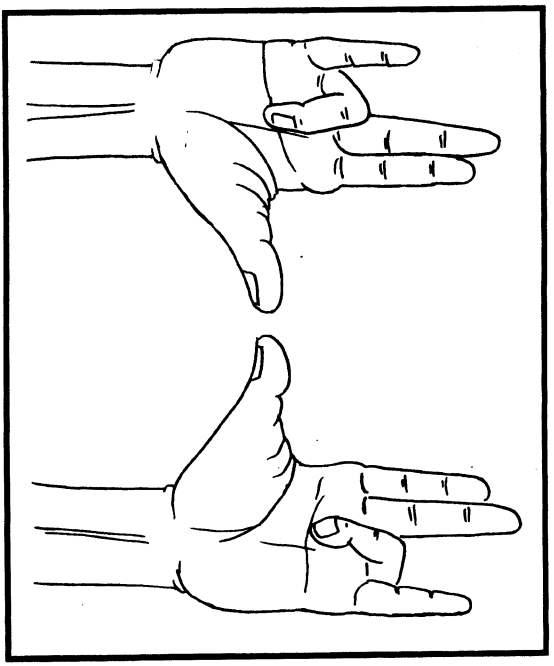
चक्र– मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–**मेरूदण्ड, गुर्दे, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

5. मत्स्यावतार मुद्रा

विष्णु के दस अवतारों में पहला मत्स्य अवतार माना जाता है। यह अवतार सतयुग में हुआ था। इसके नीचे का अंग रोहु मछली के समान और रंग श्याम था। इसके सिर पर सींग थे, चार हाथ थे, छाती पर लक्ष्मी थी और सारे शरीर में कमल के चिह्न थे।

पुराणों के अनुसार यह अवतार संसार प्रलय के समय विष्णु ने मनु की रक्षा के लिए धारण किया था।

यह नाट्य मुद्रा विष्णु के इसी मत्स्य अवतार की सूचक है।



मत्स्यावतार मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियाँ नीचे की तरफ, अंगुलियाँ एक साथ बाहर की ओर फैली हुई, और अंगूठा 90^0 कोण पर रहें। तत्पश्चात दायीं हथेली को बायीं के ऊपर रखें। उसके बाद अंगुलियों को सामने की ओर अभिमुख करके अनामिका अंगुली को हथेली की तरफ मोड़ने पर मत्स्यावतार मुद्रा बनती है।[5]

लाभ

चक्र– विशुद्धि, आज्ञा, एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **केन्द्र–** विशुद्धि, ज्योति एवं ज्ञान केन्द्र **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड, पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि **विशेष प्रभावित अंग–** नाक, कान, गला, मुँह, स्वर यंत्र, मस्तिष्क, आँखें एवं स्नायु तंत्र।

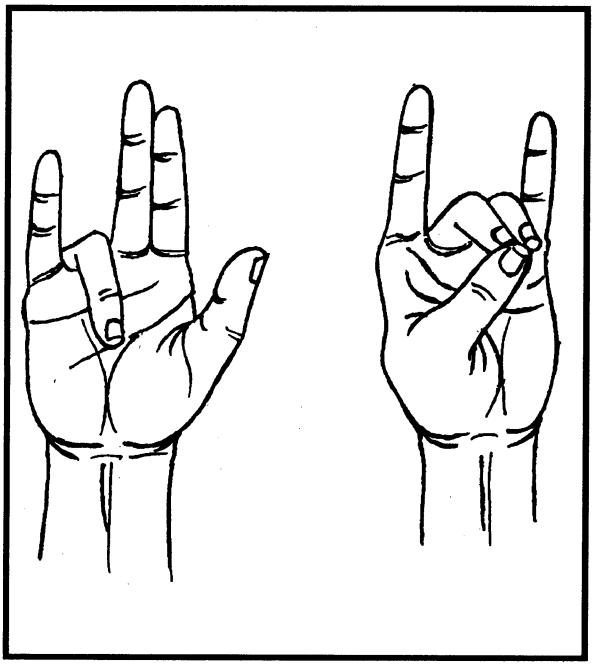
6. नरसिंहावतार मुद्रा

भगवान विष्णु का चौथा अवतार नरसिंह कहलाता है। हरिवंश पुराण के अनुसार सत्ययुग में हिरण्य कश्यप ने घोर तपस्या करके ब्रह्मा से वरदान मांगा कि वह देव, दानव, असुर, राक्षस या मनुष्य किसी के हाथों से नहीं मारा जा सके, किसी अस्त्र-शस्त्र द्वारा अथवा स्वर्ग-पाताल लोक में, अथवा दिन-रात में, अथवा भवन-अरण्य में भी मृत्यु को प्राप्त न हो सकें। इस प्रकार का वरदान प्राप्त हो जाने पर कश्यप दैत्य अत्यन्त प्रबल हो उठा, तब उसके विनाश के लिए भगवान विष्णु ने नृसिंह अवतार धारण किया था।

इस नाट्य मुद्रा को दोनों हाथों से करते हैं।

विधि

दायीं हथेली स्वयं की ओर अभिमुख रहे। तर्जनी, मध्यमा, कनिष्ठिका और अंगूठा एक साथ ऊपर उठे हुए तथा अनामिका हथेली के भीतर मुड़ी हुई रहे।



नरसिंहावतार मुद्रा

बायीं हथेली भी सामने की ओर स्थिर, तर्जनी और कनिष्ठिका ऊपर की ओर सीधी फैली हुई, मध्यमा और अनामिका हथेली तरफ मुड़ी हुई तथा अंगूठे का प्रथम पोर मध्यमा और अनामिका के प्रथम पोर से स्पर्श करता हुआ रहने पर नरसिंह अवतार मुद्रा बनती है।[6]

लाभ

चक्र– मूलाधार एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–**यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, आंख, एवं ऊपरी मस्तिष्क।

7. परशुरामावतार मुद्रा

परशु कुल्हाड़ी को कहते हैं। भगवान विष्णु का छठवाँ परशुराम अवतार माना जाता है। इस अवतार के समय इनके हाथ में सदैव परशु अस्त्र रहता था अतः इन्हें परशुराम कहा जाने लगा।

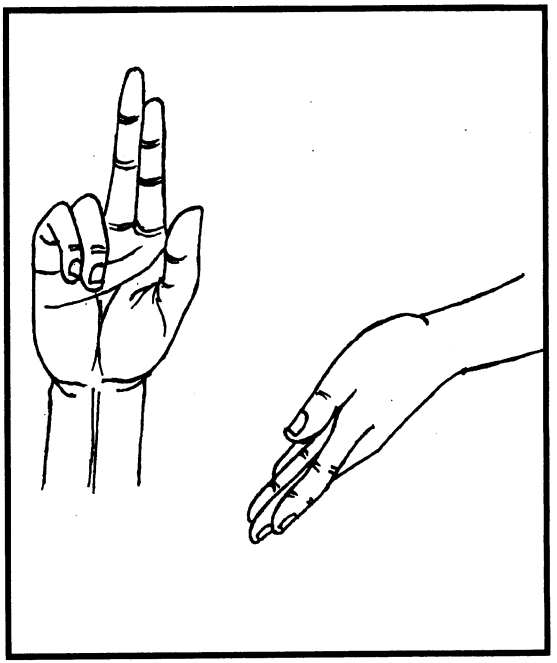
पुराणकार कहते हैं परशुराम जमदग्नि ऋषि के पुत्र थे, इन्होंने 21 बार क्षत्रियों का वध किया था। परशुराम को परम आयु का एवं युद्ध में उनके समक्ष कोई ठहर न सके ऐसा वरदान प्राप्त था।

यह मुद्रा विष्णु के दस अवतारों में परशुराम अवतार को सूचित करती है।

विधि

दायीं हथेली बाहर की तरफ रहें। तर्जनी, मध्यमा और अंगूठा एक साथ ऊपर की ओर फैले हुए तथा अनामिका और कनिष्ठिका हथेली के भीतर मुड़ी हुई रहें।

बायां हाथ शिथिलता के साथ पार्श्वभाग में लटका हुआ, हथेली का पृष्ठ भाग कुल्हे पर, अंगुलियाँ सामने की



परशुरामावतार मुद्रा

तरफ फैली हुई तथा अंगूठा पृष्ठ भाग अथवा अंगुलियों के पार्श्व भाग में रहने पर परशुरामावतार मुद्रा बनती है।[7]

लाभ

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–**मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

8. रघुरामावतार मुद्रा

सूर्यवंशी राजा दिलीप के पुत्र का नाम रघु था, जिनके नाम से रघुकुल चला। रघुराम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र कहलाते हैं।

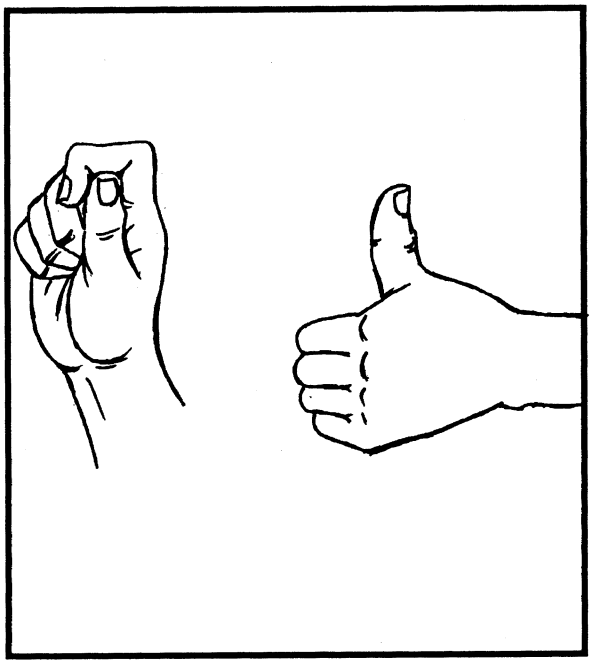
विष्णु भगवान का एक अवतार रामचन्द्रजी के रूप में भी माना जाता है।

यह नाट्य मुद्रा उस रामावतार की ही सूचक है। इस मुद्रा को दोनों हाथों से दिखाते हैं।

विधि

दायीं हथेली मध्यभाग में रहें। मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका हथेली के भीतर मुड़ी हुई, अंगूठा, अंगुलियों के प्रथम पोर पर और तर्जनी अंगूठे के ऊपर घूमती हुई रहें।

बायीं हथेली मध्यभाग में, अंगुलियाँ मुट्ठी रूप में और अंगूठा ऊपर उठा हुआ रहने पर रघुरामावतार मुद्रा बनती है।[8]



रघुरामावतार मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार, मणिपुर एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, तैजस एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–**मेरूदण्ड, गुर्दे, यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

9. वामनावतार मुद्रा

वामन का अर्थ बौना होता है। भगवान विष्णु का पांचवाँ वामन अवतार माना जाता है। पुराणों के अनुसार बलि राक्षस को विनम्र करने के लिए उन्होंने बौने रूप में जन्म लिया था।

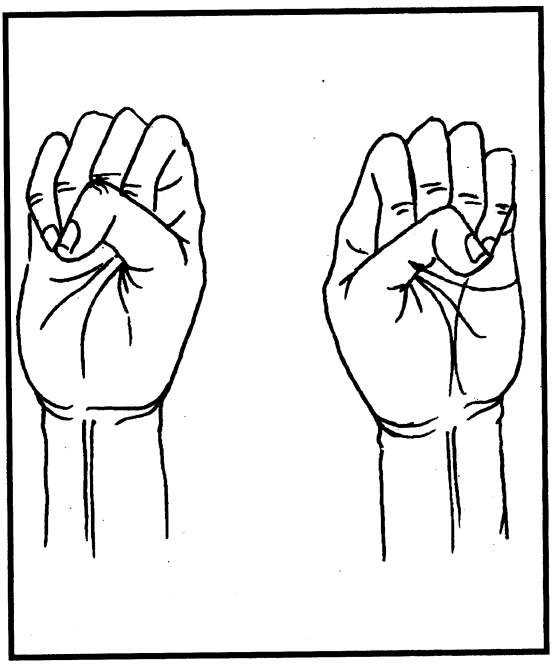
यह मुद्रा विष्णु के वामन (बौना) अवतार की सूचक है।

विधि

इस नाट्य मुद्रा में दोनों हाथों की आकृति समान होती है केवल हाथों को रखने की स्थिति में अन्तर होता है।

दोनों हथेलियों को मध्यभाग की तरफ रखें, फिर अंगुलियों के बाहरी प्रथम पोरों पर अंगूठा रखने से वामनावतार मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा में दायें हाथ की अंगुलियाँ नीचे की तरफ और बायें हाथ की अंगुलियाँ ऊपर की तरफ रहती है।[9]



वामनावतार मुद्रा

लाभ

चक्र– मूलाधार, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–**मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, मस्तिष्क, स्नायु तंत्र एवं आंख।

विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित मुद्राओं के अतिरिक्त भी अनेक मुद्राओं का उल्लेख विविध स्थानों पर प्राप्त होता है। भारतीय परम्परा में ऐसी अनेक मुद्राएँ प्रचलित है। इनमें से कई मुद्राएँ अभिनय दर्पण आदि ग्रन्थों में वर्णित मुद्राओं से साम्य रखती है। परंतु फिर भी किंच् भेद अवश्य रहा हुआ है। इन सभी का वर्णन करने का मुख्य उद्देश्य मुद्राओं की विराटता एवं उनमें रही वैभिन्यता को दिग्दर्शित करना है। साथ ही मुद्राओं के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूप से अवगत करवाना है।

सन्दर्भ -सूची

1. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49*
2. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 50*
3. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 46*
4. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 43*
5. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49*
6. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 47*
7. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49*
8. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 50*
9. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 47*
10. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 50*
11. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 45*
12. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 46*
13. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 46*
14. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 50*
15. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 50*
16. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49*

17. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 46
18. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49
19. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49
20. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 45
21. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 50
22. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 39
23. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 51
24. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 47
25. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 31-32
26. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 31-32
27. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49
28. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 46
29. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49
30. GDE, पृ. 213
31. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 47
32. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 41
33. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49
34. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 46
35. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 45
36. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 51
37. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 50
38. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 50
39. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 45
40. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 45
41. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49
42. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 46
43. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 46
44. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49
45. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 50

46. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 50
47. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 45
48. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49
49. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 48
50. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 46
51. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 47
52. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49
53. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 50
54. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49
55. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 45
56. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 47
57. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 45
58. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 46
59. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49
60. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 47
61. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 46
62. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49
63. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49
64. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 44
65. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 46
66. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49
67. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 50
68. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 49
69. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 44
70. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 50
71. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 47

ग्यारह सम्बन्ध सूचक मुद्राओं के सन्दर्भ

1. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 45*
2. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 45*
3. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 44*
4. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 45*
5. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 44*
6. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 45*
7. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 44*
8. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 45*
9. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 45*
10. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 45*
11. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 45*
12. *ACG , पृ. 44*

दस अवतार सम्बन्धी मुद्राओं के सन्दर्भ

1. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 46*
2. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 46*
3. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 46*
4. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 46*
5. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 46*
6. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 46*
7. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 46*
8. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 46*
9. *द मिरर ऑफ गेश्चर, पृ. 46*

●

अध्याय-6

शिल्पकला एवं मूर्तिकला में प्राप्त हस्त मुद्राएँ

मुद्राओं का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। आदिम युग से ही इस विषयक उल्लेख एवं संकेत प्राप्त होते हैं। पुरातत्त्व खोजों एवं प्राचीन मूर्तियों से इसके स्पष्ट प्रमाण प्राप्त होते हैं। जैन, बौद्ध एवं वैदिक तीनों ही परम्पराओं में शिल्पकला के रूप में मुद्रा प्रयोग पुरातन काल से सुसिद्ध हो जाता है। हजारों वर्ष प्राचीन प्रतिमाओं की प्राप्ति मुद्राओं की ऐतिहासिकता को तो सिद्ध करती ही है साथ ही पूजा-उपासना आदि में मुद्राओं के महत्त्व को भी सूचित करता है। इस अध्याय के माध्यम से साधारण जनता देवी-देवताओं की मूर्तियों के पीछे अन्तर्भूत भाव एवं रहस्यों से भी परिचित हो पाएगी। टी. ए. गोपीनाथ राव ने 'एलीमेन्ट्स ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी' नामक एक पुस्तक लिखी है। जिसमें उन्होंने शिल्पकला एवं मूर्तिकला में से प्राप्त हस्त मुद्राओं का चित्र वर्णन किया है। तदनुसार सामान्य वर्णन इस प्रकार है–[1]

अभय मुद्रा

गोपीनाथ राव के अनुसार देखें, फलक 5, चित्र 1-3

तीन चित्र अभय हस्त मुद्रा से सम्बन्धित हैं। इन्हें संरक्षण देने वाली मुद्रा कहा गया है। जिसमें हाथ ऊपर की ओर उठा हुआ, हथेली सामने की तरफ, अंगुलियाँ सटी हुई एवं किंचिद झुकी हुई हो, वह अभय हस्त मुद्रा होती है।

वरददान मुद्रा

देखें, फलक 5, चित्र 4-6

तीन चित्र वरद मुद्रा के सूचक हैं। इन्हें राव के द्वारा दान की मुद्रा कहा गया है। जिसमें बायाँ हाथ नीचे की तरफ रखते हुए हथेली सामने की तरफ रहती है तथा अंगुलियाँ नीचे की ओर खुली रहती है, वह वरद दान मुद्रा कहलाती है।

कटकहस्त-सिंहकर्णहस्त मुद्रा

देखें, फलक 5, चित्र 7-8

गोपीनाथ राव ने इन मुद्राओं को मूर्तियों में पहचान कर बताया है तथा इन मुद्राओं की विधि नाट्यशास्त्र के समान हैं।

सूचीहस्त मुद्रा

देखें, फलक 5, चित्र 9, साधनमाला तंत्र में मारीची देवी की मुद्रा।

प्रस्तुत मुद्रा में तर्जनी अंगुली नीचे की ओर रहती है।

तर्जनी हस्त मुद्रा

देखें, फलक 5, चित्र 10

तर्जनी मुद्रा में तर्जनी अंगुली ऊपर की ओर उठी रहती है।

कट्यावलंबित हस्त मुद्रा

देखें, फलक 5, चित्र 11

इस मुद्रा में हाथ कमर पर रहता है। इसे मूर्ति शिल्प में पहचान कर कट्यवलंबित हस्त मुद्रा कहा गया है।

दण्डहस्त या गजहस्त मुद्रा

देखें, फलक 5, चित्र 12

गोपीनाथ राव ने इस मुद्रा को शिव की नृत्य मूर्ति में पहचाना है और बताया है कि हाथ को सामने की तरफ सीधा फैलाकर कलाई से नीचे की तरफ कर देने पर दण्डहस्त या गजहस्त मुद्रा बनती है।

अंजलिहस्त मुद्रा

देखें पृष्ठ16

दोनों हाथों को सटाकर सीने के पास स्थित रखने पर जो मुद्रा बनती है उसे अंजलि मुद्रा के रूप में पहचाना गया है। इस मुद्रा में पूजा या प्रार्थना का भाव रहता है।

विस्मयहस्त मुद्रा

देखें, फलक 5, चित्र 13-14

जिसमें ऊपर की ओर उठे हुए हाथ की अंगुलियाँ सीधी रहती है और

हथेली दर्शक की तरफ घूमी हुई होती है उसे विस्मय मुद्रा कहा जाता है। उक्त दोनों चित्रों में यही मुद्रा गुम्फित है।

व्याख्यान-चिन्मुद्रा-संदर्शन हस्त मुद्रा

देखें, फलक 5, चित्र 15

प्रस्तुत चित्र में दायां अंगूठा एवं तर्जनी का अग्रभाग संयुक्त है तथा शेष अंगुलियाँ सीधी खुली हुई है अत: इस मुद्रा को मूर्तियों में व्याख्यान मुद्रा, चिन्मुद्रा या संदर्शन मुद्रा के रूप में पहचाना गया है।

ज्ञान मुद्रा

देखें, फलक 5, चित्र 16

जब दाएं हाथ का अंगूठा और तर्जनी के अग्रभाग सटे हुए हृदय के पास स्थित हों और हथेली हृदय की तरफ घूमी हुई हो तो उसे ज्ञान मुद्रा कहा जाता है।

योग मुद्रा

देखें, फलक 5, चित्र 17

दोनों पैर एक-दूसरे के ऊरुओं पर स्थित हों और दाहिना हाथ बायीं हथेली पर गोद में रखा हो तो वह योग मुद्रा कहलाती है। जे.एन. बनर्जी ने भी कुछ हस्त मुद्राओं की पहचान की है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'दि डवलपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी' में लिखा है कि हाथ की अंगुलियों से कल्पना स्वरूप रचना कर मुद्रायें बनायी जाती है। मुद्राएँ असंयुक्त हस्त एवं संयुक्त हस्त दो प्रकार की होती है। कुछ मुद्राएँ कार्य के बीच में स्वाभाविक ढंग से दिख जाती है।

अभय मुद्रा

जे. एन. बनर्जी ने मुद्राओं का अध्ययन कर अभय मुद्रा को शांतिद मुद्रा भी कहा है।[2] उन्होंने इस मुद्रा को कई जगह पहचाना है।

फलक 3, चित्र 5, पृ.250

कुषाणकालीन बुद्ध की मूर्ति में दाहिना हाथ ऊपर की ओर उठा हुआ है।

फलक 1, चित्र 20, पृ.250

धरघोष के सिक्के पर शिव-विश्वामित्र के अंकन में भी अभय मुद्रा बताई गई है।

फलक 2, चित्र 20, पृ.250

भरहुत से प्राप्त महाकपि जातक के अंकन में ब्रह्मदत्त राजा के हाथ की भी मुद्रा यही है।

अंजली मुद्रा

देखें, फलक 2, चित्र 19, पृ.252

अंजली मुद्रा को वंदनी या नमस्कार मुद्रा भी कहा जाता है। भरहुत से प्राप्त कुपिरो यक्ष के हाथ अंजली या नमस्कार मुद्रा में है।

ध्यान मुद्रा

देखें, फलक 2, चित्र 16, पृ.253

उज्जैन के एक सिक्के पर पद्मासन में बैठे हुए देवता के हाथों को ध्यान मुद्रा कहा गया है। यह सिक्का दूसरी-तीसरी शती ईसा पूर्व का है।

व्याख्यान मुद्रा

देखें, फलक 3, चित्र 2, पृ.254

बनर्जी ने गुप्तकाल की मूर्तियों में व्याख्यान मुद्रा को पहचाना है। बनर्जी के अनुसार भरहुत से प्राप्त एक यक्ष की मूर्ति में भी हाथ की वही मुद्रा है। (देखें, फलक 3, चित्र 1, पृ. 254)

एक अन्य मूर्ति में छाती तक उठे हुए दाहिने हाथ की हथेली सामने की ओर तथा अंगूठा एवं तर्जनी के अग्रभाग सटे हुए हैं इसे भी व्याख्यान मुद्रा के रूप में पहचाना गया है।

(देखें, फलक 3, चित्र 3, पृ. 255)

धर्मचक्र मुद्रा

देखें, फलक 3, चित्र 4, पृ. 256

गुप्तकालीन बुद्ध की मूर्तियों में दोनों हाथों द्वारा प्रदर्शित मुद्रा व्याख्यान मुद्रा या धर्मचक्र मुद्रा है।

कट्यवलम्बित मुद्रा

देखें, फलक 1, चित्र 19, पृ.257

आरम्भिक सिक्कों पर कट्यवलम्बित हस्त मुद्रा की खोज की गई है। इसी प्रकार और भी कई सिक्कों में यही मुद्रा देखी गई है। (देखें, फलक 1, चित्र 21-2, 28, पृ. 257) मथुरा से प्राप्त एक सिक्के पर भी वही मुद्रा अंकित है। (देखें, फलक 2, चित्र 14, पृ. 257)

कायोत्सर्ग मुद्रा

देखें, फलक 2, चित्र 13, पृ.257

आर्हत सिक्कों पर यह मुद्रा पहचानी गई है। इसमें आकृति के दोनों हाथ कायोत्सर्ग की भाँति नीचे लटके हुए हैं।

सिन्धुकला में एक मुहर पर भी इसी मुद्रा को पहचाना गया है। (देखें, फलक 7, चित्र 2, पृ.258)

कटकामुखहस्त मुद्रा

देखें, पृ.258

बनर्जी ने भरहुत से प्राप्त एक देवता की मूर्ति में कटकाहस्त मुद्रा को पहचाना है।

दण्डहस्त या गजदन्तहस्त मुद्रा

देखें, फलक 3, चित्र 8, पृ.258

एक मूर्ति में बायां हाथ सीधा सामने की ओर प्रसारित है। इसे दण्डहस्त या गजहस्त मुद्रा के रूप में पहचाना है। इसी मुद्रा को नटराज मुद्रा भी कहा गया है।

बनर्जी ने भरहुत से प्राप्त एक अप्सरा मूर्ति में भी इस मुद्रा के प्राचीनतम स्वरूप को पहचाना है। (देखें, फलक 2, चित्र 22, पृ.258)

सूचीहस्त मुद्रा

देखें, फलक 4, चित्र 6, पृ.259

किसी हाथ की तर्जनी अंगुली ऊपर की ओर या नीचे की तरफ रहती है तब सूचीहस्त मुद्रा कहलाती है। बनर्जी ने भरहुत से प्राप्त सुदर्शना यक्षिणी के दायें हाथ की अंगुली को सूचीहस्त मुद्रा के रूप में पहचाना है। (देखें, फलक 2, चित्र 23, पृ.260)

विस्मयहस्त मुद्रा

देखें, पृ.260

कांजीवरम् से प्राप्त पल्लव काल की शिव मूर्ति में बायां हाथ नीचे की तरफ विस्मय मुद्रा में है। इसी भाँति एक अन्य मूर्ति का ऊपर उठा हाथ विस्मय मुद्रा में पहचाना गया है।

देखें, फलक 4, चित्र 4, पृ.260

बनर्जी ने यही मुद्रा एक अन्य मूर्ति में भी बताई है, जो शक या कुषाणकाल की है। (देखें, फलक 4, चित्र 3, पृ.260)

भूमिस्पर्श मुद्रा

देखें, पृ.262 (बुद्धिस्ट आर्ट. पृ. 177)

सामान्य स्थिति में बैठकर एक हाथ से भूमि का स्पर्श करना भूमिस्पर्श मुद्रा कहलाती है। यह मुद्रा प्राय: बौद्ध मूर्तियों में देखी जाती है।

अर्धपर्यंक मुद्रा

देखें, पृ. 262-63

बनर्जी ने सामान्य रूप से एक पैर मोड़कर बैठने की स्थिति को अर्धपर्यंक मुद्रा कहा है।

समपाद मुद्रा

देखें, पृ. 264

ऊर्ध्वस्थित कायोत्सर्ग मुद्रा में पैरों की स्थिति 'समपाद' में रहती है। बनर्जी ने भरहुत शिल्प में देवताओं को समपाद स्थिति में देखा है। (देखें, पृ. 265)

उन्होंने उज्जयिनी के सिक्कों पर भी यही मुद्रा पहचानी है। (देखें, फलक1, चित्र 7,8,20, पृ.265)

भीटा से प्राप्त एक मुहर पर गजलक्ष्मी को भी इसी मुद्रा में स्थित बताया है। यह खड़े होने का अत्यन्त लोकप्रिय प्रकार माना गया है। (देखें, फलक 11, चित्र 1, पृ.265)

जे.एन. बनर्जी ने कुछ नृत्यहस्त मुद्राओं की भी मूर्तियों में पहचान की है। उन्होंने कहा है कि नृत्त हस्त मुद्राएँ भरतमुनि के नाट्यशास्त्र और विष्णुधर्मोत्तरपुराण में विस्तृत रूप से वर्णित है यद्यपि चिदम्बरम् के प्रसिद्ध

नटराज मन्दिर में शिव की मूर्तियों तथा गोपुर पर आकृतियों में भी बहुसंख्यक नृत्तहस्त मुद्राएँ देखी जा सकती है। (देखें, पृ. 274-78)

'धर्मशास्त्र का इतिहास' इसके अन्तर्गत पी.वी. काणे ने कलात्मक मुद्राओं का विवेचन करते हुए बर्गेस द्वारा कथित कुछ बौद्ध परम्परा की मुद्राओं का उल्लेख किया है तथा शिल्प में उनकी पहचान के संकेत भी दिये हैं[3]—

1. भूमिस्पृश या भूमिस्पर्श मुद्रा

बौद्ध परम्परा में इसका अंकन बुद्ध द्वारा पृथ्वी का स्पर्श कर प्रतिज्ञा लेने के रूप में किया गया है।[4]

2. धर्मचक्र मुद्रा

बुद्ध द्वारा उपदेश की मुद्रा।[5]

3. अभय मुद्रा

आशीर्वाद दान की मुद्रा । इसमें वक्षस्थल के सामने उठे हुए दाहिने हाथ का अंगूठा एवं अंगुलियाँ आधी फैली हुई और हथेली सामने की तरफ रहती है।[6]

4. ज्ञान मुद्रा

पद्मासनस्थ या ध्यानस्थ मुद्रा।[7]

5. वर/वरद मुद्रा

इसमें दायाँ हाथ घुटने पर झुका हुआ एवं हथेली सामने की तरफ रहती है मानो दान की मुद्रा हो।[8]

6. ललित मुद्रा

मोहक मुद्रा।[9]

7. तर्क मुद्रा

दायां हाथ वक्षस्थल की ओर उठा हुआ और थोड़ा सा आकुंचित होता है।[10]

8. शरण मुद्रा

आश्रय या रक्षा मुद्रा।[11]

9. उत्तरबोधि मुद्रा

परम ज्ञान की मुद्रा।[12]

आर. एस. गुप्ते ने अपनी लिखित पुस्तक "आइकोनोग्राफी ऑफ दि हिन्दूज, बौद्धिस्ट और जैन" में हस्त मुद्राओं के अन्तर्गत अंजली, भूमिस्पर्श, भूतडामर, बुद्धंश्रमण, अभय, हरिण, ध्यान, धर्मचक्र, गजहस्त या दण्डहस्त, कटक हस्त या सिंहकर्ण, कट्यवलम्बित, कर्तरीहस्त, सूचीहस्त, तर्जनी, क्षेपण, नमस्कार, तर्जन, वितर्क, विस्मय, वज्रहुंकार, वरद उत्तराबोधि आदि मुद्राओं का सचित्र वर्णन किया है।[13]

प्रसिद्ध वास्तुशास्त्र के विशेषज्ञ प्रभाशंकर ने दीपार्णव में भारतीय शिल्प में प्रचलित नौ प्रमुख हस्त मुद्राओं का सचित्र वर्णन किया है– 1. ज्ञान मुद्रा, 2. व्याख्यान मुद्रा 3. कटक मुद्रा 4. वरद मुद्रा 5. तर्जनी मुद्रा 6. अभय मुद्रा 7. गजदण्ड मुद्रा 8. सूची मुद्रा और 9. कट्यवलम्बित मुद्रा।[14]

आधुनिक विद्वानों में वासुदेवशरण अग्रवाल ने भारतीय कला नामक पुस्तक में प्रारम्भिक युग से लेकर तीसरी ईसवी शती तक की मूर्तिकला में उपलब्ध विशिष्ट मुद्राओं को पहचाना है तथा उन मुद्राओं का परम्परागत नामों के साथ उल्लेख भी किया है।

वासुदेवशरण के अनुसार सिन्धुघाटी की शिल्प सामग्री (लगभग 2500 ई.पू. -1800 ई.पू.) में अंकित मुद्राओं का वर्णन इस प्रकार है–

- मोहनजोदड़ों से प्राप्त घीया पत्थर की एक पुरूष मूर्ति में उसके हाथ घुटने पर टिके हैं जो जानु- अवलम्बित मुद्रा के प्रतीक माने गये हैं।
- हड़प्पा से प्राप्त धूमैले पाषाण की एक मूर्ति में नृत्यमुद्रा पहचानी गई है जिसमें सम्पूर्ण शरीर का भाग दाहिने पैर पर है और बायां पैर दायीं तरफ घूमा हुआ प्रतीत होता है।[15]
- मोहनजोदड़ों की एक ताम्र मूर्ति नर्तकी की है जिसके हाथ को लताहस्त या कट्यवलम्बित हस्त मुद्रा में पहचाना गया है।[16]
- सिन्धु सभ्यता में उपलब्ध मुहरों में एक मुहर पर पशुपति को पहचाना गया है जो पालथी लगाकर हाथों को जानु पर रखे हुए हैं इसे पर्यंकबन्ध आसन मुद्रा के रूप में पहचाना गया है।[17]
- मौर्यकालीन (325-184 ई.पू.) कई यक्ष मूर्तियों में अभय-मुद्रा की

पहचान की गई है।[18]

• भरहुत (दूसरी शती ई.पू.) के एक दृश्य में राजा अजातशत्रु को हाथी से उतर कर वज्रासन की पूजा अंजली मुद्रा में करते हुए पहचाना गया है।[19]

• जुन्नार के चैत्यग्रह मुहार में लक्ष्मी देवी की मूर्ति में दाहिना हाथ अभय मुद्रा में तथा बायां हाथ कट्यवलिम्बित मुद्रा में है। पार्श्व में दो दंपति अंजलीमुद्रा में खड़े हैं।

• मथुरा की कुषाण कला में जैन तीर्थंकरों की दो प्रकार की मूर्तियों में एक खड़ी हुई तथा दूसरी बैठी मुद्रा में है। खड़ी मूर्तियाँ कायोत्सर्ग मुद्रा में एवं उनके हाथ लताहस्त मुद्रा में स्थित है। बैठी हुई मूर्तियाँ पद्मासन-ध्यानमुद्रा में है।[20]

• मथुरा कला में लक्ष्मी की एक खड़ी मूर्ति में देवी अपने बाएं हाथ से दाहिने स्तन को दबाकर दूध की धारा बहा रही है इसे दुद्धाधारिणी मुद्रा के रूप में पहचाना गया है।[21]

• मथुरा के जैन आयाग पट्टों पर पद्मासन और ध्यान मुद्रा में तीन तीर्थंकरों की पहचान की गई है।[22]

• एक सरस्वती की मूर्ति का दायां हाथ अभय मुद्रा में है।[23]

• गन्धार की शिल्पकला में अभय मुद्रा, ध्यान मुद्रा, धर्मचक्र-प्रवर्त्तनमुद्रा, पद्मासन आदि की पहचान की गई है।[24]

आन्ध्र सातवाहन कालीन नागार्जुन कोंड से प्राप्त एक पट्ट पर तीन देवता की आकृतियाँ अंजली मुद्रा में प्रतीक्षारत दिखाई गई है।

कपिला वात्स्यायन ने भारतीय कला के विभिन्न युगों में प्रदर्शित देवी और देवताओं की विभिन्न आकृतियों में आसन, हस्त मुद्रा, करण, नृत्यमुद्रा आदि की पहचान एवं व्याख्या करने का प्रयास किया है। उनके द्वारा किया गया इस विषयक अध्ययन अलभ्य सामग्री प्रस्तुत करता है।[25]

ध्यातव्य है कि भारतीय शिल्पकला में देवी-देवता आदि के अंकनों में भी विभिन्न मुद्राएँ दिखाई देती हैं। मूर्तिशास्त्र के आधुनिक विद्वानों द्वारा दिये गये दिशा निर्देश के आधार पर उक्त विवरण इस प्रकार द्रष्टव्य है—

अभयहस्त मुद्रा (रेखा चित्र 1,2, छवि चित्र 1)

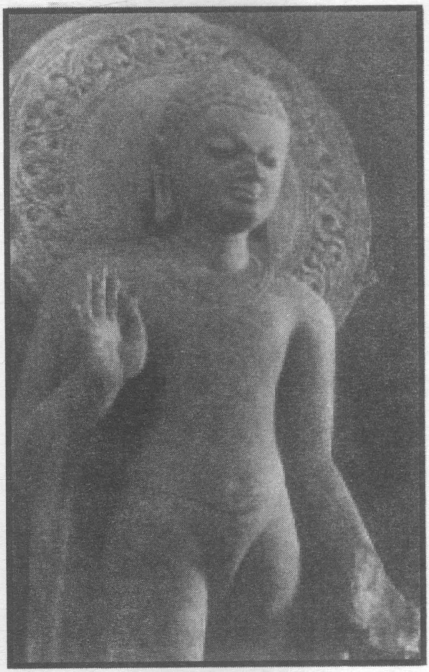
दाहिना हाथ ऊपर की ओर उठा हुआ, अंगुलियाँ सटी हुई एवं कुछ झुकी हुई तथा हथेली सामने की ओर हो तो उसे अभय हस्त मुद्रा कहते हैं।[26] कुषाण



रेखा चित्र-1



रेखा चित्र-2



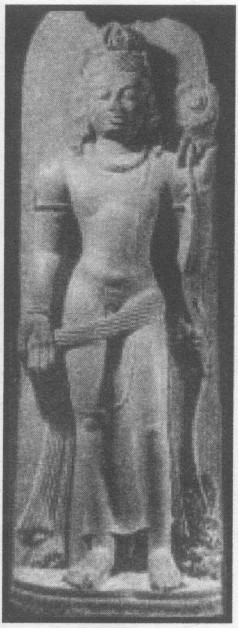
छवि चित्र-1 : अभय हस्त मुद्रा।
सारनाथ शिल्प, पाँचवीं शती ई.

कालीन बुद्ध मूर्ति में दाहिना हाथ इसी मुद्रा में है।[27] बोधगया से प्राप्त शुंगकालीन सूर्य की मूर्ति में दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है।[28]

भरहुत के शिल्प में राजा अजातशत्रु के हाथ इसी मुद्रा में है।[29]

मथुरा से प्राप्त कुषाणकालीन विष्णु, शिव, अर्धनारीश्वर, लक्ष्मी, कार्तिकेय और इन्द्र के हाथ अभय मुद्रा में है।[30]

देवगढ़ से प्राप्त (पांचवी शती) शिल्प में राम का हाथ इसी मुद्रा में है।[31] माउण्ट आबू, देलवाड़ा के तेजपाल मन्दिर (12-13वीं शती) में अंकित नृत्यांगनाओं में से एक का हाथ इसी मुद्रा में है।[32]



छवि चित्र-2 : वरद मुद्रा, नालन्दा से प्राप्त पाल शिल्प, ई. नवीं शती

वरद मुद्रा (छवि चित्र 2)

बायां हाथ नीचे की तरफ खुला हुआ, अंगुलियाँ सीधी तथा हथेली सामने की तरफ रहती हैं तो उसे वरद मुद्रा कहते हैं।[33] छठीं शती की एक बुद्ध मूर्ति में दाहिना हाथ वरद मुद्रा में है।[34] यह मुद्रा अत्यन्त लोकप्रिय रही है यही कारण है कि इसके संकेत प्रत्येक युग में दिखाई देते हैं।

तर्जनी हस्त मुद्रा (रेखा चित्र 3, 4, 5)

किसी हाथ की तर्जनी अंगुली ऊपर की ओर तथा शेष अंगुलियाँ हथेली की तरफ घूमी होती है तो उसे तर्जनी हस्त मुद्रा कहते हैं।[35] भरहुत से प्राप्त (द्वि.श.ई.पू.) शिल्प फलक पर एक आचार्य चार शिष्यों को शिक्षा दे रहे हैं, उनका दाहिना हाथ इसी मुद्रा में है।[36]



रेखा चित्र-3



रेखा चित्र-4



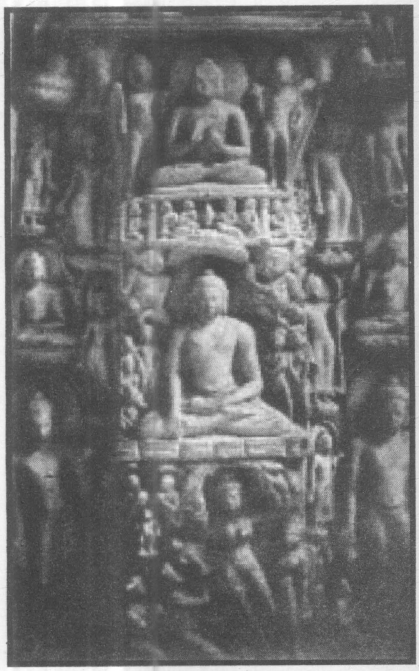
रेखा चित्र-5

भूमिस्पर्श मुद्रा (छवि चित्र 3,4,5)

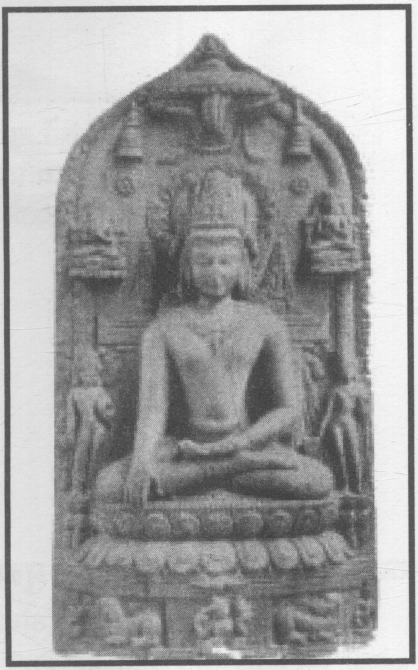
सामान्य स्थिति में बैठकर एक हाथ से भूमि का स्पर्श करना भूमिस्पर्श मुद्रा है।[37]

यह बुद्ध द्वारा ज्ञान प्राप्ति के पूर्व पृथ्वी देवी को साक्षी मानकर की गई प्रतिज्ञा की सांकेतिक मुद्रा है। गन्धार की कुछ प्रतिमाओं में इसका दर्शन होता है।[38]

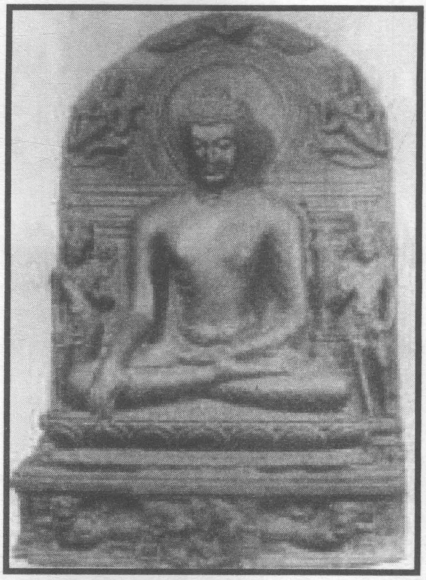
मध्यकाल में बुद्ध की इस प्रतिमा को वज्रासन प्रतिमा के रूप में माना गया।[39]



छवि चित्र-3 : भूमिस्पर्श मुद्रा, सारनाथ शिल्प, ई. छठी शती।



छवि चित्र-4 : वज्रासन बुद्ध, दाहिना हाथ भूमिस्पर्श मुद्रा में प्रदर्शित बिहार से प्राप्त पाल शिल्प, ई. दसवीं शती।



छवि चित्र-5 : भूमिस्पर्श मुद्रा में वज्रासन बुद्ध बगल में अन्य बुद्ध आकृतियाँ धर्मचक्र प्रवर्तन, वरद, ध्यान मुद्रा आदि का प्रदर्शन करती हैं। बिहार से प्राप्त पाल शिल्प, ई. दसवीं शती।

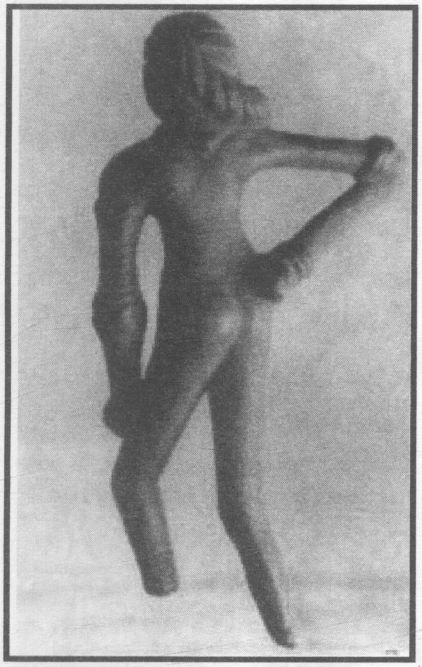
व्याख्यान/चिन्मुद्रा/संदर्शन मुद्रा

इस मुद्रा में दाएँ हाथ का अंगूठा एवं तर्जनी के अग्रभाग सटे हुए तथा हथेली बाहर की ओर घूमी हुई होती है।[40]

देवगढ़ के नर-नारायण शिल्प में ऋषि नर के उठे हुए दायें हाथ में चिन्मुद्रा का अंकन पहचाना जा सकता है।[41] अन्य उदाहरण मंदसौर से प्राप्त यमुना मूर्ति में मिलता है।[42]

लताहस्त मुद्रा (छवि चित्र 6)

एक हाथ का साधारण स्थिति में नीचे की ओर लटकना, लताहस्त मुद्रा कहलाता है। मोहनजोदड़ों से प्राप्त एक ताम्र नर्तकी मूर्ति का दाहिना हाथ लताहस्त मुद्रा में है।[43]



छवि चित्र-6 : कट्यवलम्बित एवं लता हस्त मुद्रा, धातु शिल्प, सिन्धु घाटी सभ्यता

विस्मय मुद्रा (रेखाचित्र 6, छवि चित्र 7)

इस मुद्रा में हाथ ऊपर की ओर, अंगुलियाँ सीधी और होठ के पास स्थित रहती है।[44] कुषाण मथुरा से प्राप्त वेदिका स्तम्भ पर ऋष्यशृंग के अंकन में उसका दाहिना हाथ इसी मुद्रा में है।[45]



छवि चित्र-7 : विस्मय हस्त। मथुरा शिल्प, दूसरी शती ई.



रेखा चित्र-6



रेखा चित्र-7

मुष्टिहस्त/शिखरहस्त मुद्रा (रेखाचित्र -7)

इस मुद्रा में अंगुलियाँ हथेली से सटी हुई और अंगूठा उनके ऊपर रहता है।

भरहुत से प्राप्त चुलकोका देवता की मूर्ति में वे एक हाथ से पेड़ पकड़े हुए हैं जो मुष्टि या शिखर हस्त मुद्रा है।[46] सांची के पूर्वीद्वार पर यक्षिणी की एक मूर्ति में दाहिना हाथ मुष्टिहस्त मुद्रा में है।[47] खजुराहों से प्राप्त एक मूर्ति में स्त्री का बायां हाथ इसी मुद्रा में है।[48]

पताका हस्त मुद्रा (रेखा चित्र 8)

इस मुद्रा में हाथ की सभी अंगुलियाँ सम और फैली हुई तथा अंगूठा तर्जनी के मूल में कुंचित रहता है।

भरहुत से प्राप्त एक देवता की मूर्ति में (प्र.श.ई.पू.) बायां हाथ पताका हस्त मुद्रा में पहचाना गया है।[49]



रेखा चित्र-8

अर्धपताक हस्त मुद्रा

जहाँ हाथ की कनिष्ठिका और अनामिका सीधी तथा शेष अंगुलियाँ और अंगूठा हथेली तरफ झुके हुये हों, तो अर्धपताक हस्त मुद्रा बनती है।

खजुराहों से प्राप्त एक स्त्री मूर्ति (11वीं शती) का दाहिना हाथ अर्धपताक हस्त मुद्रा में है।[50]

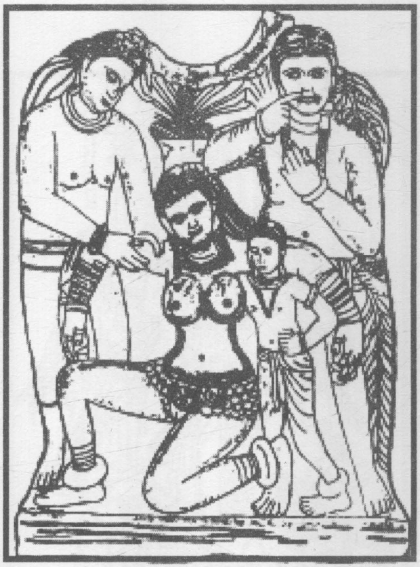
त्रिपताक हस्त मुद्रा

दायें हाथ की तर्जनी और अंगूठे के अग्रभाग स्पर्शित तथा शेष अंगुलियाँ ऊर्ध्व प्रसरित होने पर त्रिपताक हस्त मुद्रा बनती है। कपिशा से प्राप्त (प्र.शती) एक दन्त फलक पर अंकित अशोक दोहद के दृश्य में नायिका का दाहिना हाथ सामने की ओर बढ़ा हुआ त्रिपताक मुद्रा प्रदर्शित करता है।[51]

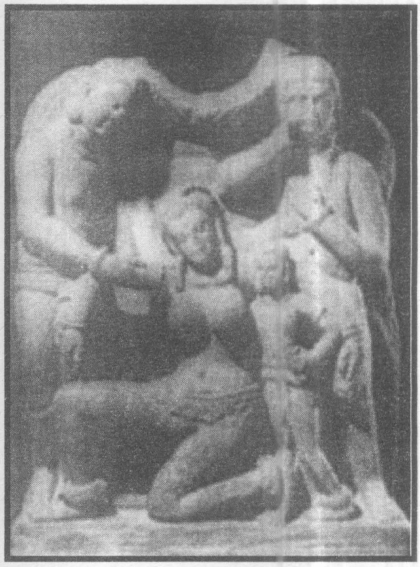
मौनव्रत मुद्रा (रेखा चित्र 9, छवि चित्र 8)

एक हाथ की तर्जनी होठों के पास ऊपर उठी हुई स्थित होने पर एक विशेष मुद्रा बनती है इसे बनर्जी ने मौनव्रत मुद्रा पहचाना है अत: उन्होंने खजुराहों से प्राप्त विष्णु की मूर्ति को मौनव्रतिन विष्णु नाम दिया है।[52]

महोली से प्राप्त पान गोष्ठी के एक फलक पर पुरुष की एक आकृति का दाहिना हाथ होठों के पास तर्जनी रखे प्रदर्शित है। सम्भवत: वह भी मौन में रहने का संकेत कर रहा है।[53]



रेखा चित्र-9



छवि चित्र-8

मृगशीर्ष हस्त मुद्रा

जब हाथ की तर्जनी और कनिष्ठिका ऊपर की ओर उठी हुई तथा मध्यमा और अनामिका के अग्रभाग अंगूठे से सम्पृक्त हों तो मृगशीर्ष हस्त मुद्रा बनती है।

अजंता की गुफा संवत् सोलह में एक स्तम्भ के ब्रैकेट पर प्रदर्शित गंधर्व मिथुन में पुरुष का बायां हाथ इसी मुद्रा को दर्शाता है।[54]

कटकहस्त/सिंहकर्ण हस्त मुद्रा (छवि चित्र 9)

जब हाथ की अंगुलियाँ मुड़ी हुई, अंगूठे से सटी हुई तथा बीच में अंगूठी के समान जगह हो तो सिंहकर्ण हस्त मुद्रा बनती है।



छवि चित्र-9 कटक हस्त (सिंहकर्ण मुद्रा) बादामी गुफा एक, चालुक्य शिल्प, ई. छठी शती।

भरहुत से प्राप्त एक देवता मूर्ति, अजन्ता के चित्र में स्त्री का हाथ, बेलूर के चेन्नकेशव मन्दिर में एक स्त्री मूर्ति का बायां हाथ इसी मुद्रा में है।[55]

अर्धचन्द्र हस्त मुद्रा (छवि चित्र 10)

हाथ की अंगुलियों को अंगूठे के साथ धनुष की तरह झुका कर फैला देना अर्धचन्द्र मुद्रा है।

माभल्ल्पुरम् से प्राप्त स्त्री की एक मूर्ति का दाहिना हाथ, चोल कालीन कांस्य की एक बाल गोपाल मूर्ति (12वीं शती) का बायां हाथ, एहोल के दुर्गा मन्दिर में प्रदर्शित एक स्त्री-पुरुष के मिथुन अंकन में पुरुष का दायां हाथ इसी मुद्रा में है।[56]



छवि चित्र-10 अर्धचन्द्र हस्त मुद्रा, अजन्ता शिल्प, ई. छठी शती।

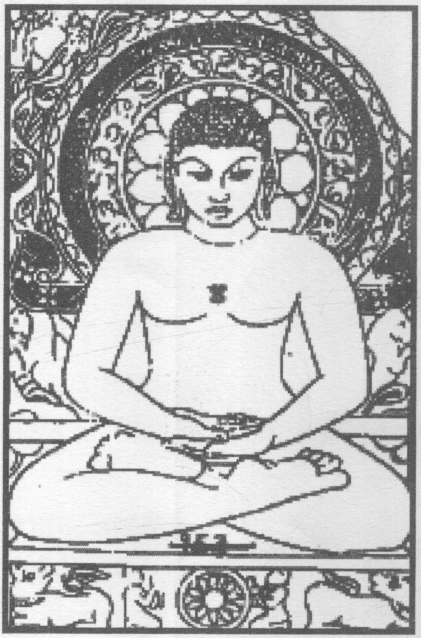
हंसास्य हस्त मुद्रा

जब अनामिका और कनिष्ठिका फैली हुई तथा तर्जनी, मध्यमा एवं अंगूठे के अग्रभाग मिले हुए हो तो हंसास्य मुद्रा बनती है। आबू के तेजपाल मन्दिर में नृत्यांगनाओं के हाथ इसी हस्त मुद्रा में पहचाने गये हैं।[57]

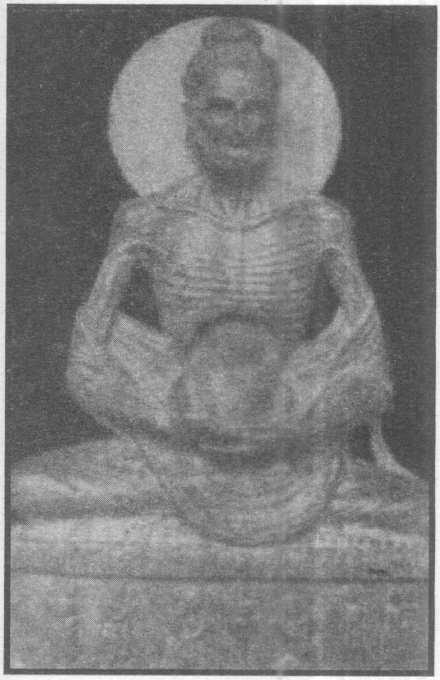
ध्यान मुद्रा (रेखा चित्र 10, छवि चित्र 11)

बायी हथेली पर दायीं हथेली के पृष्ठ भाग को रखकर उन्हें गोद में रखना ध्यान मुद्रा है।

मथुरा से प्राप्त आयागपट्टों पर तीर्थंकर का अंकन ध्यान मुद्रा में है।[58] कुषाणकालीन मथुरा कला में तीर्थंकर प्रतिमाएँ इसी मुद्रा में है।[59] गुप्तकालीन बुद्ध की मूर्ति इसी मुद्रा में है।[60]



रेखा चित्र-10



छवि चित्र-11 : पद्मासन एवं ध्यान मुद्रा में बैठे बुद्ध। गन्धार शिल्प, ई. दूसरी शती

धर्मचक्र मुद्रा (रेखा चित्र 11 छवि चित्र 12,13,14)

यह हस्त मुद्रा बुद्ध मूर्तियों में विशेष प्राप्त होती है। गुप्तकालीन एक बुद्ध मूर्ति, गन्धार के अंकनों में कई बुद्ध मूर्तियाँ, सहरी बहलोल से प्राप्त बुद्ध मूर्ति, सारनाथ से प्राप्त पाँचवीं शती के उत्तरार्ध की मूर्ति में हाथों की यही मुद्रा है।[61]



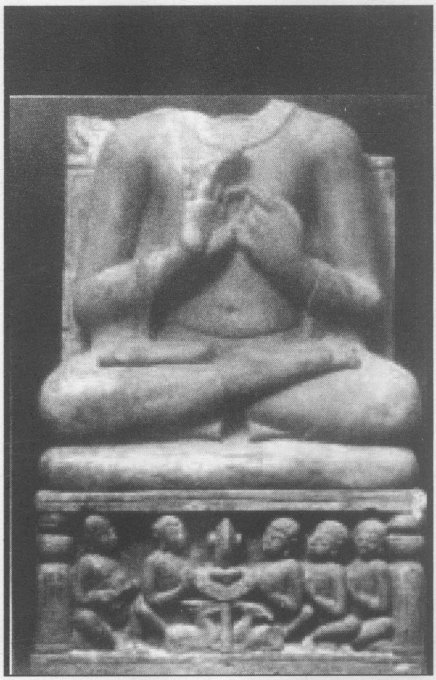
रेखा चित्र-11



छवि चित्र-12 : धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा, गन्धार शिल्प, ई. तीसरी शती



छवि चित्र-13 : पद्मासन एवं धर्मचक्र मुद्रा, सारनाथ शिल्प, ई. पाँचवीं शती

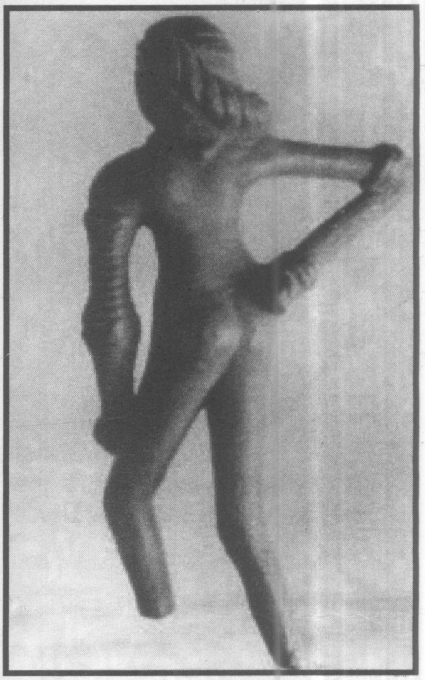


छवि चित्र-14 : धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा, सारनाथ शिल्प, ई. पाँचवीं शती

कट्यवलम्बित मुद्रा (छवि चित्र 15)

हाथ को कमर पर रखना, कट्यवलम्बित मुद्रा है।

आरम्भिक सिक्कों पर शिव का हाथ इसी मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। कुषाण कालीन मथुरा से प्राप्त कई मूर्तियों में यही मुद्रा है।[62]



छवि चित्र-15 : कट्यवलम्बित एवं लता हस्त मुद्रा, धातु शिल्प, सिन्धु घाटी सभ्यता

अंजली हस्त मुद्रा (रेखा चित्र 12)

दोनों हाथों की हथेलियों को सटाकर छाती के समीप रखने पर अंजली मुद्रा बनती है। शुंगकालीन शिल्प में राजा अताजशत्रु के हाथ इसी मुद्रा में है।[63] इस मुद्रा विषयक अन्य मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई है।[64]



रेखा चित्र-12

अलपद्म/अलपल्लव हस्त मुद्रा (छवि चित्र 15, 16)

जब हाथ की अंगुलियाँ हथेली पर वृत्ताकार रूप में घुमी हुई और पार्श्व में बिखरी हुई हों तो अलपद्म या अलपल्लव हस्त मुद्रा बनती है। देवगढ़ मन्दिर (5वीं शती) के शिल्प में एक नर्तकी का दाहिना हाथ छाती के पास इसी मुद्रा में है।[65] चोल काल की कांस्य मूर्तियों में भी इसी मुद्रा का दर्शन होता है।[66]



छवि चित्र-16 : अलपद्म हस्त मुद्रा, चोल कालीन धातु शिल्प, बारहवीं ई. शती



छवि चित्र-17 : अलपद्म हस्त मुद्रा, चोल कालीन धातु शिल्प, ई. बारहवीं शती

पक्षवंचितक हस्त मुद्रा

जब दोनों हाथ त्रिपताक मुद्रा में क्रमशः कटि और शीर्ष पर रखे हो तो पक्षवंचितक हस्त मुद्रा बनती है। मथुरा से प्राप्त एक मूर्ति (प्रथम शती) संगीतज्ञों के एक समूह में एक स्त्री के साथ पक्षवंचितक मुद्रा में है।[67]

अमरावती से प्राप्त एक शिल्प (दूसरी शती) में नर्तकी के हाथ इसी मुद्रा में है।[68]

ऊर्ध्वमण्डलिन् मुद्रा

गान्धार, एलोरा गुफा, खजुराहो आदि से प्राप्त शिल्पों में यह मुद्रा स्पष्टतः देखी गई है।[69]

नागबन्ध हस्त मुद्रा (छवि चित्र 17)

सर्पशीर्ष मुद्रा में रचित हाथों को एक-दूसरे के ऊपर स्वस्तिक की तरह रखने पर नागबन्ध मुद्रा बनती है। रत्नागिरी से प्राप्त एक शिल्प के हाथ इसी मुद्रा में है।[70]

इस भाँति हम देखते हैं कि हस्त मुद्राएँ हमारे जीवन का अभिन्न अंग है, इसीलिए भारत की तमाम कलाओं में इसका दिग्दर्शन सहज रूप से हो जाता है।

उपरोक्त वर्णन से मुद्रा विज्ञान की प्राचीनता एवं मूल्यवत्ता भी स्पष्टतः सिद्ध हो जाती है।

कला को समझने एवं प्रदर्शित करने का सर्वश्रेष्ठ माध्यम शिल्पकला है। इस अध्याय में प्रागकाल से प्राप्त शिल्प रचनाओं के द्वारा मुद्राओं को ऐतिहासिकता तो सिद्ध हुई ही साथ ही



छवि चित्र-18 : नागबन्ध हस्त मुद्रा, रत्नगिरी से प्राप्त शिल्प, ई. नवीं शती

उन देवी-देवताओं के स्वरूप विषयक शंकाएँ भी समाधान को प्राप्त हुई होगी। यह अध्याय प्रतिमा से हमारे जुड़ाव को द्विगुणित कार मुद्रा प्रयोग में हमें सक्रिय एवं सचेष्ट बनाए यह शुभेच्छा।

सन्दर्भ सूची

1. *एलीमेन्ट्स आफ हिन्दू आइकनोग्राफी, टी.ए. गोपीनाथ, वाल्यूम 1, पार्ट1*
2. *दि डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू, आइकनोग्राफी, जे.एन. बनर्जी, पृ. 250, वराहमिहिर के आधार पर*
3. *इण्डियन एण्टीक्वेरी, बर्गेस जिल्द 26, 1897, पृ.24-25*
4. *धर्मशास्त्र का इतिहास, वामन काणे, भा.5, पृ. 70*
   - *बुद्ध एण्ड दि गास्पेल आव बुद्ध-लंदन, कुमारस्वामी, पृ. 262*
   - *बुद्धिस्ट आर्ट इन इण्डिया, एन.के.भट्टसलि, चित्र 126, पृ. 178*
   - *आइकोनोग्राफी आव बुद्धिस्ट एण्ड ब्रह्मौनिकल स्कल्पचर्स इन दि ढाका म्यूजियम, फलक 8*
5. *धर्मशास्त्र का इतिहास, वामन काणे, भा.5, पृ. 71*
   - *कुमार स्वामी पूर्व उद्धृत, पृ. 38, 330*
   - *बुद्धिस्ट आइकनोग्राफी, फलक 38*
6. *धर्मशास्त्र का इतिहास, वामन काणे, भा.5, पृ. 71*
   - *मेमायर्स आफ आर्क्यालॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, सं. 66, फलक 13*
   - *बुद्धिस्ट आर्ट इन इण्डिया, पृ. 192*
7. *धर्मशास्त्र का इतिहास, वामन काणे, भा.5, पृ. 70*
8. *भट्टसलि, पूर्व उद्धृत, फलक 20-21*
9. *धर्मशास्त्र का इतिहास, वामन काणे, भा.5, पृ. 70*
10. *धर्मशास्त्र का इतिहास, वामन काणे, भा.5, पृ. 70*
11. *धर्मशास्त्र का इतिहास, वामन काणे, भा.5, पृ. 70*
12. *धर्मशास्त्र का इतिहास, वामन काणे, भा.5, पृ. 70*
13. *आइकोनोग्राफी आफ दि हिन्दूज, बौद्धिस्ट और जैन, आर.एस.गुप्ते, मुंबई 1972*
14. *दीपार्णव, पालीताना, पृ. 278, सन् 1960*
15. *भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, फलक 34, चित्र 21, पृ. 26*

16. भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, फलक 25, चित्र 22, पृ. 27
17. भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, फलक 11, चित्र 44, पृ. 25
18. भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, फलक 11, चित्र 73-76,
19. भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, फलक 11, चित्र 212, पृ.148
20. भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ. 224
21. भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, फलक 34, चित्र 361-62, पृ. 236
22. भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, फलक 34, चित्र 21, पृ. 240
23. भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, फलक 34, चित्र 21, पृ. 240

24. भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, फलक 34, चित्र 432,430
25. क्लासिकल इण्डियन डान्स इन लिट्रेचर एण्ड आर्टस् दिल्ली, कपिला वात्स्यायन
26. टी.ए.गोपीनाथ राव, पूर्व उद्धृत, फलक 5, चित्र 4-6
27. जे.एन. बनर्जी, पूर्व उद्धृत, फलक 3, चित्र 5, पृ. 250
28. भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, चित्र 85
29. भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, चित्र 212
30. भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, चित्र 411,417,418,420,421
31. कपिला वात्स्यायन, पूर्व उद्धृत, फलक 42
32. कपिला वात्स्यायन, पूर्व उद्धृत, फलक 88-89
33. टी.ए.गोपीनाथ राव, पूर्व उद्धृत, फलक 6, चित्र 1-3
34. गुप्तकालीन कला एवं वास्तु, पृथ्वी कुमार अग्रवाल, फलक 96-97, पृ. 87
35. टी.ए. गोपीनाथ राव, पूर्व उद्धृत, फलक 5, चित्र 9
36. एन्सियेन्ट इण्डियन एजुकेशन, दिल्ली 1969 राधाकुमुद बनर्जी, फलक 5
37. जे.एन. बनर्जी, पूर्व उद्धृत, पृ. 262
38. दि बुद्धिस्ट आर्ट आफ गन्धार, दिल्ली 1980, मार्शल, फलक 43
39. दि बुद्धिस्ट इण्डियन आइकनोग्राफी, कलकत्ता 1958, बी. भट्टाचार्य, चित्र 46
40. टी.ए.गोपीनाथ राव, पूर्व उद्धृत, भा.1, फलक 5, चित्र 15, पृ. 16
41. गुप्तकालीन कला एवं वास्तु, फलक 50
42. गुप्तकालीन कला एवं वास्तु, फलक 74 बी

43. *भारतीय कला, फलक 34, चित्र 21, पृ. 26*
44. *टी.ए.गोपीनाथ राव, पूर्व उद्धृत, भा.1, फलक 5, चित्र 13-14, पृ. 16*
45. *भारतीय कला, पूर्व उद्धृत, चित्र 363*
46. *भारतीय कला, चित्र 203*
47. *कपिला वात्स्यायन, पूर्व उद्धृत, फलक 6, पृ.313*
48. *कपिला वात्स्यायन, पूर्व उद्धृत, फलक 53, पृ.313*
49. *कपिला वात्स्यायन, पूर्व उद्धृत, फलक 3, पृ.313*
50. *कपिला वात्स्यायन, पूर्व उद्धृत, फलक 95*
51. *भारतीय कला, चित्र 445*
52. *जे.एन.बनर्जी, फलक 24, 3, चित्र 6-7*
53. *भारतीय कला, चित्र 391*
54. *आर्ट आफ इण्डियन एशिया, जिम्मर, फलक 166*
55. *आसन एवं योग मुद्राएँ, डॉ. रविन्द्र प्रताप सिंह, पृ. 164*
56. *आसन एवं योग मुद्राएँ, डॉ. रविन्द्र प्रताप सिंह, पृ. 165*
57. *कपिला वात्स्यायन, फलक 88-89*
58. *भारतीय कला, फलक 139, 141, पृ. 240*
59. *भारतीय कला, चित्र 368-9, पृ. 240-1*
60. *गुप्तकालीन कला एंव वस्तु, फलक 53, पृ. 86*
61. *आसन एवं योग मुद्रायें, पृ. 166-67*
62. *आसन एवं योग मुद्राएँ, पृ. 167*
63. *भारतीय कला, चित्र 212*
64. *आसन एवं योग मुद्राएँ, पृ. 168*
65. *कपिला वात्स्यायन, फलक 72, पृ.320*
66. *देखिए, छवि चित्र 24-25*
67. *कपिला वात्स्यायन, पूर्व उद्धृत, फलक 59*
68. *कपिला वात्स्यायन, पूर्व उद्धृत, फलक 67*
69. *स्पष्टबोध के लिए देखिए, आसन एवं योग मुद्राएँ, पृ. 170*
70. *स्पष्टबोध के लिए देखिए, आसन एवं योग मुद्राएँ, पृ. 170*

●

अध्याय-7

उपसंहार

भौतिक एवं आध्यात्मिक चिकित्सा में उपयोगी मुद्राएँ

प्राणिक हीलिंग विशेषज्ञ के.के. जायसवाल एवं एक्युप्रेशर चिकित्सज्ञ शरद कुमार जायसवाल, वाराणसी के अनुसार कौनसा रोग किस मुद्रा से ठीक हो सकता है? इससे सम्बन्धित नाट्य मुद्राओं का एक चार्ट प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान देना जरूरी है कि रोगों से छुटकारा पाने हेतु जिन मुद्राओं का सूचन किया जाएगा वे मुद्राएँ उन रोगों की चिकित्सा में मुख्य सहयोगी हैं किन्तु सभी मनुष्यों की शारीरिक एवं मानसिक प्रकृति भिन्न-भिन्न होने से कई बार अन्य मुद्राओं का प्रयोग करना भी आवश्यक हो जाता है। अत: मुद्रा विशेषज्ञों से जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् मुद्राओं से उपचार करना चाहिए।

- किसी भी मुद्रा को निरन्तर कुछ दिनों तक करने पर उसका प्रभाव पड़ता है।
- मुद्रा का प्रयोग सही विधि से एवं विश्वास पूर्वक करना अनिवार्य है।

पूजा उपासना या विशिष्ट साधना के दौरान यदि सम्यक् विधि से मुद्रा का प्रयोग किया जाए तो भावधारा निर्मल होने से वे शीघ्र लाभदायी होती हैं।

शारीरिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ

अस्थमा : कटकामुख मुद्रा, उलूक मुद्रा।

अनिद्रा : खटका वर्धमान मुद्रा, चन्द्र मुद्रा, क्षत्रिय मुद्रा, रावण मुद्रा, वैश्य मुद्रा, वामनावतार मुद्रा।

अफरा : शिखर मुद्रा, केतु मुद्रा, शुक्र मुद्रा, कृष्णावतार मुद्रा।

आलस्य : ब्राह्मण मुद्रा, करतरी मुद्रा, खड्ग मुकुल मुद्रा, राहु मुद्रा, सरस्वती मुद्रा, रघुरामावतार मुद्रा

आँखो के रोग : भैरूण्ड मुद्रा, भीम मुद्रा, ब्रह्म मुद्रा, क्षत्रिय मुद्रा, रावण मुद्रा, बलरामावतार मुद्रा, नरसिंहअवतार मुद्रा, कुरूवक मुद्रा।

• **आँतों के रोग (अल्सर, आँतों में सूजन, आंतो में रूकावट, नाभि खिसकना, आँतों में गांठ (Tumour) हर्निया, एपेन्डिक्स, टाइफाइड, दस्त, कब्ज आदि) :** सूच्यास्य मुद्रा, चतुर मुद्रा,पुष्पपुट मुद्रा, रेचित मुद्रा, ललित मुद्रा, अर्धमुख मुद्रा, कार्त्तवीर्य मुद्रा, पुन्नाग मुद्रा।

• **आमाशय सम्बन्धी विकार (गैस, अल्सर, पेट में गांठ, पेट में कीड़े, भूख कम-ज्यादा लगना आदि) :** स्वस्तिक मुद्रा, चतुरस्र मुद्रा चक्र मुद्रा, शुद्र मुद्रा, कूर्मावतार मुद्रा।

• **अण्डाशय (Testes) (हस्तदोष, स्वप्नदोष, वीर्य विकार आदि) :** अराल मुद्रा-1, वर्धमान मुद्रा, उदवृत्त मुद्रा, चंद्रमृग मुद्रा, कटक मुद्रा, खड्ग मुकुल मुद्रा, राहु मुद्रा।

अपच : पताका मुद्रा, शुद्र मुद्रा, शुक्र मुद्रा, वामनावतार मुद्रा।

अपस्मार मिरगी (Epilepsy Fits) : स्वस्तिक मुद्रा-1, भैरूण्ड मुद्रा, ब्राह्मण मुद्रा, इन्द्र मुद्रा, त्रिज्ञान मुद्रा।

अकडन : सरस्वती मुद्रा, सिंह मुद्रा, दम्पत्ति मुद्रा, वामनावतार मुद्रा।

अस्थितंत्र सम्बन्धी रोग : ताम्रचूड़ मुद्रा-2, लताहस्त मुद्रा, केतकी मुद्रा, कूर्म मुद्रा, पार्वती मुद्रा, शैव्य मुद्रा, शनैश्चर मुद्रा, उलूक मुद्रा, भर्त्तार मुद्रा, कृष्णावतार मुद्रा।

उच्चरक्तचाप (High B.P.) : सिंहमुख मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा, शुक्र मुद्रा, भर्त्तार मुद्रा, बलरामावतार मुद्रा।

ऊर्जा की कमी : बक मुद्रा, ब्राह्मण मुद्रा, इन्द्र मुद्रा, खड्ग मुद्रा, कुबेर मुद्रा, शम्भु मुद्रा, त्रिज्ञान मुद्रा, वैश्य मुद्रा, ज्येष्ठ भातृ मुद्रा, श्वसुर मुद्रा, परशुरामअवतार मुद्रा।

ऐसिडिटी : सर्पशीर्ष मुद्रा, उल्वणमुद्रा, अधोमुष्टि मुकुल मुद्रा, सपत्नी मुद्रा, कृष्णावतार मुद्रा।

एलर्जी : कटक मुद्रा, लीनाल पद्म मुद्रा, शनैश्चर मुद्रा, भर्त्तार मुद्रा।

एनिमिया (पांडुरोग) : करिहस्त मुद्रा, मयुर हस्त मुद्रा, कार्त्तवीर्य मुद्रा, शुद्र मुद्रा, नरसिंह अवतार मुद्रा।

कब्ज (Constipation) : पक्षवंछित मुद्रा, चंद्रमृग मुद्रा, राहु मुद्रा, उलूक मुद्रा, दम्पत्ति मुद्रा, कूर्मावतार मुद्रा।

कफ : अजमुख मुद्रा, चंद्रमृग मुद्रा, कटक मुद्रा-2, राहु मुद्रा, स्त्री मुद्रा, उल्लूक मुद्रा, भर्त्तार भ्रातृ मुद्रा, दम्पत्ति मुद्रा।

कमजोरी : उल्वण मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा, चक्र मुद्रा, अधोमुष्टि मुकुल मुद्रा, सपत्नी मुद्रा।

• **कमर की तकलीफें (कमर दर्द, कमर के क्षेत्र में जकड़न, सायटिका, मनके का स्थानच्युत होना) :** अलपद्म मुद्रा, चक्र मुद्रा, अजमुख मुद्रा, कटक मुद्रा, रावण मुद्रा, सरस्वती मुद्रा, वामनावतार मुद्रा।

• **कान की समस्याएँ (कर्णनाद, कान में दर्द, बहरापन, कम सुनना, कान में पीड़ा आदि):** आविद्धवक्र मुद्रा, नलिनी पद्मकोश मुद्रा, भीम मुद्रा, ब्रह्म मुद्रा, करतरी दण्ड मुद्रा, लीन कर्कट मुद्रा, वरूण मुद्रा, उद्वेष्टि तालपद्म मुद्रा, कनिष्ठभ्रात मुद्रा, श्वशरी मुद्रा, मत्स्यावतार मुद्रा।

• **किडनी (गुर्दे) सम्बन्धी समस्याएँ (किडनी में सूजन, किडनी का काम न करना, किडनी में पथरी, हाइड्रोनेफ्रोसिस, किडनी का सिकुड़ना एवं बढ़ना):** पताका मुद्रा, मुष्टि मुद्रा, अल्पपद्म मुद्रा, निषेध मुद्रा-1, पुष्पपुट मुद्रा-2, गरूड मुद्रा, कार्त्तवीर्य मुद्रा, कटक मुद्रा, खड्ग मुकुल मुद्रा, पुन्नाग मुद्रा, शुद्र मुद्रा, उलूक मुद्रा, दम्पत्ति मुद्रा, परशुराम अवतार मुद्रा।

कैन्सर : उत्संग मुद्रा, शुक्र मुद्रा।

कोमा : अर्धसूची मुद्रा, ब्राह्मण मुद्रा, व्हलो मुद्रा।

कॉलेस्ट्रॉल बढ़ना : ताम्रचूड मुद्रा, पल्लि मुद्रा, शुद्र मुद्रा, नरसिंह अवतार मुद्रा।

खाँसी : कंदंजली मुद्रा, वरूण मुद्रा, सरस्वती मुद्रा, शमी मुद्रा, कनिष्ठ भ्रातृ मुद्रा, मत्स्यावतार मुद्रा।

खुजली : चन्द्र मुद्रा, वायु मुद्रा, परदिष मुकुल मुद्रा, शुद्र मुद्रा, कूर्मावतार मुद्रा, परशुराम अवतार मुद्रा।

गाउट (वात रोग)– भ्रमर मुद्रा, वायु मुद्रा, शैव्य मुद्रा, शमी मुद्रा, कृष्णावतार मुद्रा।

गठिया : कंदंजली मुद्रा, लीन कर्कट मुद्रा, श्वशरी मुद्रा, मत्स्यावतार मुद्रा।

• **गर्दन की समस्याएँ (Cervical spondilities):** त्रिपताका मुद्रा, शुकतुण्ड मुद्रा, कटकामुख मुद्रा, कर्कट मुद्रा, अराल कटक मुख मुद्रा, भीम मुद्रा, चंपक मुद्रा, कंदंजली मुद्रा, लीन कर्कट मुद्रा, सरस्वती मुद्रा, उद्वेष्टि ताल पद्म मुद्रा, कनिष्ठ भ्रातृ मुद्रा।

गले की समस्याएँ (गले में दर्द, गला खराब होना, टॉन्सिल आदि) : आविद्धवक्र मुद्रा, गरूड़पक्ष मुद्रा, अरालकटक मुख मुद्रा, चंपक मुद्रा, श्वश्री मुद्रा।

• **गर्भाशय सम्बन्धी समस्याएँ (प्रजनन समस्या, बांझपन, मासिक स्राव की अनियमितता, पेडु में दर्द, सूजन, गर्भाशय में गांठ (Tumour) ल्युकेरिया (प्रदर रोग) गर्भस्राव (गर्भपात) आदि) :** उद्वृत्त मुद्रा, गरूड मुद्रा, परदिष मुकुल मुद्रा, शुद्र मुद्रा, दम्पत्ति मुद्रा, कूर्मावतार मुद्रा।

गेस्ट्रोएन्ट्राइटिस : अर्धपताका मुद्रा, खड्ग मुकुल मुद्रा।

घबराहट : करतरीदण्ड मुद्रा, कनिष्ठ भ्रातृ मुद्रा।

घुटनों की समस्या : नितम्ब मुद्रा।

चक्कर आना : अर्धचन्द्र मुद्रा, चतुरस्त्र मुद्रा, अर्धरेचित मुद्रा, चक्र मुद्रा, बक मुद्रा, करतरी दण्ड मुद्रा, शुक्र मुद्रा, कृष्णावतार मुद्रा, नरसिंहअवतार मुद्रा।

चर्म रोग : पक्षवंछित मुद्रा, अंगारख मुद्रा, अर्धमुख मुद्रा, लक्ष्मी मुद्रा, मन्मथ मुद्रा, सपत्नी मुद्रा, भर्त्तार मुद्रा।

छाती में दर्द : कपोत्त मुद्रा, केतकी मुद्रा, लक्ष्मी मुद्रा, सिन्धुवर मुद्रा, पितृ मुद्रा।

जड़बुद्धि (जड़ता) : मकर मुद्रा-2, मुष्टि स्वस्तिक मुद्रा, शनैश्चर मुद्रा, स्त्री मुद्रा।।

जबड़े में दर्द : उद्वेष्टि ताल पद्म मुद्रा, कनिष्ठ भ्रातृ मुद्रा, मत्स्यावतार मुद्रा।

टी.वी. (Tuberculo) : कपोत मुद्रा, मयूरहस्त मुद्रा, नागबन्ध मुद्रा, अर्जुन मुद्रा, कटक मुद्रा-1, शनैश्चर मुद्रा, शमी मुद्रा, सिन्धुवर मुद्रा, ननंद मुद्रा।

टॉन्सिलाइटिस् : शमी मुद्रा, करतरीदण्ड मुद्रा, संकीर्ण मुद्रा।

टाइफाइड : मकर मुद्रा।

डायबीटिस : शिखर मुद्रा, लांगुल मुद्रा, परदिष मुकुल मुद्रा, शुद्र मुद्रा, मातृ मुद्रा, वामनावतार मुद्रा।

डायरिया (उल्टी-दस्त लगना) : ललित मुद्रा, परदिष मुकुल मुद्रा।

डीहाइड्रेशन (पानी की कमी) : अर्धपताका मुद्रा, मन्मथ मुद्रा, शुद्र मुद्रा।

तुतलाना : करतरीदण्ड मुद्रा।

थायरॉइड : सम्पुट मुद्रा, खट्वा मुद्रा, अर्जुन मुद्रा, केतकी मुद्रा, पार्वती मुद्रा, संकीर्ण मकर मुद्रा, शमी मुद्रा, नंनद मुद्रा, बलरामावतार मुद्रा।

दाद (Ring Worms) : केतु मुद्रा, वरुण मुद्रा, राहु मुद्रा, संयम नायक मुद्रा, शुद्ध मुद्रा, उलूक मुद्रा, दम्पति मुद्रा, परशुराम अवतार मुद्रा।

- **दाँतों की समस्याएँ (दाँतों में दर्द, दाँतों में पीव आना आदि):** खट्वा मुद्रा, वरूण मुद्रा, संकीर्ण मुद्रा, शमी मुद्रा, उद्वेष्टि ताल पद्म मुद्रा, मत्स्यावतार मुद्रा।

न्युमोनिया : ताम्रचूड़ मुद्रा, नितम्ब मुद्रा, सिन्धुवर मुद्रा।

नकसीर : चन्द्रकला मुद्रा, पूग मुद्रा।

नाड़ी शुद्धि : पद्मकोश मुद्रा, गरूड पक्ष मुद्रा, क्षत्रिय मुद्रा, सूर्य मुद्रा, मातृ मुद्रा।

- **नाभि की समस्या (नाभि खीसकना, नाड़ी में दर्द):** अर्धचन्द्र मुद्रा, हंसपक्ष मुद्रा, परदिष मुकुल मुद्रा, श्वसुर मुद्रा।

निम्न रक्तचाप : सिन्धुवर मुद्रा, सपत्नी मुद्रा, कृष्णावतार मुद्रा।

नशीले पदार्थों की आदत : इन्द्र मुद्रा, वायु मुद्रा, पूग मुद्रा, संयम नायक मुद्रा, ताल पताका मुद्रा, कल्कि अवतार मुद्रा।

नंपुसकता : केतु मुद्रा, स्त्री मुद्रा, भर्त्तार भ्रातृ मुद्रा, मत्स्यावतार मुद्रा, परशुराम अवतार मुद्रा।

पक्षाघात : सन्दंश मुद्रा, प्रक्षप्रद्योत मुद्रा, मुष्टि स्वस्तिक मुद्रा, भिनांजली मुद्रा, ब्राह्मण मुद्रा, इन्द्र मुद्रा, खड्ग मुद्रा, पूग मुद्रा, सिंह मुद्रा, सिन्धुवर मुद्रा, वैश्व मुद्रा, ज्येष्ठ भ्रातृ मुद्रा, पितृ मुद्रा।

- **पित्ताशय सम्बन्धी समस्याएँ (पथरी, पित्ताशय क्षेत्र में दर्द, पित्ताशय की नली में गांठ (Billary tumour) पीलिया आदि) :** वराह मुद्रा, रघुरामावातार मुद्रा।

पोलियो : गजदंत मुद्रा।

पीलिया : लांगुल मुद्रा, संकीर्ण मुद्रा।

पेट में कृमि (जन्तु) होना : सूच्यास्य मुद्रा, अर्धरेचित मुद्रा, नरसिंहअवतार मुद्रा।

पाईल्स (मस्सा) : राहु मुद्रा, करतरी दण्ड मुद्रा, खड्ग मुकुल मुद्रा।

पार्किनसन्स रोग : व्हलो मुद्रा, पार्वती मुद्रा, शम्भु मुद्रा, सूर्य मुद्रा, त्रिज्ञान मुद्रा, वैश्य मुद्रा, ज्येष्ठ भ्रातृ मुद्रा, श्वसुर मुद्रा, कल्कि अवतार मुद्रा, नरसिंहअवतार मुद्रा।

पित्त विकार : लताहस्त मुद्रा, बक मुद्रा, तालसिंह मुद्रा, सपत्नी मुद्रा, बलरामावतार मुद्रा, कृष्णावतार मुद्रा।

• **पैर की तकलीफें (पैरों में दर्द, ऐठन, हाथ पैर का पतला पड़ना (Muscle loss) सुन्नपन आदि) :** शुकतुण्ड मुद्रा, रावण मुद्रा, कूर्मावतार मुद्रा, रघुरामावतार मुद्रा।

• **पीठ की समस्याएँ (रीड की हड्डी में तकलीफ (Spine Problem), झुकी हुई पीठ आदि) :** सन्दंश मुद्रा-2, मुकुल मुद्रा, ताम्रचूड़ मुद्रा-2, गजदंत मुद्रा, कूर्म मुद्रा।

• **फेफड़ों की समस्याएँ (ब्रांककाइटिस्, अस्थमा, न्युमोनिया, फेफड़ों में फोड़ा या पस (Abscess), फेफड़ों में टी.वी) :** भ्रमर मुद्रा, उर्णनाभ मुद्रा, कपोत मुद्रा, तलमुख मुद्रा, मयूरहस्त मुद्रा, छग मुद्रा, गर्दभ मुद्रा, लीनाल पद्म मुद्रा, शैव्य मुद्रा, शमी मुद्रा, पितृ मुद्रा, बलरामावतार मुद्रा, कृष्णावतार मुद्रा।

फोड़े-फुन्सी : अंजलि मुद्रा, अंगारख मुद्रा, मन्थन मुद्रा, संकीर्ण मुद्रा।

बवासीर : राहु मुद्रा, स्त्री मुद्रा, भर्त्तारि भ्रातृ मुद्रा, रघुरामावतार मुद्रा।

• **बालों की समस्याएँ (बाल झड़ना, बालों का सफेद होना, बालों का रूखापन आदि) :** खटका वर्धमान मुद्रा, चंद्रकला मुद्रा, ब्राह्मण मुद्रा, बृहस्पति मुद्रा, कल्कि अवतार मुद्रा।

• **बिस्तर गीला करना (नींद में पेशाब करना) :** मन्मथ मुद्रा, पूग मुद्रा, स्त्री मुद्रा, भर्त्तारि भ्रातृ मुद्रा, कूर्मावतार मुद्रा।

ब्लडप्रेशर : उत्संग मुद्रा, विप्रकीर्ण मुद्रा, छग मुद्रा, मन्मथ मुद्रा, सूर्य मुद्रा, बलरामवतार मुद्रा।

• **मस्क्युलर डीस्ट्रोफी (स्नायु तंत्र की बढ़ती निष्क्रियता) :** खट्का वर्धमान मुद्रा, केतकी मुद्रा, परदिष मुकुल मुद्रा, मातृ मुद्रा, रघुरामावतार मुद्रा।

• **मस्तिष्क समस्याएँ (मस्तिष्क कैन्सर, सिरदर्द, कोमा, ब्रेन ट्यूमर आदि) :** हंसास्य मुद्रा, अर्धसूची मुद्रा, सम्पुट मुद्रा, भिन्नांजली मुद्रा, खड्ग मुद्रा, कुबेर मुद्रा, व्हलो मुद्रा, त्रिज्ञान मुद्रा, ज्येष्ठ भ्रातृ मुद्रा, वामानावतार मुद्रा।

• **मासिक धर्म सम्बन्धी समस्याएँ (अनियमितता, दर्द होना, अधिक मासिक स्राव आदि) :** मुकुल मुद्रा, केशबंध मुद्रा, चंद्रमृग मुद्रा, पुन्नाग मुद्रा, शम्भु मुद्रा, श्वसुर मुद्रा।

माइग्रेन (आधा शीशी) : अराल मुद्रा, सम्पुट मुद्रा, कुरूवक मुद्रा, व्हलो मुद्रा, पूग मुद्रा, सूर्य मुद्रा, वैश्य मुद्रा, पितृ मुद्रा, स्नुष् मुद्रा।

• **मूत्राशय सम्बन्धी समस्याएँ (मूत्र त्याग में अवरोध, मूत्रमार्ग में संक्रमण (Infection) मूत्राशय में पथरी या गांठ, मूत्राशय का बाहर लटकना (Urinary Bladder Prolapse) :** कपित्थ मुद्रा, पुन्नाग मुद्रा, राहु मुद्रा, परशुराम अवतार मुद्रा।

• **यकृत (Liver) की अस्वस्थता (यकृत में संक्रमण (Hepatitis) यकृत का बढ़ना (Hepatomegaly) यकृत में सूजन, यकृत में पित्त, यकृत में गांठ या यकृत का काम न करना) :** ऊर्णनाभ मुद्रा, वराह मुद्रा, गर्दभ मुद्रा, करकट मुद्रा, कुरुवक मुद्रा।

• **रक्त विकार (रक्त कैन्सर, रक्त में आवश्यक तत्त्वों की कमी, रक्त शुद्धि, रक्त की कमी आदि) :** अंजलि मुद्रा, पल्लि मुद्रा, पाश मुद्रा, वराह मुद्रा, गर्दभ मुद्रा, केतु मुद्रा, लक्ष्मी मुद्रा, पुन्नाग मुद्रा, मातृ मुद्रा।

लकवा : कपित्थ मुद्रा, कटक मुद्रा, कुबेर मुद्रा, रावण मुद्रा, शम्भु मुद्रा, त्रिज्ञान मुद्रा, ज्येष्ठ भ्रातृ मुद्रा, पितृ मुद्रा, परशुराम अवतार मुद्रा, वामनावतार मुद्रा।

वायु विकार : पाश मुद्रा, छग मुद्रा, गर्दभ मुद्रा, लक्ष्मी मुद्रा, लीनाल पद्म मुद्रा, वायु मुद्रा, परदिष मुकुल मुद्रा, शमी मुद्रा, पितृ मुद्रा, बलरामावतार मुद्रा।

वजन बढ़ना : कटक मुद्रा, चंपक मुद्रा, चंद्रमृग मुद्रा, रावण मुद्रा, पितृ मुद्रा।

• **स्नायुतंत्र की समस्याएँ (स्नायुतंत्र में रूकावट, स्नायु तंत्र में खिंचाव):** अवहित्त मुद्रा, गरूड़ पक्ष मुद्रा,व्याघ्र मुद्रा, नागबन्ध मुद्रा, ब्राह्मण मुद्रा, बृहस्पति मुद्रा, कुरूवक मुद्रा, श्वसुर मुद्रा, वामनावतार मुद्रा।

सायनस : कर्तरीमुख मुद्रा, संयम नायक मुद्रा, वैश्य मुद्रा, मातृ मुद्रा, स्नुष मुद्रा।

सिर दर्द : करकट मुद्रा, क्षत्रिय मुद्रा, व्हलो मुद्रा, उलुक मुद्रा, पितृ मुद्रा, श्वसुर मुद्रा, बलरामावतार मुद्रा।

स्मरण शक्ति की समस्या : करकट मुद्रा, संयम नायक मुद्रा, त्रिज्ञान मुद्रा, ज्येष्ठ भ्रातृ मुद्रा।

• **श्वास तंत्र सम्बन्धी समस्याएँ (श्वास फुलना, बैचेनी, घबराहट, दमा, श्वास लेने में तकलीफ आदि) :** खट्वा मुद्रा, शैव्य मुद्रा।

• **स्वर यंत्र की समस्याएँ (आवाज का दबना, मोटा होना, हकलाना आदि) :** त्रिपताका मुद्रा, अवहित्त मुद्रा, अंगारख मुद्रा, संकीर्ण मुद्रा, सरस्वती मुद्रा, श्वश्री मुद्रा।

• **हृदय सम्बन्धी रोग (सदमा) :** मृगशीर्ष मुद्रा, केशबंध मुद्रा, व्याघ्र मुद्रा, नागबन्ध मुद्रा, बक मुद्रा, कूर्म मुद्रा, वायु मुद्रा, संकीर्ण मंकर मुद्रा, शैव्य मुद्रा, ननंद मुद्रा, पितृ मुद्रा, बलरामावतार मुद्रा।

हिचकी : भीम मुद्रा, संकीर्ण मुद्रा, सरस्वती मुद्रा, शमी मुद्रा, मत्स्यावतार मुद्रा।

मानसिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ

• **क्रोध, पागलपन, घृणा, आसक्ति, अनियंत्रण, अहंकार, अकेलापन आदि–** मुष्टि मुद्रा, सन्दंश मुद्रा, अंजलि मुद्रा, रेचित मुद्रा, करिहस्त मुद्रा, पक्षवंछित मुद्रा, कटक मुद्रा, चंपक मुद्रा, कार्त्तवीर्य मुद्रा, खड्गमुकुल मुद्रा, कूर्म मुद्रा, राहु मुद्रा, सरस्वती मुद्रा, शनैश्चर मुद्रा, स्त्री मुद्रा, दम्पति मुद्रा, रघुरामावतार मुद्रा।

• **नशे की लत, भावात्मक अस्थिरता (Over confidence), लालसा, अविश्वास, अकेलापन–** अलपद्म मुद्रा, स्वाधिष्ठान चक्र, पुष्पपुट मुद्रा, वर्धमान मुद्रा, उद्वृत्त मुद्रा, पल्लि मुद्रा, गरूड मुद्रा, अजमुख मुद्रा, चंद्रमृग मुद्रा, इन्द्र मुद्रा, करतरी दण्ड मुद्रा, कटक मुद्रा-2, केतु मुद्रा, वरूण मुद्रा,

व्याली मुद्रा, संयमनायक मुद्रा, तालपताका मुद्रा, उलूक मुद्रा, भर्त्तारिभातृ मुद्रा, कूर्मावतार मुद्रा।

• **एकाग्रता की कमी, अविश्वास, अखुशहाल, लालच, स्वाभिमान की कमी–** सूच्यास्य मुद्रा, हंसपक्ष मुद्रा, ताम्रचूड़ मुद्रा, चतुरस्र, मुद्रा, अर्धरेचित मुद्रा, नितम्ब मुद्रा, केशबंध मुद्रा, सिंहमुख मुद्रा, अर्धमुख मुद्रा, ब्रह्म मुद्रा, करकट मुद्रा, मन्मथ मुद्रा, रावण मुद्रा, संकीर्ण मुद्रा, शुद्र मुद्रा, सूर्य मुद्रा, मातृ मुद्रा, सपत्नी मुद्रा, श्वसुर मुद्रा, भर्त्तरि भ्रातृ मुद्रा, कृष्णावतार मुद्रा।

• **गाली देना, चिल्लाना, बेहोशी, अनुत्साह, निर्ममता, आत्म-सम्मान की कमी, स्नेह की कमी–** मृगशीर्ष मुद्रा, ऊर्णनाभ मुद्रा, कपोत मुद्रा, तलमुख मुद्रा, व्याघ्र मुद्रा, पाश मुद्रा, अधोमुष्टि मुकुल मुद्रा, गर्दभ मुद्रा, कटक मुद्रा-1, लक्ष्मी मुद्रा, लीनाल पद्म मुद्रा, वायु मुद्रा, पार्वती मुद्रा, संकीर्ण मकर मुद्रा, सिन्धुवर मुद्रा, पितृ मुद्रा।

• **व्यवहार में अकुशल, भावनाओं में रूकावट, आन्तरिक चिन्ता, अनुशासन हीनता, आत्महीनता, घबराहट, निष्क्रियता, अहंकार, भाषा सम्बन्धी समस्या–** कर्त्तरीमुख मुद्रा, खटका वर्धमान मुद्रा, उत्संग मुद्रा,गरूड पक्ष मुद्रा, उल्वण मुद्रा, अंगारख मुद्रा, भीम मुद्रा, कदंजली मुद्रा, लीन कर्कट मुद्रा, परदिष मुकुल मुद्रा, संकीर्ण मुद्रा, शैव्य मुद्रा, शमी मुद्रा, कनिष्ठ भ्रातृ मुद्रा, श्वश्री मुद्रा, मत्स्यावतार मुद्रा।

• **असफलता, अल्पज्ञान, अध्यात्मरहितता, स्मृति समस्या, मानसिक विकार, अनिश्चय, पागलपन–** हंसपक्ष मुद्रा-2, अवहित्त मुद्रा, आविद्धवक्र मुद्रा, पक्षप्रद्योत मुद्रा, चक्र मुद्रा, ब्राह्मण मुद्रा, केतकी मुद्रा, क्षत्रिय मुद्रा, कुरूवक मुद्रा, व्हलो मुद्रा, पूग मुद्रा, संयम नायक मुद्रा, सिंह मुद्रा, उद्वेष्टि तालपद्म मुद्रा, वैश्य मुद्रा, ननंद मुद्रा,स्नुष् मुद्रा, बलरामावतार मुद्रा, वामनावतार मुद्रा।

• **उन्मत्तता, मृत्युभय, निराशा, आनंद की कमी, अनुत्साह, अखुशहाल जीवन–** स्वस्तिक मुद्रा-1, निषेध मुद्रा-2, सम्पुट मुद्रा, भैरूण्ड मुद्रा, अराल कटकमुख मुद्रा, बक मुद्रा, भिन्नांजली मुद्रा, बृहस्पति मुद्रा, खड्ग मुद्रा, कुबेर मुद्रा, शम्भु मुद्रा, शुक्र मुद्रा, त्रिज्ञान मुद्रा, ज्येष्ठ भ्रातृ मुद्रा, कल्कि अवतार मुद्रा, नरसिंह अवतार मुद्रा, परशुराम अवतार मुद्रा।

आध्यात्मिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ

• **क्रोध, मान, माया, लोभ, वाचालता, भय, ईर्ष्या, प्रमाद–** संदंश मुद्रा, रेचित मुद्रा, करिहस्त मुद्रा, पक्षवांछित मुद्रा, चक्र मुद्रा, गरूड़ मुद्रा, चंपक मुद्रा, कार्त्तवीर्य मुद्रा, खड्ग मुकुल मुद्रा, कूर्म मुद्रा, राहु मुद्रा, सरस्वती मुद्रा, शनैश्चर मुद्रा, भर्त्तारि भ्रातृ मुद्रा।

• **सप्त व्यसन, चंचलता, लालसा, कामुकता, अभिमान–** अलपद्म मुद्रा, पुष्पपुट मुद्रा, वर्धमान मुद्रा, उद्वृत्त मुद्रा, ललित मुद्रा, चंद्रकला मुद्रा, अजमुख मुद्रा, अर्धमुख मुद्रा, चंद्रमृग मुद्रा, करतरी दण्ड मुद्रा, कटक मुद्रा-2, प्याली मुद्रा, संयम नायक मुद्रा, स्त्री मुद्रा, उलूक मुद्रा, दम्पत्ति मुद्रा, कल्कि अवतार मुद्रा, कूर्मावतार मुद्रा।

• **आत्मबल की कमी, एकाग्रता की कमी, शंकालु वृत्ति–** शिखर मुद्रा, सूच्यास्य मुद्रा, लांगुल मुद्रा, चतुरस्र मुद्रा, अर्धरेचित मुद्रा, नितम्ब मुद्रा, सिंहमुख मुद्रा, अधोमुष्टि मुकुल मुद्रा, ब्रह्म मुद्रा, करकट मुद्रा, केतु मुद्रा, क्षत्रिय मुद्रा, रावण मुद्रा, शुद्र मुद्रा, मातृ मुद्रा, श्वसुर मुद्रा, भर्त्तारि मुद्रा, बलरामावतार मुद्रा, नरसिंहअवतार मुद्रा।

• **वाणी पर अनियंत्रण, असंवेदनशीलता, करूणाहीनता, हिंसक भावना–** मृगशीर्ष मुद्रा, ऊर्णनाभ मुद्रा, ताम्रचूड़ मुद्रा, कपोत मुद्रा, तलमुख मुद्रा, मयूर हस्त मुद्रा, पाश मुद्रा, बक मुद्रा, गर्दभ मुद्रा, कटक मुद्रा-1, केतकी मुद्रा, लक्ष्मी मुद्रा, लीनाल पद्म मुद्रा, वायु मुद्रा, पार्वती मुद्रा, संकीर्ण मकर मुद्रा, शैव्य मुद्रा, शमी मुद्रा, सिन्धुवर मुद्रा, ननंद मुद्रा, सपत्नी मुद्रा, कृष्णावतार मुद्रा।

• **अध्यात्म विमुखता, आत्मानुशासन की कमी, मान कषाय–** सर्पशीर्ष मुद्रा, खटका वर्धमान मुद्रा, उत्संग मुद्रा, पक्षप्रद्योत मुद्रा, गरूड़ पक्ष मुद्रा, मुष्टि स्वस्तिक मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा, सम्पुट मुद्रा, अंगारख मुद्रा, अराल कटकमुख मुद्रा, भीम मुद्रा, कदंजली मुद्रा, लीन कर्कट मुद्रा, वरूण मुद्रा, परदिष मुकुल मुद्रा, संकीर्ण मुद्रा, ताल पताका मुद्रा, कनिष्ठ भ्रातृ मुद्रा, श्वश्री मुद्रा, मत्स्यावतार मुद्रा।

• **ज्ञान का अभिमान, मायाचारी, दोहरापन–** मुष्टि मुद्रा, हंसपक्ष मुद्रा, कर्कट मुद्रा, अवहित्त मुद्रा, आविद्धवक्र मुद्रा, व्याघ्र मुद्रा, संयम नायक मुद्रा,

सिंह मुद्रा, उद्वेष्टि ताल पद्म मुद्रा, रघुरामावतार मुद्रा, वामनावतार मुद्रा।

• **मृत्युभय, स्वरमणता की कमी, अनुत्साह, आनंद की कमी–** कपित्थ हस्त मुद्रा, संदंश मुद्रा, अंजली मुद्रा, स्वस्तिक मुद्रा-1, निषेध मुद्रा-2, अर्धसूची मुद्रा, सम्पूट मुद्रा, भैरूण्ड मुद्रा, भिन्नांजली मुद्रा, बृहस्पति मुद्रा, इन्द्र मुद्रा, खड्ग मुद्रा, कुबेर मुद्रा, शम्भु मुद्रा, शुक्र मुद्रा, सूर्य मुद्रा, त्रिज्ञान मुद्रा, वैश्य मुद्रा, ज्येष्ठ भ्रातृ मुद्रा, स्नुष् मुद्रा, परशुरामावतार मुद्रा।

समष्टि रूप में कहा जा सकता है कि देश-विदेश सभी जगह नृत्य कला किसी न किसी रूप में देखी जाती है। भरत नाट्यम् इनमें से एक प्राचीन शास्त्रीय नृत्य कला है। हर नृत्य कला में इसका पुट अवश्य रूप से परिलक्षित होता है। नृत्य से प्राय: हर आम आदमी थोड़ा बहुत जुड़ा हुआ होता है। इन्हीं सब तथ्यों एवं इसकी प्राचीनता को देखते हुए भरत नाट्य शास्त्र आदि प्राच्य ग्रन्थों में वर्णित मुद्राओं का स्वरूप वर्णन करने के साथ-साथ विविध प्रकार के रोग निदान, मानसिक एवं भावनात्मक ऊर्ध्वता में इनकी सहायवृत्ति का वर्णन किया गया है।

अत: यह अपेक्षा रखती हूँ कि हर रोग के निवारण में विशेष उपयोगी मुद्राओं की list को देखकर कोई भी व्यक्ति अपनी सुविधा अनुसार सहज साध्य मुद्रा से अपने आप ही अपने लोगों का इलाज कर सकेगा। यह कृति मुद्रा प्रयोग में हमारी रुचि एवं जागृति बढ़ाएं तथा भारतीय नृत्य परम्परा को विकसित करें, यही शुभाशंसा।

●

सहायक ग्रन्थ सूची

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
1.	एलीमेन्ट्स आफ हिन्दू आइकनोग्राफी	टी.ए. गोपीनाथ राव संपा.कल्याणदासगुप्ता	श्री भगवानसिंह इण्डोलोजीकल बुक हाउस, वाराणसी	1971
2.	आसन और योग मुद्राएँ	डॉ. रवीन्द्र प्रताप सिंह	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	2004
3.	गुप्तकालीन कला एवं वास्तु	डॉ.पृथ्वीकुमार अग्रवाल	बुक्स एशिया नगवा, वाराणसी	1994
4.	द डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी	जितेन्द्रनाथ बनर्जी	कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस	1956
5.	धर्मशास्त्र का इतिहास (भा. 5)	डॉ.पाण्डुरंग वामन काणे	हिन्दी भवन, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ	1973
6.	नाट्यशास्त्र	भरत मुनि	भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली	1983
7.	नृत्य रत्नकोश	कुम्भकर्ण देव संपा. रसिकलाल छोटालाल पारीख	राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला, जयपुर	1957
8.	भरहुत	डॉ. रमानाथ मिश्र	मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल	1971
9.	भारतीय कला	वासुदेवशरण अग्रवाल संपा. डॉ. पृथ्वी कुमार अग्रवाल	पृथ्वी प्रकाशन नगवा, वाराणसी	
10.	मुद्राज् इन बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू प्रेक्टिसेस् एन आइकॉनोग्राफिक कन्सीडरेशन्	एफ. डब्ल्यू ब्युन्स	डी.के. प्रिन्टवर्ल्ड, नई दिल्ली	2005
11.	समरांगण सूत्रधार (भा.2)	भोजदेव, संपा. पुष्पेन्द्र कुमार	न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन, दिल्ली	1998
12.	संगीत रत्नाकर (भा. 4)	शार्गदेव संपा. एस. शास्त्री	अड्यार मद्रास	1953
13.	स्मृति चन्द्रिका (भा.1)	संपा. श्री निवासाचार्य	नाग प्रकाशक, दिल्ली	1988

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
14.	Classical Indian Dance in Literature and Arts	Vatsyayan Kapila	Delhi	1968
15.	Iconography of Buddhist and Brahmanical Sculptures	Nalini Kanta Bhattasali	Aryan Book International, New Delhi	2001
16.	Iconography of the Hindus Buddhists and Jains	R.B. Gupta	D.B. Taraporevala Sons Private Ltd. Bombay	1980
17.	The Mirror of Being the Abhinaya Darpana of Nandikesvara	Ananda Coomaraswamy	Munshiram Manoharlal Publishers, New Delhi	2003
18.	Hindu Iconography	T.A. Gopinatha Rao	Indological Book house, Varanasi	1971
19.	Mudravicaraprakakaranam and Mudra Vidhih	Dr. Priyabala Shah	Oriental Institute, Baroda	1956
20.	Esoteric Mudras of Japan : Mudras of the Garbhadhatu & Vajradhatu Mandalas of Homa and Eighteen step Tites and of main Buddhas and Bodhisattvas, Gods and Goddesses of Various Sutras and Tantras.	Devi, Gauri	Delhi	1999

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
21.	Ancient Indian Education	Radha Kumud Mukarji	Delhi	1969
22.	The Buddhist art of Gandhar, Marshal		Delhi	1980
23.	The Buddhist Indian Iconography	B. Bhattacharya	Kolkata	1958
24.	The Buddhist art of Gandhar : The Story of Early school it's Birth Growth and Decline	Sir John Marshall	Oriental Books corporation, New Delhi	
25.	A Dictionary of Buddhist and Hindu Iconography : Illustrated objects, Devices concepts Rites and Related Terms	Bunce Fred rick	New Delhi	1996
26.	An Encyclopaedia of Hindu Dieties, Demigods Godlings Demons and Heroes; with special focus on Iconographic attributes,	Bunce Fredrick	New Delhi	1999
27.	Dances of India	Kishore B.R.	New Delhi	1998
28.	Ritual Art of India	Mookerjee	London	1985
29.	The square and circle of the Indian Arts	Vatsyayan Kapila	New Delhi	1983

सज्जनमणि ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित साहित्य का संक्षिप्त सूची पत्र

क्र.	नाम	ले./संपा./अनु.	मूल्य
1.	सज्जन जिन वन्दन विधि	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
2.	सज्जन सद्ज्ञान प्रवेशिका	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
3.	सज्जन पूजामृत (पूजा संग्रह)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
4.	सज्जन वंदनामृत (नवपद आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
5.	सज्जन अर्चनामृत (बीसस्थानक तप विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
6.	सज्जन आराधनामृत (नव्वाणु यात्रा विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
7.	सज्जन ज्ञान विधि	साध्वी प्रियदर्शनाश्री	सदुपयोग
		साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
8.	पंच प्रतिक्रमण सूत्र	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
9.	तप से सज्जन बने विचक्षण	साध्वी मणिप्रभाश्री	सदुपयोग
	(चातुर्मासिक पर्व एवं तप आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
10.	मणिमंथन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
11.	सज्जन सद्ज्ञान सुधा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
12.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
13.	सज्जन गीत गुंजन (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
14.	दर्पण विशेषांक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
15.	विधिमार्गप्रपा (सानुवाद)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
16.	जैन विधि-विधानों के तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन का शोध प्रबन्ध सार	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
17.	जैन विधि विधान सम्बन्धी साहित्य का बृहद् इतिहास	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
18.	जैन गृहस्थ के सोलह संस्कारों का तुलनात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00

19.	जैन गृहस्थ के व्रतारोपण सम्बन्धी संस्कारों का प्रासंगिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
20.	जैन मुनि के व्रतारोपण सम्बन्धी विधि-विधानों की त्रैकालिक उपयोगिता, नव्ययुग के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
21.	जैन मुनि की आचार संहिता का सर्वाङ्गीण अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
22.	जैन मुनि की आहार संहिता का समीक्षात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
23.	पदारोहण सम्बन्धी विधियों की मौलिकता, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
24.	आगम अध्ययन की मौलिक विधि का शास्त्रीय अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
25.	तप साधना विधि का प्रासंगिक अनुशीलन, आगमों से अब तक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
26.	प्रायश्चित्त विधि का शास्त्रीय पर्यवेक्षण व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
27.	षडावश्यक की उपादेयता, भौतिक एवं आध्यात्मिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
28.	प्रतिक्रमण, एक रहस्यमयी योग साधना	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
29.	पूजा विधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता, मनोविज्ञान एवं अध्यात्म के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
30.	प्रतिष्ठा विधि का मौलिक विवेचन आधुनिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
31.	मुद्रा योग एक अनुसंधान संस्कृति के आलोक में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
32.	नाट्य मुद्राओं का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00

33.	जैन मुद्रा योग की वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
34.	हिन्दू मुद्राओं की उपयोगिता, चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
35.	बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक परिशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
36.	यौगिक मुद्राएँ, मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
37.	आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
38.	सज्जन तप प्रवेशिका	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
39.	शंका नवि चित्त धरिए	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00

●

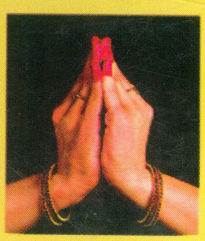
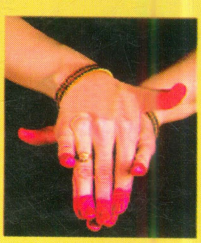
विधि संशोधिका का अणु परिचय

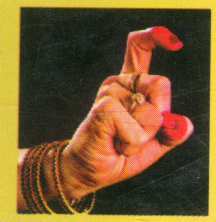
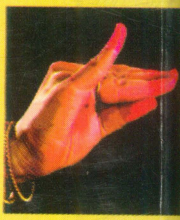
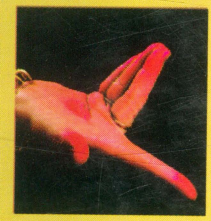
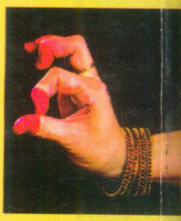


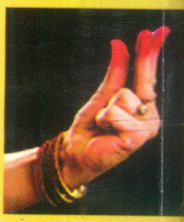
डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी (D.Lit.)

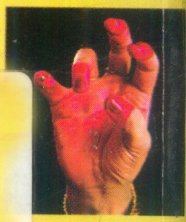
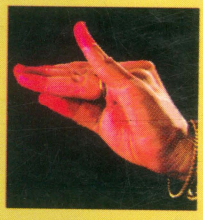
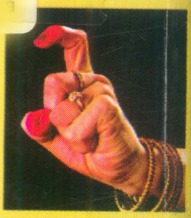
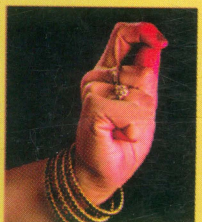
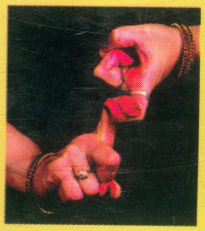
नाम	:	नारंगी उर्फ निशा
माता-पिता	:	विमलादेवी केसरीचंद छाजेड
जन्म	:	श्रावण वदि अष्टमी, सन् 1971 गढ़ सिवाना
दीक्षा	:	वैशाख सुदी छट्ठ, सन् 1983, गढ़ सिवाना
दीक्षा नाम	:	सौम्यगुणा श्री
दीक्षा गुरु	:	प्रवर्त्तिनी महोदया प. पू. सज्जनमणि श्रीजी म. सा.
शिक्षा गुरु	:	संघरत्ना प. पू. शशिप्रभा श्रीजी म. सा.
अध्ययन	:	जैन दर्शन में आचार्य, विधिमार्गप्रपा ग्रन्थ पर Ph.D. कल्पसूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, नंदीसूत्र आदि आगम कंठस्थ, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी भाषाओं का सम्यक् ज्ञान।
रचित, अनुवादित एवं सम्पादित साहित्य	:	तीर्थंकर चरित्र, सद्ज्ञानसुधा, मणिमंथन, अनुवाद-विधिमार्गप्रपा, पर्युषण प्रवचन, तत्वज्ञान प्रवेशिका, सज्जन गीत गुंजन (भाग : १-२)
विचरण	:	राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, थलीप्रदेश, आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, महाराष्ट्र, मालवा, मेवाड़।
विशिष्टता	:	सौम्य स्वभावी, मितभाषी, कोकिल कंठी, सरस्वती की कृपापात्री, स्वाध्याय निमग्ना, गुरु निश्रारत।
तपाराधना	:	श्रेणीतप, मासक्षमण, चत्तारि अट्ठ दस दोय, ग्यारह, अट्ठाई बीसस्थानक, नवपद ओली, वर्धमान ओली, पखवासा, डेढ़ मासी, दो मासी आदि अनेक तप।

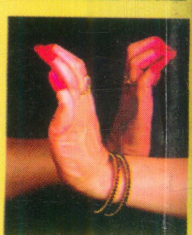




सज्जन गीता के अनुपम स्वर

- मुद्रा योग के द्वारा सप्त चक्रों को संतुलित करने की विधि एवं उनके प्रभाव...
- नाट्य कला एवं मुद्रायोग का पारस्परिक सम्बन्ध...
- ऐतिहासिक शिल्पकला में मुद्रा दर्शन...

SAJJANMANI GRANTHMALA
Website : www.jainsajjanmani.com,
E-mail : vidhiprabha@gmail.com
ISBN 978-81-910801-6-2 (XVI)